भारत
भौतिक पर्यावरण

कक्षा XI के लिए पाठ्यपुस्तक
(सत्र II)

भारत भौतिक पर्यावरण

कक्षा XI के लिए पाठ्यपुस्तक
(सत्र II)

लेखक
नूर मोहम्मद

सम्पादक
आर.पी. मिश्र



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2003
पौष 1924

PD 40T RNB

ISBN 81-7450-172-X

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : राजपाल
रामनिवास भारद्वाज

उत्पादन : अतुल सक्सेना
राजेश पिप्पल

आवरण : कर्णकुमार चड्ढा

मूल्य : रु. 40 .00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नवटैक कंप्यूटर, 1982, गंज मीर खां, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 में लेजर टाईपसैट होकर शगुन ऑफसेट प्रेस, 92.बी, गली नं. ४ए कृष्णा नगर, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली.110 029 द्वारा मुद्रित

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक *भारत : भौतिक पर्यावरण* कक्षा XI के भूगोल के विद्यार्थियों के लिए है। इसमें सत्र II का पाठ्यक्रम समाहित है। यह पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की विद्यालयी शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए 2001 में संशोधित पाठ्यक्रम पर आधारित है।

दस वर्षीय सामान्य शिक्षा के उपरांत विद्यार्थियों में यथेष्ट परिपक्वता आ जाती है। वे अब अपनी रुचि, अभिरुचि और प्रवृत्ति के अनुरूप विषय का चयन करने में सक्षम हो जाते हैं। सत्र I में विद्यार्थियों ने भौतिक भूगोल के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन किया था। प्रस्तुत पुस्तक में वे भारत के भौतिक पर्यावरण का अध्ययन करेंगे। देश की भौतिक संरचना में इसकी अवस्थिति, भू-आकृति, अपवाह, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा और प्राकृतिक आपदाओं तथा संकटों की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। इस चर्चा के द्वारा भौतिक संरचना में निहित प्रक्रियाओं और कारकों के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है, इससे विद्यार्थियों को सत्र IV की पुस्तक *भारत : लोग और अर्थव्यवस्था* की विषयवस्तु को बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलेगी।

पुस्तक में 7 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय, विभागों और उप-विभागों में विभक्त है। अध्याय में प्रदत्त मानचित्र, सारणियाँ, बॉक्स, पुनरावृत्ति के रूप में अभ्यास और परियोजना कार्य विषयवस्तु को सहज ही बोधगम्य बना देते हैं। बॉक्सों में प्रकरणों से संबंधित अतिरिक्त जानकारी दी गई है। यह एक प्रकार की विशिष्ट अध्ययन प्रणाली है, जो विद्यार्थियों को विषय और प्रकरण से संबंधित मूल्यों को अपनाने में सहायक होगी।

विषय विशेषज्ञों, कार्यरत अध्यापकों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में व्यस्त विभागीय सहयोगियों ने इस पुस्तक की समीक्षा और पुनरीक्षण किया है। पुस्तक प्रणयन के विभिन्न स्तरों पर प्रदत्त बहुमूल्य योगदान के लिए परिषद् इन विद्वानों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती है। हम आशान्वित हैं कि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की कसौटी पर खरी उतरेगी।

पाठ्यक्रम विकास और पुस्तक प्रणयन एक सतत् प्रक्रिया है। पुस्तक के उपभोक्ताओं से पुस्तक के गुणात्मक संवर्धन और परिवर्धन के लिए सुझावों और समीक्षाओं का सहर्ष स्वागत है।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अक्तूबर 2002
नई दिल्ली

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा समूह

आर.पी. मिश्र
पूर्व उप-कुलपति
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नूर मोहम्मद
प्रोफेसर, भूगोल विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

यशपाल सिंह (**अनुवादक**)
पूर्व उप-प्राचार्य
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

एस.एस. रस्तोगी
पूर्व प्राचार्य
शासकीय बाल उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय, नई दिल्ली

एस.एल. गुप्ता
पूर्व रीडर
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कमला मेनन
प्राचार्य
मीराम्बिका, नई दिल्ली

जे.सी. कलुआवत
पी.जी.टी., (भूगोल)
जवाहर नवोदय विद्यालय
बुदवा, राजस्थान

तारा भंडारी
पी.जी.टी., (भूगोल)
केन्द्रीय विद्यालय
गोल मार्केट, नई दिल्ली

जयालक्ष्मी सी. सेठ
उप-प्राचार्य
डी.टी.ई.ए. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मोती बाग, नई दिल्ली

सुशील कुमार
पी.जी.टी., (भूगोल)
जवाहर नवोदय विद्यालय
दादरी, उत्तर प्रदेश

सविता सिन्हा
प्रोफेसर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

बी.के. बनर्जी
रीडर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

जे.पी. सिंह (**संयोजक**)
प्रोफेसर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उसने उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ो लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

विषय-सूची

1 अध्याय

स्थिति और स्थानिक संबंध

हमारे देश भारत को इंडिया भी कहते हैं। यह अति प्राचीन काल से एक सुस्पष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई रहा है। पौराणिक राजा दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। अनेक विद्वानों के अनुसार प्राचीन काल में यहाँ रहने वाली भारत नाम की एक जनजाति के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। इंडिया शब्द की व्युत्पत्ति सिंधु नदी के नाम से हुई है। पश्चिम से आने वाले हूण, यूनानी, फारसवासी, अरबवासी और अन्य देशवासी इसी नदी को पार करके भारत की मुख्य भूमि में प्रवेश करते थे। हिंदू शब्द की व्युत्पत्ति भी सिंधु नदी के नाम से हुई है। फारसवासी (आधुनिक ईरान) 'स' अक्षर का उच्चारण 'ह' के रूप में करते हैं। इसीलिए उन्होंने सिंधु का उच्चारण हिंदू के रूप में किया। अतः सिंधु के पूर्व की भूमि को हिन्दुस्तान कहा जाता था। यूनानी और रोमवासी सिंधु को इंडस और इसके पूर्व की भूमि को इंडिया कहते थे।

भौगोलिक और सांस्कृतिक भारत

भौगोलिक दृष्टि से भारत की सीमाएँ सुस्पष्ट हैं। इसके उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में विशाल पर्वत माला है तथा दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में सागर हैं। विदेशी उत्तर-पश्चिम में स्थित खैबर और बोलन दर्रों से होकर ही भारत में प्रवेश कर सकते थे। खैबर, हिंदुकुश पर्वत में सफेद कोह के निकट तथा बोलन, सुलेमान और किरथर पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। पहले तो मध्य और पश्चिम एशिया की जन-जातियाँ इन्हीं मार्गों द्वारा भारत में आईं और बाद में सिकंदर, अफगानी तथा फारसी फौजों ने भी इन्हीं मार्गों का अनुसरण किया। व्यापार के लिए भारत पश्चिम एशिया, पूर्व-अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया से समुद्री मार्गों द्वारा जुड़ा था।

संसार की जीवंत सभ्यताओं में से जितनी भी प्राचीन सभ्यताएँ हैं, भारतीय सभ्यता उनमें से एक या शायद सबसे प्राचीन है। भारत में मनुष्यों ने कब से रहना शुरू किया यह केवल अनुमान का ही विषय है। पुरातत्वीय खोजों के अनुसार मध्य पाषाणी युग में मध्य भारत के पर्वतों की गुफाओं में, गंगा नदी की घाटी के वनों में और दक्कन के पठार की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भोजन संग्राहक निवास करते थे। लगभग 3000 और 2000 ईसा पूर्व में इन्हीं लोगों के एक समूह ने सिंधु घाटी के आस-पास एक अति उन्नत सभ्यता का विकास किया। पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का हड़प्पा संरक्षण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ एक पुरातात्विक स्थल है। इसी के नाम पर इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है। कुछ कारणों से इस सभ्यता का ह्रास होने लगा। ह्रास के इन कारणों में प्रमुख थे : पहला, निचली सिंधु घाटी में विवर्तनिक उत्थान के कारण बार-बार आने वाली बाढ़ें; दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों का विशेषरूप से भूमि और वनों का अति उपयोग, और तीसरा, मध्य एशिया से आने वाली अन्य जनजातियों का भारी दबाव। ह्रास की यह प्रक्रिया 1600-1500 ईसा पूर्व में प्रारंभ हुई तथा 1300 ईसा पूर्व तक यह पूरी तरह नष्ट हो गई। हड़प्पावासी धातु के रूप में मुख्यतः कांसे का उपयोग करते थे। वे शायद लोहे के बारे में भी जानते थे, लेकिन वे इसका उपयोग यदा-कदा ही करते थे। हड़प्पावासियों के मिस्र और सुमेरिया (इराक) की समकालीन सभ्यताओं के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध थे।

हड़प्पा की सभ्यता के विनाश के साथ ही भारत में एक नई संस्कृति का उदय हुआ। इस संस्कृति का प्रवाह आज भी जारी है। आर्य नाम से प्रसिद्ध लोगों के एक नए समुदाय का भारत में लगभग 1500 ईसा पूर्व में उदय हुआ। शायद वे मध्य एशिया से आए थे। वे संभवतः अनेक धाराओं में अनेक दशकों या शताब्दियों तक आते रहे थे। ये लोग पशु-पालन और कृषि की कला में पारंगत थे। वे लौह धातु कर्म से भी भली-भाँति परिचित थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार आर्य कहीं बाहर से नहीं आए थे। उन लोगों का एक समुदाय था। वे अनेक जातियों में बँटे थे। ये लोग

पश्चिम में फारस (आधुनिक ईरान), पूर्व में गंगा की घाटी तथा उत्तर में कैस्पियन सागर तक विस्तृत प्रदेश में घूमते रहे। पहले से ही कठिनाइयों से जूझ रहे हड़प्पावासियों को विस्थापित करके आर्य, गंगा और सरस्वती नदियों की घाटियों में बसने के लिए पूर्व की ओर बढ़ गए। यही नहीं, ये लोग दक्षिण में गुजरात तट तक भी पहुँच गए। वे हड़प्पावासियों और उनकी संस्कृति तथा पहले से विद्यमान अन्य जातियों में घुल-मिल गए। इन्होंने अति-उन्नत कृषि सभ्यता का विकास किया। आर्यों की भाषा वैदिक संस्कृत थी।

1000 ईसा पूर्व तक आर्य, संपूर्ण भौगोलिक भारत को एक ही सांस्कृतिक सूत्र में बांधने के लिए प्रायद्वीपीय भाग के दक्षिणी सिरे तक जा पहुँचे। आर्यों ने आदान-प्रदान की संस्कृति का विकास किया। व्यवसायों पर आधारित वर्ण-व्यवस्था स्थापित करके उन्होंने सांस्कृतिक विषमता तथा असमान सामाजिक-सांस्कृतिक विकास की समस्या का समाधान ढूँढ़ निकाला। उनके अनुसार चार वर्ण थे : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। अध्ययन-अध्यापन और पूजा पाठ ब्राह्मणों का दायित्व था। शत्रुओं से लोगों की रक्षा करना और शांति स्थापित करना क्षत्रियों का काम था। वैश्य अर्थव्यवस्था की जिम्मेदारी संभालते थे तथा शुद्र श्रमशक्ति प्रदान करते थे। कर्म (कर्तव्य) पर आधारित समाज का यह पूर्णतः व्यावसायिक वर्गीकरण था। काल के प्रवाह के साथ और विशेषरूप से विगत सहस्राब्दी में मानवीय दुर्बलता इस व्यवस्था पर हावी हो गई। समाज पर वर्चस्व रखने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ने इस व्यवस्था को कट्टर बना दिया। उन्होंने कर्म का स्थान, जन्म को दे दिया। श्रम वर्ग के लोगों अर्थात् शूद्रों को उनके मौलिक मानवीय अधिकारों से भी वंचित कर दिया। देश के कुछ भागों में तो उन्हें अछूत ही माना जाने लगा। मूल सिद्धांत यह था कि सभी व्यक्ति जन्म के समय शूद्र होते थे। केवल शिक्षा (अर्थात् दूसरे जन्म) से वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन सकते थे। इस सिद्धांत को भुलाकर वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित कर दी गई।

समय के साथ वर्ण अनेक जातियों में बँट गए। परिणामस्वरूप आज भारत में सैंकड़ों नहीं, हजारों जातियाँ हैं। मूल वर्ण-व्यवस्था में तो समाज के प्रत्येक वर्ग को उसके अपने मानदंडों (नियमों), उपलब्धि के स्तर और गति के अनुसार उन्नति करने का पूरा अधिकार था। लेकिन अब तो यह वर्ण-व्यवस्था (जाति व्यवस्था) भारत की प्रगति में बहुत बड़ी बाधा बन गई है। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज और राज्यतंत्र को इस सीमा तक विभाजित कर दिया है कि यदि कोई बाहरी खतरा नहीं है, तो वे एकजुट रह ही नहीं सकते। यह अनबन धर्मों की आपसी फूट इस सीमा तक बढ़ी कि 1947 में देश भारत और पाकिस्तान के रूप में दो टुकड़ों में बँट गया। जाति और समुदाय के आधार पर बँटे होने के बावजूद हम इस मुद्दे पर एक जुट हैं कि *भारत हमारी मातृभूमि है और हम अंतिम सांस तक इसकी रक्षा करेंगे।* लेकिन धार्मिक समुदायों के बीच समय-समय पर आपसी झगड़े होते रहते हैं। इससे देश की एकता और राष्ट्रीय अखंडता की भावना कमजोर पड़ने लगती है।

भारत ने प्रेम, अहिंसा और मानवीय भाईचारे पर आधारित एक उत्कृष्ट सभ्यता का विकास किया है। इसी देश में जन्मे बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य और महात्मा गांधी ने शांति और अहिंसा का संदेश दिया था। दुनिया को आज इस संदेश की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। पत्थरों पर खुदे (पस्तर पट्टिकाओं या पट्टिकाओं पर उकेरे गए) ये संदेश भारत के पक्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं और न्याय संगत पथ पर चलने के लिए लोगों का आह्वान करते हैं। काफिले गुजर जाते हैं, लेकिन यह पथ प्रशस्त रहता है। यह हमें याद दिलाता है कि भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ विचार "वसुधैव कुटुंबकम" सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है, आज के भारत में फैले जातिगत और धार्मिक अलगाव के साथ कोई ताल-मेल नहीं है।

भारतीय चरित्र विविधा में उच्चकोटि की एकता को प्रदर्शित करता है। भारतीय राज्यव्यवस्था के इस अनुपम लक्षण के आविर्भाव में मदद देने वाले अनेक कारक हैं। इस सामाजिक व्यवस्था में प्रादेशिक विविधताओं के फूलन-फलन में उपमहाद्वीप के विशाल भौगोलिक विस्तार ने बहुत योगदान दिया है, भौतिक भू-दृश्यों की विभिन्नताओं ने प्रकृति के साथ मानव की अंतर्क्रियाओं की अनेक विधियों और प्रतिरूपों को जन्म दिया है। उपमहाद्वीपों के आस-पास के क्षेत्रों में विविध जातीय तत्त्वों का संकेंद्रण हो गया। इसने विशिष्ट प्रादेशिक संकेंद्रण के साथ बहुरूपी समाज को जन्म दिया है। आसानी से पहचाने जाने वाले

तीन प्रादेशिक संकेंद्रण ये हैं : पहला दक्षिण, जिसके समुद्र पार के लोगों के साथ लम्बे समय से संबंध रहे हैं, दूसरा उत्तर-पश्चिम, जिसने मध्य एवं पश्चिम एशिया के लोगों को हिमालय पर्वत के आर-पार आने-जाने के लिए मार्ग प्रदान किए हैं, और तीसरा उत्तर-पूर्व, जिसके दर्रों ने इस प्रदेश की पहाड़ियों और घाटियों में मंगोल जाति के लोगों के आकर बसने में मदद की है।

देश के सामाजिक चरित्र में निहित एकता को बढ़ाने वाले कारक ये हैं : (i) मानसून की ऋतुलय ने यहाँ के निवासियों को एकता के सूत्र में बाँधा है; (ii) देश में सांस्कृतिक एकता, एकीकरण और संघटन के मजबूत बंधन विद्यमान हैं। इन्हें विकसित करने में उत्तरदायी कारक देश के विभिन्न भागों में सांस्कृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक विशिष्टताओं का प्रसार और निरंतर बढ़ते हुए अंतर्क्षेत्रीय संपर्क तथा आदान-प्रदान; और (iii) भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान क्षेत्रीय संपर्कों का विकास तथा क्षेत्रीय घरेलू बाजार का आर्विभाव। इन एकताकारी शक्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण थीं, प्राचीन काल की वैदिक और पौराणिक परंपराएँ। इन परंपराओं का विस्तार संपूर्ण भारत में सिंधु-गंगा के मैदान से उत्तर-दक्षिण और पूर्व तक था। आदान-प्रदान की प्रक्रिया दो स्तरों पर कार्य कर रही थी। एक थी ब्राह्मणी विद्या, जिसने संस्कृत के माध्यम से, विविध धार्मिक एवं बुद्धिजीवी विशिष्ट जनों के बीच सांस्कृतिक एकता के मजबूत बंधन विकसित किए। आगे चलकर ऐसी ही भूमिका फारसी और अंग्रेजी भाषाओं ने निभाई। दूसरा कारक था ग्रामीण भारत में भक्ति और सूफी संतों के उपदेश जिन्होंने सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। वर्तमान भारत का विविधता में एकता पर दृढ़ विश्वास है।

राजनीतिक भारत

प्राचीन काल से ही लोग सांस्कृतिक और भौगोलिक भारत को एक राजनीतिक सत्ता के रूप में संगठित करने का प्रयास करते रहे हैं। इस कार्य में प्राचीन काल में अशोक महान, मध्यकाल में अकबर महान तथा उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज लगभग सफल हो गए थे। अन्य अनेक लोगों ने इस दिशा में बहुत प्रयास किए, लेकिन परिवहन और संचार प्रौद्योगिकी ने उनका साथ नहीं दिया। पश्चिम से होने वाले विदेशी आक्रमणों से भारत को निरापद बनाने के लिए, भारतीय शासकों ने उस क्षेत्र को भी भारत में मिलाने का प्रयत्न किया, जिसे आज अफगानिस्तान कहा जाता है। उदाहरणार्थ, अफगानिस्तान अशोक और अकबर दोनों के ही साम्राज्य का अंग था। राजनीतिक भारत का क्षेत्र समय के साथ फैलता एवं सिकुड़ता रहा है। अशोक के साम्राज्य में वर्तमान भारत के दक्षिणी और उत्तर-पूर्वी भागों को छोड़कर लगभग सारा देश ही शामिल था। आज भारत में जितनी भूमि है, उन सब पर चंद्रगुप्त द्वितीय तथा औरंगजेब भी अपना शासन लागू नहीं कर पाए थे। लेकिन अंग्रेजों ने इसके अधिक भागों को अपने अधीने कर लिया था।

अंग्रेजों के आने के पहले से ही अकबर के वंशजों की शासन व्यवस्था कुप्रबंध के कारण लड़खड़ा गई थी तथा प्रांतों में अक्सर विद्रोह भड़क उठते थे। इसके बावजूद लगभग संपूर्ण भारत मुगल साम्राज्य के झंडे तले एकजुट था। भारतीय इतिहास की इन्हीं प्रवृत्तियों के संकेतों का अंग्रेजों ने भी सहारा लिया और भारत में एक ही राजनीतिक सत्ता की स्थापना के लिए प्रयास करने शुरु कर दिए। इस बात का श्रेय अंग्रेजों को ही दिया जाता है कि वे देश को एकजुट रखने में सफल रहे। यह एक अलग ही कहानी है कि जब वे गए तो, देश विभाजित और रक्तरंजित ही छोड़कर गए।

आज का स्वतंत्र भारत पहले जैसा सर्वमान्य उप-महाद्वीप नहीं है, जिसमें कभी भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता हुआ करती थी। अंग्रेजों द्वारा शासित भारत 1947 में भारत और पाकिस्तान के रूप में, दो देशों में बँट गया। 1971 में पाकिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान के रूप में खंडित हो गया। भारतीय गणतंत्र आज भी विशाल भू-भाग पर विस्तृत है। उत्तर, दक्षिण और धुर उत्तर-पूर्व में इसकी वही पुरानी सीमाएँ हैं। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान तथा पूर्व में बांग्लादेश है। बांग्लादेश, गंगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टा की निम्न उपजाऊ भूमि पर विस्तृत है। स्थल की एक संकरी पट्टी भारत की मुख्य भूमि को उत्तर-पूर्वी भारत से जोड़ती है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, म्यांमार , बांग्लादेश, मलेशिया, इंडोनेशिया, मालदीव और श्रीलंका भारत के पड़ोसी देश हैं। दक्षिण एशिया में इसकी स्थिति ऐसी है कि यह संपूर्ण हिंद महासागर पर नियंत्रण रखता है।

अशोक, अकबर और अंग्रेजों का भारत के लिए योगदान

- तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व अशोक एक यशस्वी राजा थे। उनका साम्राज्य अफगानिस्तान सहित लगभग पूरे उप-महाद्वीप पर विस्तृत था। बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर उन्होंने उसके सिद्धांतों और नियमों को स्तंभों और शैल शिलाओं पर खुदवा कर अपने साम्राज्य के प्रमुख स्थानों पर स्थापित किया। इन स्तंभों के चिह्न का राजकीय तथा अन्य दस्तावेजों (प्रलेखों) पर भारतीय परंपरा के प्रतीकों के रूप में उपयोग किया जाता है। अशोक ने अपने साम्राज्य को प्रांतों में तथा प्रांतों को जिलों में बाँट रखा था। यही प्रशासनिक विभाग आगे चलकर मुगलों और अंग्रेजों की शासन प्रणाली का आधार बने।
- मुगल शासकों में सबसे महान अकबर ने सोलहवीं शताब्दी में राज किया था। उनके पूर्वज मूलतः मध्य एशिया से आए थे। उनकी उदार नीतियों के कारण विभिन्न समुदायों के बीच सौहार्द बना रहता था। अकबर ने सैन्य अभियानों के साथ-साथ वैवाहिक संबंधों के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उनका साम्राज्य सूबों (प्रांतों) सरकारों (जिलों) और परगनों या महालों (उप-जनपदों) में विभक्त था।
- अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों ने सिंधु और गंगा के मैदान तथा तटीय क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक उन्होंने संपूर्ण उप-महाद्वीप पर कब्ज़ा कर लिया था। अंग्रेजों ने पूर्ववर्ती शासकों की प्रचलित शासन व्यवस्था और राजस्व प्रणाली को ही जारी रखा। उन्होंने विभिन्न प्रकार के नए कानून भी बनाए। इनके द्वारा कई उल्लेखनीय सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर अंग्रेजी को राज की भाषा बनाकर अंग्रेजों ने अपनी सत्ता को और भी सुदृढ़ कर लिया था।

आकार और विस्तार

भारतीय गणतंत्र का क्षेत्रफल 32,87, 263 वर्ग कि.मी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह संसार का सातवाँ सबसे बड़ा देश है। इसकी जनसंख्या 1,03,00,00,000 के लगभग है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का चीन के बाद संसार में दूसरा स्थान है। कृषि योग्य भूमि की दृष्टि से संसार में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। भारत की मुख्य भूमि 8°4′ उत्तर अक्षांश से लेकर 37° 6′ उत्तर अक्षांश और 68° 7′ पूर्व देशांतर से लेकर 97° 25′ पूर्व देशांतर के मध्य विस्तृत है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी दूरी 3,214 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक इसकी दूरी 2,933 कि.मी. है। कर्कवृत्त भारत को लगभग दो भागों में विभाजित करता है। भारत की स्थल सीमा पर पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, म्यांमार और बांग्लादेश हैं। पूर्व में बांग्लादेश के साथ भारत की 4,096 कि.मी. लंबी, उत्तर में चीन के साथ 3,917 कि.मी. लंबी, अफगानिस्तान के साथ 80 कि.मी. लंबी तथा उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान के साथ 3,310 कि.मी. लंबी अंतर्राष्ट्रीय सीमा है। भारत की नेपाल के साथ 1,752 कि.मी. लंबी, म्यांमार के साथ 1,458 कि.मी. लंबी तथा भूटान के साथ 587 कि.मी. लंबी अंतर्राष्ट्रीय सीमा है। भारत की स्थल सीमा की कुल लंबाई 15,200 कि.मी. तथा समुद्री किनारे की कुल लंबाई 6,100 कि.मी. है। प्रायद्वीपीय पठार, हिंद महासागर में लगभग 1,600 कि.मी. की दूरी तक घुस गया है। इसी के कारण हिंद महासागर, दो सागरों अर्थात अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के रूप में बँट गया है। भारत का विस्तार इतना अधिक है कि जब अरूणाचल प्रदेश में सूर्योदय होता है, तब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्मभूमि काठियावाड़ का पोरबंदर रात के अंधेरे में डूबा रहता है। भारत का दक्षिणतम भाग इंदिरा पाइंट निकोबार द्वीप समूह में है। इसके विपरीत भारत का उत्तरतम भाग जम्मू और कश्मीर राज्य में है। इस राज्य की उत्तरी सीमा पर पामीर है, जहाँ से विभिन्न दिशाओं में पर्वत श्रेणियाँ फैली हैं। इन दोनों भागों के बीच लगभग 3,000 कि.मी. का विस्तार है। इसीलिए भारत में विविध प्रकार के मौसम और जलवायु की दशाएँ तथा प्राकृतिक संसाधन हैं।

भारत में 28 राज्य और 7 केंद्र शासित प्रदेश हैं (चित्र 1.1)। पता लगाइए कि क्षेत्रफल की दृष्टि से कौन-सा राज्य सबसे बड़ा और कौन-सा सबसे छोटा है। यह भी पता



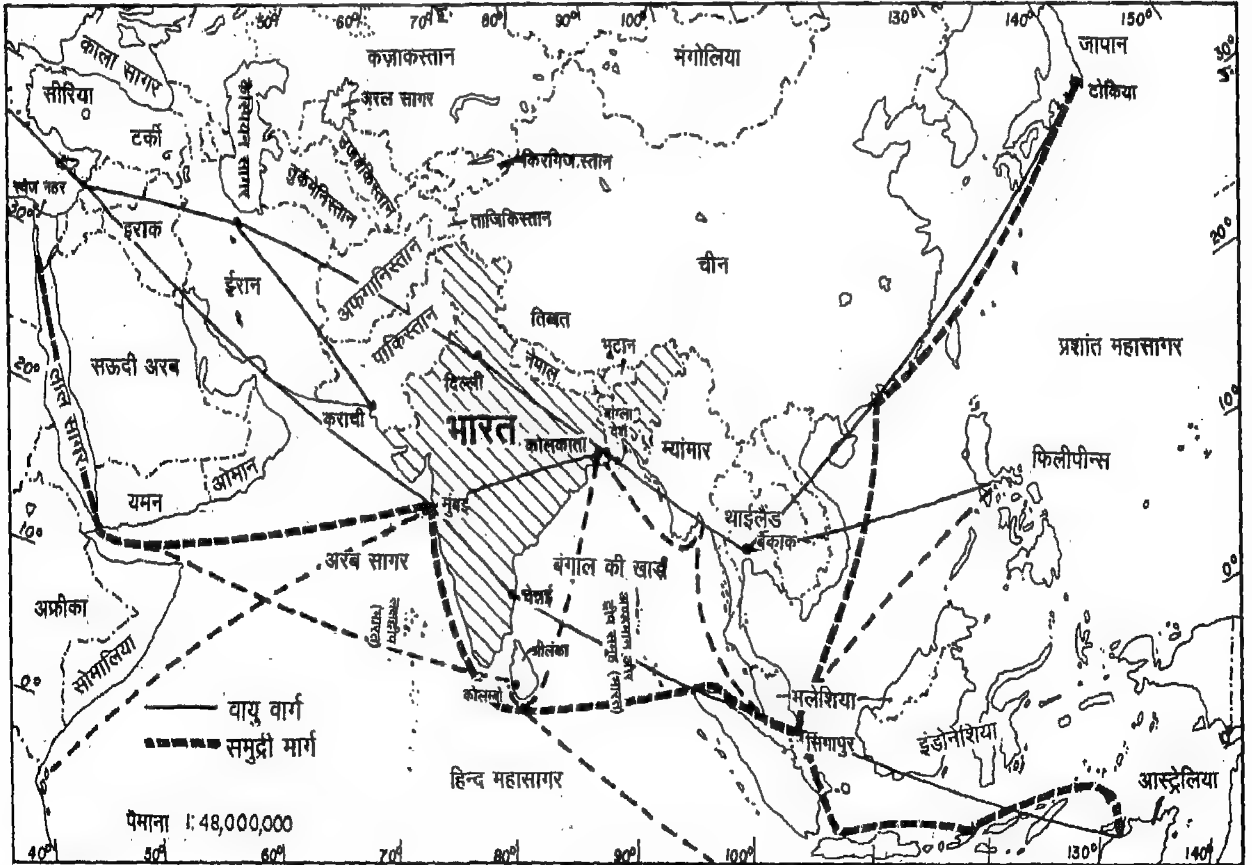
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय के मध्य में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किया है।

चित्र 1.1 भारत : राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश

लगाइए कि किस राज्य की जनसंख्या सबसे अधिक और किसकी सबसे कम है, और किस राज्य का जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक और किसका सबसे कम है।

पूर्वी दुनिया में भारत की स्थिति

भारत पश्चिमी एशिया तथा पूर्वी एशिया के मध्य में स्थित है (चित्र 1.2)। अफ्रीका, औद्योगिक दृष्टि से विकसित यूरोप तथा तेल-संपन्न पश्चिमी एशिया को दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों, चीन, विकसित उद्योग वाले जापान, आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पश्चिमी तट जोड़ने वाले महासागर पारीय जल-मार्ग भारत से होकर गुजरते हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया तथा अफ्रीका के पूर्वी तटवर्ती पड़ोसी देशों के साथ भारत के विदेशी संबंधों में सागर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय और चीनी संस्कृति का संगम हुआ है। इन दोनों संस्कृतियों ने स्थानीय संस्कृति के साथ मिल कर एक नई मिली-जुली संस्कृति को जन्म दिया है, जो हिंद-चीन जैसे शब्दों में प्रतिबिंबित हुई है। इसके बाद इस्लाम, ईसाई धर्म और यूरोपवासियों के आगमन से यह प्रदेश और समृद्ध हो गया। इससे यहाँ की संस्कृति में विविधता के नए रंग भर गए हैं, जो आज के दक्षिण-पूर्वी एशिया में झलकते हैं। जिन देशों में भारतीय संस्कृति की छाप आज भी स्पष्ट है, उनमें लाओस, कंबोडिया, थाईलैंड, म्यांमार, मलेशिया और इंडोनेशिया उल्लेखनीय हैं। इंडोनेशिया के द्वीपों के नाम जैसे सुमात्रा, जावा और बाली भारतीय



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 1.2 पूर्वी दुनिया में भारत की स्थिति

प्रभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। थाईलैंड (पुराना नाम स्याम) और कंबोडिया की स्थिति भी समान ही है।

भारत के पश्चिम में ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, साऊदी अरब, तथा ओमान जैसे पश्चिमी एशियाई देश तथा मिस्र, सूडान, इथियोपिया, सोमालिया, केन्या, तंजानिया, यूगांडा और मारीशस जैसे पूर्वी-अफ्रीकी देश हैं। भारत के उत्तर में जम्मू-कश्मीर की सीमा से लगा चीन का सिनक्यांग (जिनजियांग) प्रदेश है। इस प्रदेश में तारिम बेसिन है, जहाँ कभी काशी (काशगर) और होतान (खोतान) की उत्कृष्ट सभ्यता फली-फूली थी। हिमालय के उस पार तिब्बत है, जो आज चीन का स्वायत्त प्रांत है। तिब्बत में प्रसिद्ध कैलाश पर्वत और मानसरोवर झील हैं, जो आज भी भारतीय तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करते हैं। तिब्बत के साथ सदा से भारत के निकट सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। तिब्बत के आध्यात्मिक गुरु दलाई लामा आजकल भारत में ही रहते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से भी हमारा देश अनूठा है। अपने विशाल आकार, उच्चावच के लक्षणों, जनसंख्या और सांस्कृतिक विरासत के बावजूद दक्षिण एशिया में अपनी स्थिति के कारण यह एशिया, अफ्रीका, यूरोप तथा उत्तर व दक्षिण अमेरिका के अन्य भागों से सुगमता के साथ संपर्क बनाए रख सकता है। इसकी संस्कृति का प्रभाव अतीत काल से ही सीमाएँ लांघकर दूरस्थ देशों में पहुँच गया था। भारत संसार के विकासशील देशों के हितों के रक्षा के लिए विकसित देशों से संघर्ष करता रहा है। ऐसी ही भूमिका इसने पूर्व और पश्चिम के मध्य भी निभाई है। भारत को जितनी ताकत अपने भूगोल से मिली है, उतनी ही शक्ति इसे इसकी संस्कृति ने भी प्रदान की है। अपनी वर्तमान और भावी संतति तथा संपूर्ण मानवता के लिए इन दोनों की रक्षा और संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :
   (i) उप-महाद्वीप किसे कहते हैं ?
   (ii) किसके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा है ?
   (iii) सिंधु को इंडस (Indus) कौन लोग कहते थे ?
   (iv) भारत का देशांतरीय विस्तार कितना है ?
   (v) भारत कितने अक्षांशों में विस्तृत है ?
   (vi) किस देश की विजय के बाद अशोक ने युद्ध का त्याग किया था ?
   (vii) क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत को कौन-सा स्थान प्राप्त है ?
   (viii) भारत के पश्चिम और पूर्व में स्थित दो-दो देशों के नाम बताइए।
   (ix) तारिम बेसिन कहाँ स्थित है ?

2. कारण बताइए :
   (i) भारत के सबसे पूर्वी भाग अरुणाचल प्रदेश और सबसे पश्चिमी भाग गुजरात के स्थानीय समय में दो घंटे का अंतर है।
   (ii) हैदराबाद में दोपहर का सूर्य कभी तो शिरोबिंदु से उत्तर की ओर तथा कभी दक्षिण की ओर होता है, लेकिन दिल्ली में ऐसा नहीं होता।
   (iii) सिंधु नदी के निकट होते हुए भी हड़प्पा की संस्कृति नष्ट हो गई।
3. पूर्वी दुनिया में भारत के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
4. भारत में आज भी पाए जाने वाली अशोक काल की दो विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कीजिए :
   (i) "वसुधैव कुटुंबकम"
   (ii) विविधता में एकता।

परियोजना कार्य

6. (क) भारत के रेखा मानचित्र पर अशोक के साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार दिखाइए।
   (ख) इस पर निम्नलिखित की स्थिति अंकित कीजिए :
      (i) सांची
      (ii) खैबर
      (iii) इंदिरा पॉइंट
      (iv) पोरबंदर
      (v) नई दिल्ली
      (vi) हैदराबाद।
   (ग) प्रत्येक की अक्षांशीय और देशांतरीय स्थिति लिखिए।
   (घ) चार या पाँच वाक्यों में प्रत्येक के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
7. भारत के राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का एक चार्ट बनाइए तथा इसमें इनका क्षेत्रफल, देश के कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत, देश की कुल जनसंख्या का प्रतिशत तथा जनसंख्या का घनत्व दिखाइए।

2
अध्याय

भू-वैज्ञानिक संरचना और भू-आकृतियाँ

भू-विज्ञान पृथ्वी के पर्पटी का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। पृथ्वी का अपना एक इतिहास है। पृथ्वी के ऐतिहासिक अध्ययन को ऐतिहासिक भू-विज्ञान कहते हैं। यह दिक्काल में पर्पटी के विकास के प्रतिरूपों का अध्ययन करता है। मानव इतिहास के समान ही हम भू-वैज्ञानिक इतिहास को महाकल्पों और कल्पों में विभाजित कर सकते हैं। महाकल्प समय का प्राथमिक अंतराल है और कल्प द्वितीय अंतराल। महाकल्प काल में बने शैलों को शैल संघ और कल्प काल में बने शैलों को शैल समूह कहते हैं। मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्प ये हैं : प्राक्-कैंब्रियन (57 करोड़ वर्षों से प्राचीन), पुराजीव (24.5 से 57 करोड़ वर्ष प्राचीन), मध्यजीव (6.6 से 24.5 करोड़ वर्ष प्राचीन) तथा नूतनजीव (6.6 करोड़ वर्ष प्राचीन से लेकर अर्वाचीन काल तक)। भारतीय भू-वैज्ञानिक महाकल्प ये हैं : आद्य महाकल्प (पूर्व प्राक्-कैंब्रियन), पुराण (अपर प्राक्-कैंब्रियन), द्राविड़ (40 से 57 करोड़ वर्ष प्राचीन) तथा आर्य (40 करोड़ वर्षों से लेकर आज तक)।

यूनाइटेड किंगडम के वेल्स को लैटिन भाषा में 'कैंब्रिया' कहते हैं। भू-वैज्ञानिक महाकल्प प्राक्-कैंब्रियन का नाम कैंब्रिया की शैल समूहों के आधार पर रखा गया था। कल्पों के नाम उन स्थानों के नामों पर रखे गए हैं, जहाँ से उस कल्प के शैल समूह प्राप्त हुए हैं। प्राक्-कैंब्रियन शैल समूहों में प्रारंभिक पौधों और जीव-जंतुओं के जीवाश्म नहीं मिलते हैं। पुराजीव में अत्यंत प्राचीन जीवन, मध्यजीव में मध्य जीवन तथा नूतन जीव में नूतन जीवन के जीवाश्म मिलते हैं।

भू-वैज्ञानिक इतिहास

भारतीय उप-महाद्वीप का वर्तमान भौतिक रूप विशाल शैल समूहों का परिणाम है। यह सही है कि भारत के विभिन्न विभागों का निर्माण एक लंबे भू-वैज्ञानिक इतिहास में हुआ है, लेकिन भारत मुख्य रूप से तीन भू-वैज्ञानिक इकाइयों से बना है :

(i) प्रायद्वीपीय पठार;
(ii) हिमालय पर्वत; तथा
(iii) ऊपर के दो के मध्य, सिंधु-गंगा के मैदान।

स्तरित शैल विज्ञान, भू-वैज्ञानिक संरचना और भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से प्रायद्वीपीय पठार और हिमालय पर्वत एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। स्तरित शैल विज्ञान में शैल संस्तरों की प्राप्ति के क्रम, उनकी मोटाई और आयु का आंशिक अध्ययन किया जाता है। भू-वैज्ञानिक संरचना में वलनों तथा भ्रंशों का और उनके निर्माण के साथ जुड़ी आग्नेय गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। भू-आकृति विज्ञान में धरातलीय लक्षणों, पर्वतों, पठारों और मैदानों के निर्माण और विकास का अध्ययन किया जाता है।

कैंब्रियन कल्प से लेकर आज तक प्रायद्वीपीय स्थल क्षेत्र ही रहा है। केवल इसके तटीय क्षेत्र थोड़ी सी अवधि के लिए समुद्र में डूब गए थे। इसके विपरीत कैंब्रियन कल्प से लेकर पर्वतों के रूप में निर्माण तक की लंबी ऐतिहासिक अवधि में हिमालय पर्वत समूह जल-मग्न रहा है। प्रायद्वीपीय पठार पर पार्श्वीय क्षेपों और पर्वत निर्माणकारी बलों का कुछ प्रभाव पड़ा है, लेकिन इनसे इसका मूल आधार प्रभावित नहीं हुआ है। प्रायद्वीप जो हिन्द-आस्ट्रेलियाई प्लेट का भाग है पर ऊर्ध्वाधर संचलनों और खंड भ्रंशन का प्रभाव पड़ा है।

प्रायद्वीपीय पठार की तुलना में उत्तरी पर्वत कमजोर और लचीले हैं। परिणामस्वरूप यहाँ पर वलन और विरूपण की क्रियाएँ हुई हैं। वलनों, भ्रंशों और क्षेप तलों के विकास में सम्पीड़क और पर्वत निर्माणकारी बलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रायद्वीप पर अधिकतर अवशिष्ट पर्वत ही हैं। यहाँ नदी घाटियाँ उथली तथा मंद ढाल वाली हैं। इसके विपरीत हिमालय विवर्तनिक पर्वत है। इसकी नदियाँ युवावस्था के लक्षणों से युक्त तीव्र गति से बहने वाली हैं। प्रायद्वीप को प्रायद्वीप-इतर भाग से अलग करने वाले भारत के

विशाल जलोढ़ मैदानों का भू-वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि इनकी भू-वैज्ञानिक संरचना बहुत साधारण है।

तीनों भू-वैज्ञानिक इकाइयों का साथ होना भू-वैज्ञानिकों के लिए उलझन भरी समस्या है। अधिकतर भू-वैज्ञानिकों का विश्वास है कि भारतीय प्रायद्वीप, गोंडवाना महाद्वीप का अंग था। इसके उत्तर की ओर सरकने और मध्य एशियाई पठार से टकराने के परिणामस्वरूप ही टेथिस सागर से हिमालय का जन्म हुआ है।

भारत का भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग भारत के शैल समूहों को चार वर्गों में विभाजित करता है। ये संघ हैं : सबसे पुराने आद्यमहाकल्पीय, पुराण महाकल्पीय, द्राविड़ महाकल्पीय तथा सबसे नवीन आर्य महाकल्पीय। भारत का आद्यमहाकल्प, प्राक्-कैंब्रियन महाकल्प के पूर्वार्ध से मेल खाता है। पुराण महाकल्प की प्राक्-कैंब्रियन के उत्तरार्ध से संगति बैठती है। द्राविड़ महाकल्प में कैंब्रियन महाकल्प से लेकर मध्य कार्बोनी कल्प तक की अवधि समाहित है। आर्य महाकल्प में ऊपरी कार्बोनी कल्प से लेकर अत्यंत नूतन युग तक की अवधि शामिल है (सारणी 2.1)। भारत के महत्त्वपूर्ण शैल समूह ये हैं : आद्यमहाकल्पीय शैल समूह, धारवाड़ शैल समूह, कड़प्पा शैल समूह, विंध्ययी शैल समूह, गोंडवाना शैल समूह, दकन ट्रैप, तृतीय शैल समूह तथा चतुर्थ शैल समूह।

आद्य महाकल्प में पृथ्वी की सबसे पहले बनी चट्टानें सम्मिलित हैं। प्रायद्वीप पर ये चट्टानें मुख्यतः तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और राजस्थान में पाई जाती हैं। ये चट्टानें मुख्य रूप से नीस और ग्रेनाइट हैं। इनमें जीवाश्म के कोई चिह्न नहीं मिलते हैं। आद्यमहाकल्पीय चट्टानें हिमालय में भी पाई जाती हैं।

धारवाड़ शैल समूह की चट्टानें सबसे पहले बनी हुई अवसादी शैलें हैं। आज ये कायान्तरित रूप में मिलती हैं। इनमें भी जीवाश्म नहीं मिलते हैं। ये चट्टानें कर्नाटक, मध्य प्रदेश, झारखंड, मेघालय और राजस्थान में फैली हैं (चित्र 2.1)। ये मध्य और उत्तरी हिमालय में भी पाई जाती हैं। शिस्ट, स्लेट, क्वार्टजाइट और कांग्लोमेरेट इसी वर्ग की चट्टानें हैं। इस शैल समूह में, सोना, मैंगनीज अयस्क, लौह अयस्क, क्रोमियम, तांबा, यूरेनियम, थोरियम और अभ्रक जैसे खनिज पाए जाते हैं। ग्रेनाइट, संगमरमर, क्वार्टजाइट और स्लेट जैसी चट्टानों के रूप में भवन निर्माण सामग्री भी इनमें उपलब्ध है।

कड़प्पा शैल समूह की चट्टानें राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में विस्तृत हैं। इन चट्टानों में लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क, स्लेट और संगमरमर पाए जाते हैं।

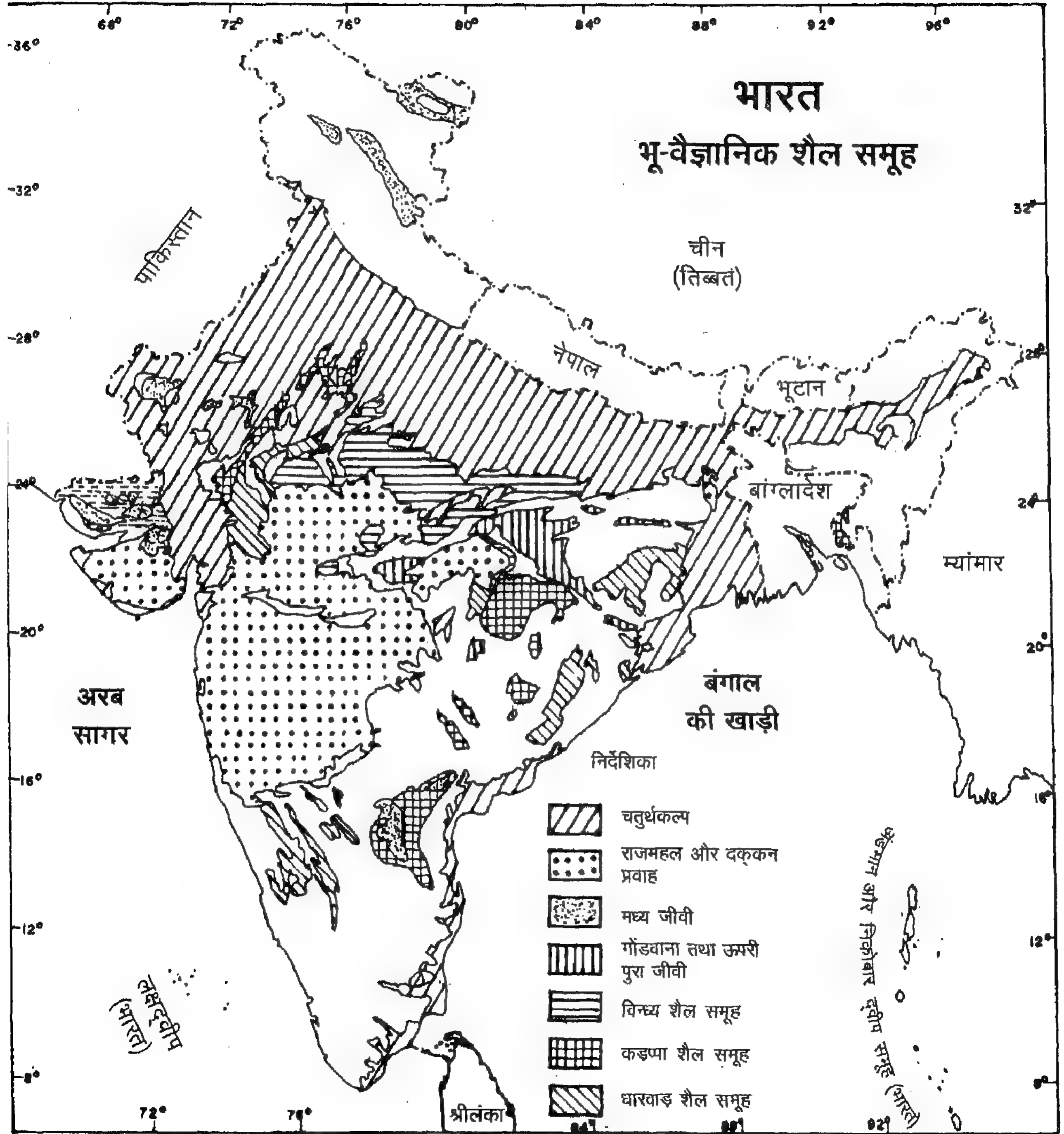
विंध्यीय शैल समूह, कड़प्पा की चट्टानों पर बिछी हैं। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के विशाल क्षेत्रों में इनका विस्तार है। इस शैल समूह में भवन निर्माण के लिए उपयुक्त चूना पत्थर, बलुआ पत्थर, शैल (कड़प्पा) और स्लेट नामक चट्टानें पाई जाती हैं।

द्रविड़ महाकल्प में प्रायद्वीप पठार समुद्र तल से ऊपर था। अतः इस शैल समूह की चट्टानें यहाँ नहीं पायी जाती हैं। लेकिन हिमालय में ये एक निरंतर क्रम में मिलती हैं।

ऊपरी कार्बनी कल्प में प्रायद्वीप को पर्पटीय संचलनों के आघात सहने पड़े। इनके परिणामस्वरूप द्रोणी की आकृति के गर्तों का निर्माण हुआ। इन गर्तों में असंख्य स्थलीय पौधे तथा जीव-जन्तु थे। ये कालांतर में दब गए और इनसे भारत के कोयला निक्षेपों की उत्पत्ति हुई। इन्हें गोंडवाना शैल समूह कहते हैं। इनमें कोयले के निक्षेप हैं। ध्रुवीय ठंडी जलवायु से लेकर उष्ण कटिबंधीय और मरुस्थलीय दशाओं के जलवायुयिक परिवर्तनों के चिह्न इन शैल समूहों में दिखाई देते हैं। ये शैल समूह प्रायद्वीप की दामोदर, महानदी और गोदावरी की घाटियों में विस्तीर्ण हैं।

पुराजीव महाकल्प से लेकर तृतीय कल्प से संबंधित समुद्री अवसादी चट्टानें, कश्मीर से सिक्किम तक फैले, मध्य हिमालयी अक्ष के उत्तरी भाग में पाई जाती हैं। ये शैल समूह प्रायद्वीप के अनेक स्थानों पर पाए जाते हैं। इन स्थानों में प्रमुख हैं : गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडु तथा उत्तर-पूर्वी भारत।

मध्य जीव महाकल्प के अंत में ज्वालामुखियों से व्यापक स्तर पर लावा फूट निकला। लावा के इस प्रवाह ने महाराष्ट्र के विशाल क्षेत्रों और दक्कन के अन्य भागों को लगभग पूरी तरह ढक लिया। यह लावा प्रवाह दक्कन ट्रैप के नाम से विख्यात हैं। लावा के प्रवाहों के बीच में पतली जीवाश्मयुक्त अवसादी परतें पाई जाती हैं। यह इस



चित्र 2.1 भारत : भू-वैज्ञानिक शैल समूह

बात को पुष्ट करता है कि लावा प्रवाहों में निरंतरता नहीं थी। ज्वालामुखी की हलचलों से दो प्रमुख घटनाएँ घटीं : (i) गोंडवाना लैंड का विखंडन; तथा (ii) टेथिस सागर से हिमालय का उत्थान।

तृतीय कल्प के शैल समूह अधिकतर हिमालय में पाए जाते हैं। प्रायद्वीप में गुजरात, केरल और तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में भी इनका विस्तार है। तृतीय कल्प के शैल समूह में भूरा कोयला, सेंधा नमक, जिप्सम और चूना-पत्थर मिलते हैं। बाह्य हिमालय में जीव-जन्तुओं की विभिन्न प्रजातियों के असंख्य जीवाश्म पाए जाते हैं। इन जीव-जन्तुओं में प्रमुख थे : हाथी, गैंडे, घोड़े, सूअर, हिरण, चौसिंगे और मानवाभ बंदर।

चतुर्थ कल्प के प्रमुख शैल समूह ये हैं : कश्मीर में हिमयुग के निक्षेप, उत्तर भारत में जलोढ़ मैदानों की उत्पत्ति, राजस्थान मरुस्थल का निर्माण, कच्छ का रन, प्रायद्वीप में लैटराइट की उत्पत्ति तथा रेगड़ मृदाओं

सारणी 2.1 : भारत के प्रमुख भू-वैज्ञानिक शैल समूह

भारतीय महाकल्प	*मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्प और कल्प*	*कल्प की अवधि (करोड़ वर्षों में)*	*प्रारंभ से आयु (करोड़ वर्षों में)*	*प्रायद्वीप में प्रमुख शैल समूह*	*प्रायद्वीपीय-इतर भाग में प्रमुख शैल समूह*
आर्य	**नूतनजीवी** **चतुर्थ** अभिनव अत्यंत नूतन	0.2 से कम 6.4	0.2 या 0.3	नवीनतम जलोढ़ मरुस्थल लैटराइट	गंगा के मैदान की उत्पत्ति
	तृतीय अतिनूतन मध्यनूतन अल्पनूतन आदिनूतन			तृतीय तटीय निक्षेप	हिमालय की उत्पत्ति
	मध्यावधि		6.6		
	क्रिटेशस जुरैसिक ट्रायसिक	17.9		दक्कन ट्रैप, समुद्री निक्षेप	ज्वालामुखीय शैल समूह समुद्री अवसाद
	पुराजीवी		24.5		
द्राविड़	पर्मियन कार्बनी डेबौनी सिल्यूरियन और्डोविशियन	32.5		अवर गोडवाना (कोयला निक्षेप) कोई निक्षेप नहीं	कश्मीर और स्पीति में निक्षेप
	प्राक्-कैंब्रियन		57		
पुराण	अपर प्राक्-कैंब्रियन			विंध्यीय कड़प्पा धारवाड़ अरावली आद्य शैल समूह	आद्य महाकल्पीय नीस
आद्य	पूर्व-कैंब्रियन				

का निर्माण। कश्मीर और हिमालय में हिमयुग के अवसादों का निक्षेपण हुआ।

भू-आकृतिक लक्षण

भारत पर्वतों, पठारों और मैदानों का एक सुंदर देश है। उत्तर में हिममंडित हिमालय है। यह संसार का नवीनतम और सर्वोच्च पर्वत समूह है। तृतीय कल्प के दौरान, लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व, टेथिस सागर में से इसका जन्म हुआ था, तब से लेकर आज तक ये भू-पृष्ठीय अपरदन के नियंत्रण में है। अपरदन के कारक इन पर सक्रिय हैं। दक्षिण में त्रिभुजाकार विशाल प्रायद्वीप है। यह संसार के प्राचीनतम भू-भागों में से एक है। इसका धरातल अवशिष्ट है। हिमालय और प्रायद्वीप के मध्य में गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदियों के तंत्र का विशाल जलोढ़ मैदान है। मैदान भारतीय इतिहास का प्रमुख रंगमंच रहा है। आजकल यह देश में अनाज का मुख्य भंडार है।

विशाल भू-भाग में फैली इन तीन प्रमुख स्थलाकृतियों को सुविधापूर्वक निम्नलिखित सात भू-आकृतिक इकाइयों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) हिमालय पर्वत
   1. उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ
(ख) गंगा-सिंधु का मैदान
   2. विशाल मैदान
   3. थार मरुस्थल
(ग) प्रायद्वीपीय पठार
   4. मध्यवर्ती उच्च भूमि
   5. प्रायद्वीपीय पठार
   6. तटीय मैदान
   7. द्वीप समूह

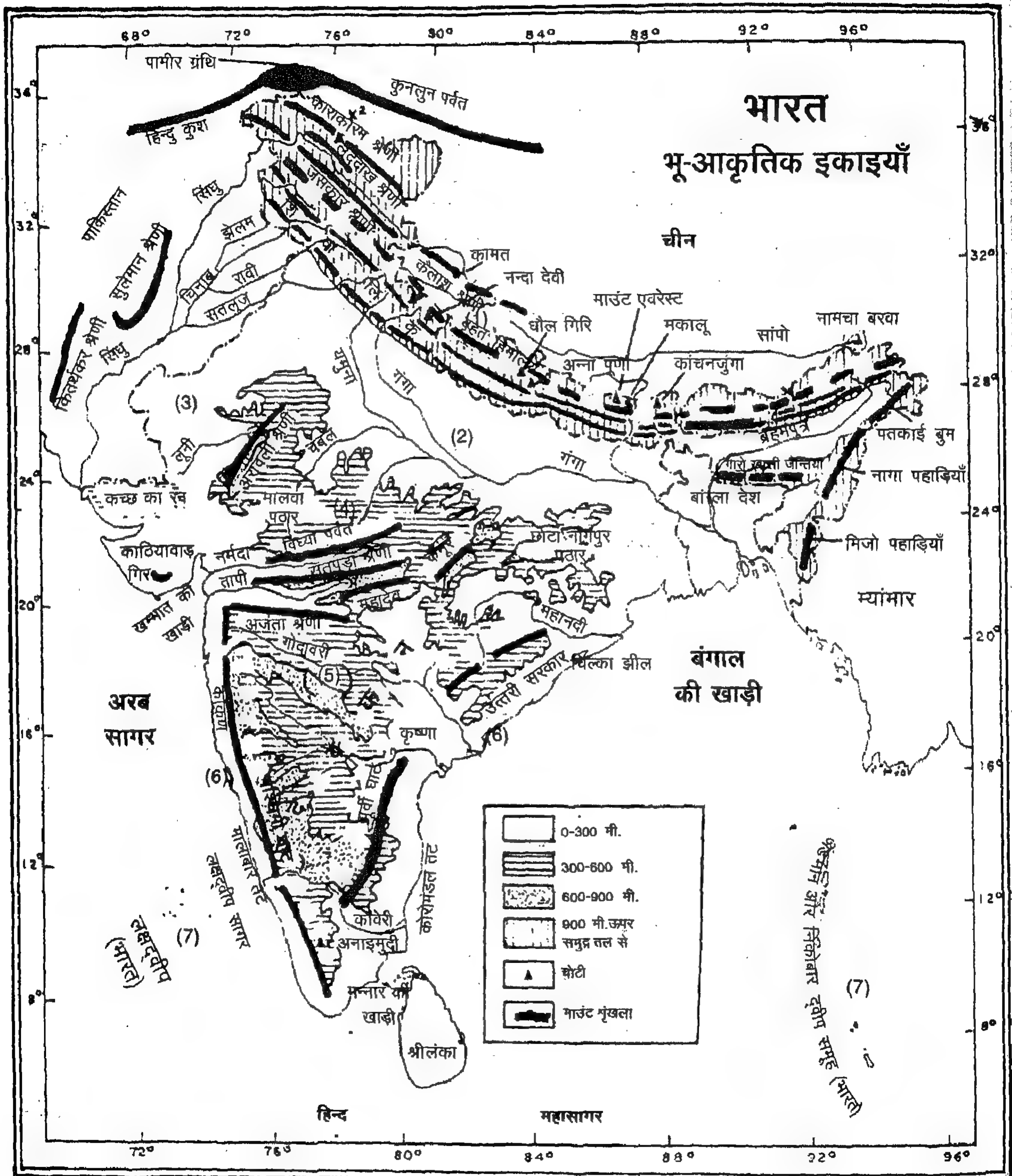
उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ

भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित हिमालय पर्वत की शृंखलाएँ संसार में सबसे ऊँची हैं। विशाल सिंधु नदी और शक्तिशाली ब्रह्मपुत्र इसे तीन भागों में विभाजित कर देती है। ये भाग है : मुख्य हिमालय, उत्तर पश्चिम हिमालय (हिमालय पार की पर्वत श्रेणियाँ) तथा दक्षिण पूर्व हिमालय (पूर्वांचल) (चित्र 2.2)।

मुख्य हिमालय का विस्तार उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर दक्षिण-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक है। ये संसार के सबसे युवा पर्वत हैं। अपनी युवावस्था के कारण इनमें संसार का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट (8,848 मी.) है। इस पर्वत का नाम भारत के पूर्व महासर्वेक्षक सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर रखा गया है। हिमालय में लगभग 140 पर्वत शिखर ऐसे हैं , जिनकी ऊँचाई आल्प्स की सबसे ऊँची चोटी माउंट ब्लैंक (4,810 मी.) से भी अधिक है। हिमालय के कुछ उल्लेखनीय पर्वत शिखर ये हैं : कांचनजुंगा (8,598 मी.), धौलगिरि (8,178 मी.) तथा गोसांईथान (8,018 मी.)। हिमालय में उच्चावच ऊँचा, शिखर हिम-मंडित, स्थलाकृति बहुत अधिक विरदित, जटिल भू-वैज्ञानिक संरचना और सघन वन हैं। हिमालय की लंबाई 2,500 कि.मी. है तथा चौड़ाई 150 से 400 कि.मी. के बीच है। इसकी तीन पर्वत श्रेणियाँ हैं : उत्तर में

सारणी 2.2 : भारत : भू-आकृतिक इकाइयाँ

इकाइयाँ	*क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. (लगभग)*	*कुल क्षेत्रफल प्रतिशत*
1. उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ	5,78,000	17.9
2. विशाल मैदान	5,50,000	17.1
3. थार मरुस्थल	1,75,000	5.4
4. मध्यवर्ती उच्चभूमि	3,36,000	10.4
5. प्रायद्वीपीय पठार	12,41,000	38.5
6. तटीय मैदान	3,35,000	10.4
7. द्वीप समूह	8,300	0.3



चित्र 2.2 भारत : भू-आकृतिक इकाइयाँ

हिमाद्रि (बृहत् हिमालय), मध्य में हिमाचल (लघु हिमालय) तथा शिवालिक (बाह्य हिमालय)। इनके बाद भारत का विशाल मैदान प्रारंभ हो जाता है (चित्र 2.4)।

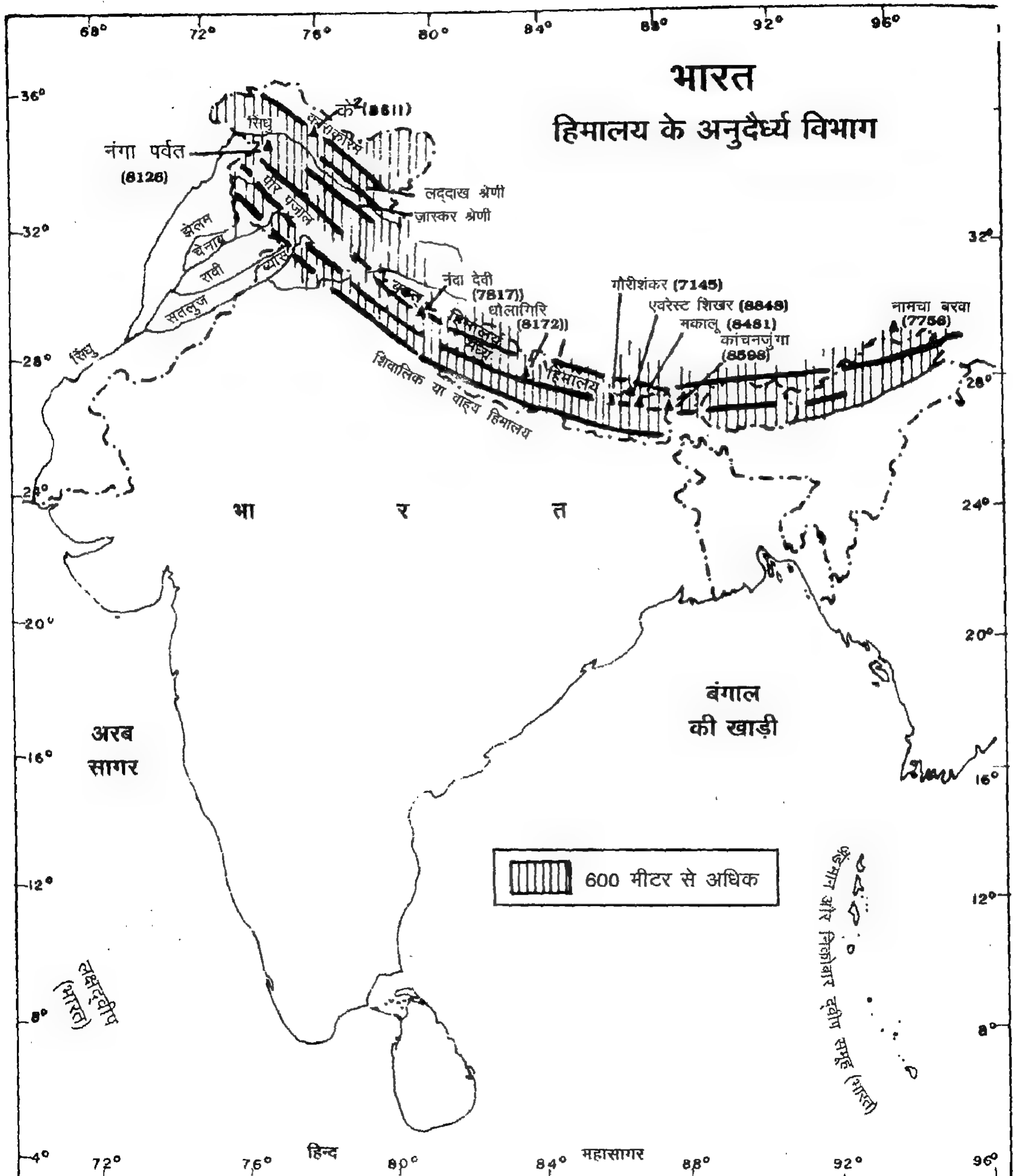
हिमाद्रि बहुत ऊँची (6,000 मी.) पर्वत श्रेणी है। यह सदा हिम से ढकी रहती है। यह एक असममित पर्वत है। दक्षिण की ओर इसके बहुत कम पर्वत स्कंध है। इसका उत्तरी ढाल बहुत मंद है, जो धीरे-धीरे नदी घाटियों में विलीन हो जाता है। नदी घाटियाँ लंबी दूरी तक पर्वत के समान्तर चली गई हैं। हिमाचल की श्रेणी की दक्षिणी ढाल तीव्र और नग्न हैं तथा उत्तरी ढाल मंद और वनों से ढके हैं। इसकी स्थलाकृति शूकर कटक (hogback) जैसी है। यह अत्यंत संपीडित और कायांतरित चट्टानों से बनी है। कुछ अपवादों को छोड़कर यह 5,000 मी. से अधिक ऊँची नहीं है। शूकर कटक के समान दिखने वाली शिवालिक, हिमालय की गिरिपद पहाड़ियाँ हैं। इसकी औसत ऊँचाई लगभग 600 मी. है। हिमाचल श्रेणी और शिवालिक श्रेणी के मध्य कुछ समतल संरचनात्मक घाटियाँ हैं; इन्हें दून कहते हैं। देहरादून सुविख्यात है। देहरादून में सघन वन हैं तथा यहाँ गहन खेती होती है। हिमाद्रि और हिमाचल के मध्य कुछ चौड़ी अभिनत घाटियाँ हैं। ये अत्यंत मनोरम, उर्वर और घनी बसी हैं। काठमांडू और कश्मीर घाटियाँ काफी विस्तृत हैं।

हिमाद्रि पर अनेक हिमानियाँ हैं। इनमें से गंगोत्री, केदारनाथ, मिलाम और पिंडारी नाम की हिमानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। गंगोत्री और केदारनाथ हिमानियों के हिम की आपूर्ति गंगोत्री नाम के हिमाल (हिमक्षेत्र) से होती है तथा मिलाम और पिंडारी को हिम नंदादेवी हिमाल से मिलता है। भारत की चार सबसे विशाल हिमानियाँ: सियाचिन (75 कि.मी.), बाल्टोरो (58 कि.मी.), बिआफो (59 कि.मी.) और हिस्पार (62 कि.मी.) काराकोरम हिमालय में स्थित हैं। गंगा का उद्गम गंगोत्री, यमुना का यमुनोत्री तथा ब्रह्मपुत्र का चेमायुंगदुंग हिमानियों के पिघले जल से होता है।

उत्तर पश्चिम हिमालय में काराकोरम और हिन्दुकुश प्रमुख पर्वत हैं। सिंधु नदी के उत्तर में विशाल काराकोरम है, जिसे कृष्णगिरि भी कहते हैं। इस क्षेत्र में ऊँची-ऊँची पर्वत चोटियाँ और विस्तृत हिमानियाँ हैं। सीढ़ीदार अर्द्ध मरुस्थल के भूदृश्य काराकोरम की विशेषताएँ हैं। इसकी सबसे ऊँची पर्वत शृंखला के[2] है। लद्दाख भारत का सबसे ऊँचा पठार है। इसकी औसत ऊँचाई 5,300 मी. है। इस

बृहत् हिमालय के चौदह पर्वत शिखर

	शिखर	*ऊँचाई (मी.में)*
1.	अन्नपूर्णा	8,078
2.	मनास्लू	8,156
3.	गोसांईथान (शीष पंगमा)	8,018
4.	चोओयू	8,153
5.	एवरेस्ट (सागरमाथा)	8,848
6.	एवरेस्ट दक्षिण	8,754
7.	ल्होत्से 1	8,501
8.	ल्होत्से मध्य	8,410
9.	लहोत्से शर	8,384
10.	मकालू 1	8,481
11.	मकालू दक्षिण	8,010
12.	कांचनजुंगा 1	8,598
13.	कांचनजुंगा दक्षिण	8,474
14.	कांचनजुंगा पश्चिम	8,420



चित्र 2.3 भारत : हिमालय के अनुदैर्ध्य विभाग

क्षेत्र की घाटियाँ उथली हैं तथा इनमें गर्म जल के स्रोत हैं। काराकोरम की पर्वत श्रेणियाँ पश्चिम में पाकिस्तान और अफगानिस्तान तक चली गई हैं (चित्र 2.5)।

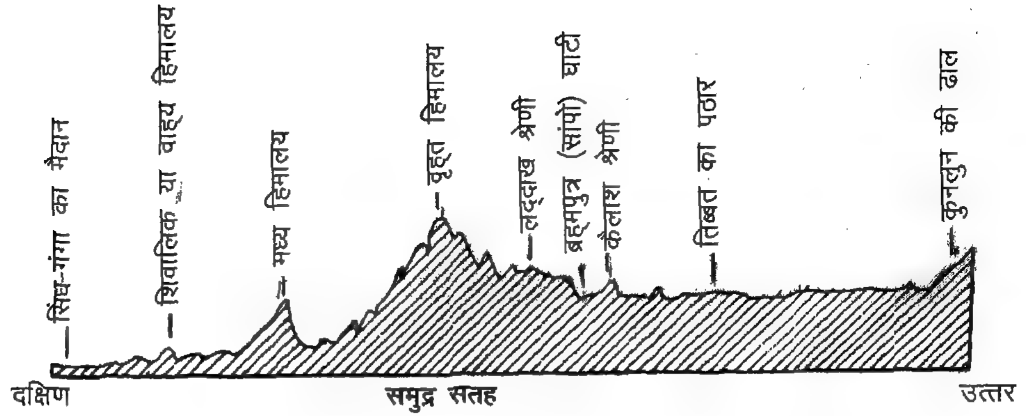
अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा की पहाड़ियाँ, पूर्वी हिमालय के भाग हैं। इनका सामूहिक नाम पूर्वांचल (पूर्वी श्रेणियाँ) है (चित्र 2.6)। गारो, खासी, जयन्तिया और कर्बी अंगलौंग (मिकिर पहाड़ियाँ) प्राचीन चट्टानों से बनी हैं। संरचनात्मक दृष्टि से ये प्रायद्वीपीय पठार के भाग हैं। इन्हें मेघालय का पठार कहते हैं। मेघालय का अर्थ है बादलों का घर। नागा, मणिपुर और मिजो पहाड़ियाँ उत्तर से दक्षिण की दिशा में विस्तृत हैं। इनके विपरीत मेघालय की पहाड़ियाँ पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली हैं।

हिमालय में अनेक दर्रे हैं। इनमें से कुछ हैं : जेलेपला, नाथुला, चोला, पटकई, बुमडिला, चाँगला, काराकोरम आदि। प्राचीन काल में इनका भारत और तिब्बत के बीच संपर्क मार्ग के रूप में उपयोग होता था, लेकिन आजकल ये ऐसे स्थान हैं, जहाँ सुरक्षा बलों को निरंतर चौकसी रखनी पड़ती है।

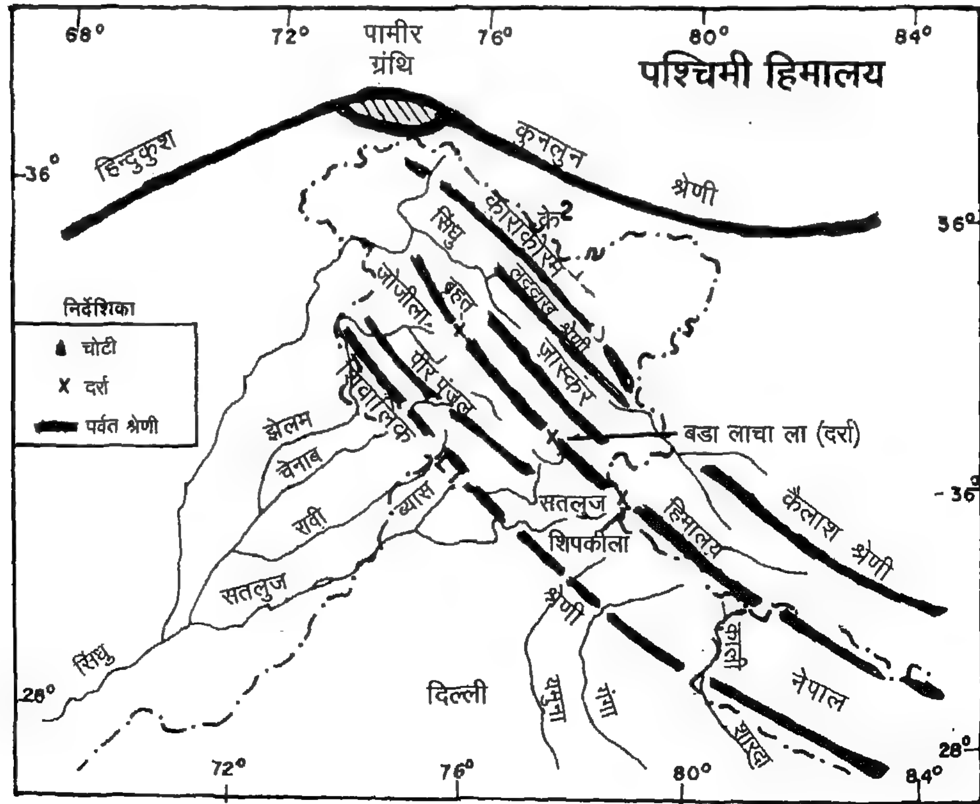
विशाल मैदान

हिमालय से धीरे-धीरे ढलवाँ होते गए ये मैदान काफी विस्तृत हैं। मैदान के मध्यवर्ती तथा पूर्वी भागों का निर्माण

हिमालय पर्वत की प्रमुख हिमानियाँ (लम्बाई कि.मी.में)			
कांचनजुंगा-एवरेस्ट प्रदेश			
जेमू	25	रोंगबक	52
कांचनजुंगा	21	कांगसुग	19
रामबाग	10	बरून	15
खुम्बू	20	तोलम बाऊ	19
मध्य नेपाल प्रदेश			
येपोकांगरा	13	छूलिंग	11
लिदान्दा	11		
कुमाऊं गढ़वाल प्रदेश			
मिलाम	20	सतोपंच	16
गंगोत्री	30	माना	18
भागीरथ खड़क	18		
पीर पंजाल श्रेणी			
सोनापानी	15	गंगरी	13
बड़ा शिगड़ी	15	चुंगफाड़	20
राखियाट	15		
काराकोरम श्रेणी			
बियाफो	59	मानोस्तौंग	16
बाल्टोरो	58	यारकंद रीमो	40
गॉडविन आस्टिन	30	चांग कुमदन	21
सियाचिन	75	हिस्पार	62
फेडशेंको	74	कुनयांग	24
लोलोफोंड	40	छोगोलुंगमा	50
पासु	25	खुर्दोपला	47



चित्र 2.4 हिमालय पर्वत समूह : दक्षिण से उत्तर तक का पार्श्व चित्र



चित्र 2.5 पश्चिमी हिमालय

गंगा (चित्र 2.7) और ब्रह्मपुत्र नदियों तथा इनकी सहायक नदियों के द्वारा हुआ है। इस मैदान के पश्चिमी भाग अर्थात् पंजाब के मैदान का निर्माण सिंधु की सहायक नदियों के द्वारा हुआ है।

विशाल मैदानों की उत्पत्ति नूतन काल में हुई है। ये मैदान लगभग 20 लाख वर्ष पुराने हैं। इनका निर्माण बड़ी नदियों द्वारा निक्षेपित अवसादों से हुआ है। अवसादों की गहराई एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न है। लेकिन सामान्यतः यह 450 मी. से अधिक नहीं है। मैदान के मध्यवर्ती भाग में अवसादों की अधिकतम मोटाई लगभग 3,000 मी. तक हो सकती है। गंगा के मुहाने पर यह मैदान समुद्रतल पर है, लेकिन पंजाब में इसकी ऊँचाई समुद्र तल से 200 मीटर से भी अधिक है। विशाल मैदान का आधा भाग उत्तर प्रदेश में तथा शेष आधा भाग पंजाब, हरियाणा, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम राज्यों में है।

विशाल मैदान में कई रोचक भौतिक लक्षण हैं। इसकी उत्तरी सीमा पर गिरिपद मैदान हैं। ये महीन मलबे और मोटी कंकडों के मिश्रण से बने हैं। इन्हें पंजाब में 'भाबर' और असम में 'दुआर' कहते हैं। गिरिपद मैदानों के दक्षिण में दलदली क्षेत्र है, जिसे 'तराई' कहते हैं। इस क्षेत्र में भाबर में विलीन नदियाँ पुनः धरातल पर आ जाती हैं। अपेक्षाकृत ऊँची भूमि पर फैली प्राचीन जलोढकों को 'बांगर' कहते हैं। उत्तर प्रदेश में नदी के साथ-साथ विस्तृत नवीनतर जलोढकों वाली बाढ़ के मैदानों की निम्न भूमि को 'खादर' और पंजाब में 'बेट' कहते हैं। विशाल मैदान में यत्र-तत्र गर्त हैं। बिहार में ऐसे दो बड़े गर्त हैं। पटना के निकट के गर्त को 'जल्ला' तथा मोकामा के निकट के गर्त को 'टाल' कहते हैं। वर्षा ऋतु में ये बाढ़ के पानी से भर जाते हैं। उत्तर बंगाल में ये मैदान पूर्वी हिमालय की गिरिपाद पहाड़ियों से लेकर गंगा के मुहाने तक फैले हैं। असम की घाटी, गंगा के मैदान का ही विस्तार है। यह ब्रह्मपुत्र का तलोच्चन (तल को ऊँचा उठाने के) कार्य का परिणाम है। घाटी के अत्यंत मंद ढाल के कारण बालू और गाद नदी मार्ग में ही जमा हो जाते हैं। इससे व्यापक बाढ़ें आती हैं। इस मैदान में अनेक जलोढ झीलें हैं, जिनका स्थानीय नाम 'बिल' है।

उत्तरी भारत के मैदान की ढाल दो ओर हैं, एक दक्षिण-पूर्व की ओर तथा दूसरी दक्षिण-पश्चिम की ओर। दिल्ली प्रदेश एक बड़ा जल-विभाजक है। सतलुज और व्यास नदियाँ पंजाब के मैदान का जल बहाकर ले जाती हैं। मध्यवर्ती भाग के जल का अपवाह गंगा और उसकी सहायक नदियों के द्वारा तथा पूर्वी भाग का ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों के द्वारा होता है। नदियाँ वर्ष भर बहने वाली सदानीरा हैं।

थार मरुस्थल

राजस्थान के शुष्क मैदान भारत के विशाल मैदान का ही विस्तार हैं। अरावली श्रेणी के पश्चिम में स्थित ये मैदान कम वर्षा के कारण शुष्क हो गए हैं। इस मरुस्थलीय क्षेत्र के दो प्रादेशिक ढाल हैं : एक पश्चिम की ओर तथा दूसरा दक्षिण की ओर। दक्षिण की ओर का ढाल राजस्थान की नदियों का मुख्य निकास मार्ग रहा है। लूनी (नमकीन नदी) के बड़े मोड़ के दक्षिण की चट्टानी पहाड़ियाँ लगभग 1,000 मी. ऊँची हैं। लूनी की निचली घाटी, मरुस्थल का सबसे नीचा भाग है। यह समुद्र तल से मात्र 20 मी. ऊँचा है।

विलुप्त सरस्वती नदी

नूतन भू-वैज्ञानिक इतिहास में अनेक नदियों ने अपने मार्ग में परिवर्तन किया है तथा कुछ पूर्णतः विलुप्त हो गई हैं। इसके अनेक कारण रहे हैं। वैदिक और प्राक् वैदिक काल में सरस्वती एक शक्तिशाली नदी थी। यह आज पूर्णतया विलुप्त हो गई है। इसके विलोपन का कारण शायद मरुस्थल का प्रसार है। ऐसा विश्वास है कि आज की घग्गर सरस्वती नदी की उत्तरवर्ती नदी है।

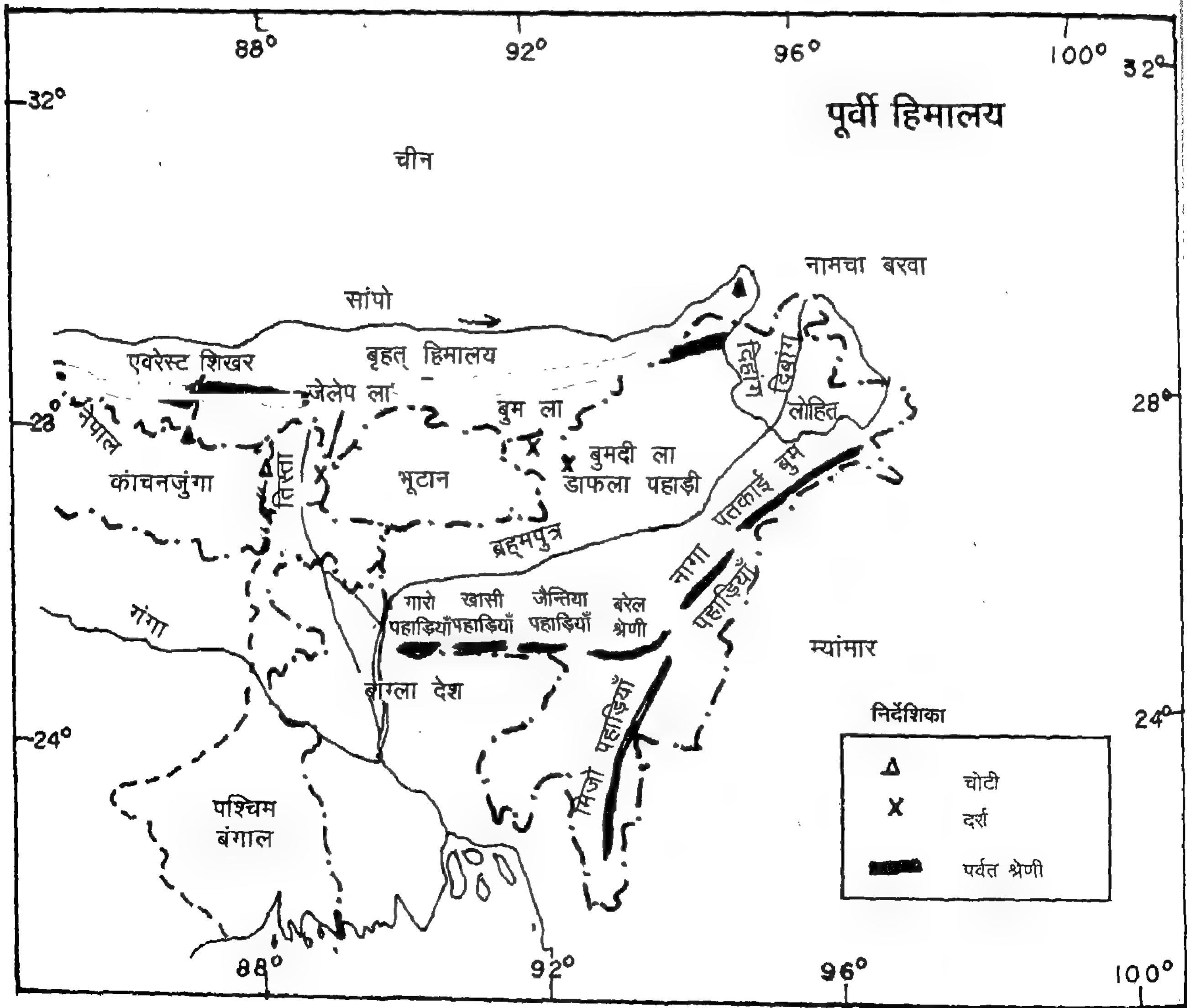
उड़ते बालू और कम वर्षा वाले इस प्रदेश को 'मरुस्थली' कहते हैं। इसका पूर्वी भाग अपेक्षाकृत कम बलुआ और अधिक आर्द्र है। इसमें स्टेपी वनस्पति पाई जाती है। मध्यजीव महाकल्प में यह क्षेत्र समुद्र के गर्भ में था। इसका उत्थान अत्यंत नूतन युग में हुआ था। सरस्वती, दृषाद्वती और सतलुज नदियों से अपवाहित यह क्षेत्र कभी बहुत उपजाऊ था। आजकल लूनी ही थोड़े बहुत महत्त्व की नदी है। इसके ऊपरी मार्ग में मीठा जल बहता है। इस क्षेत्र के अधिकतम भाग में

भूजल खारा है। यहाँ अनेक खारी झीलें हैं। सांभर झील इनमें सबसे बड़ी है।

संपूर्ण प्रदेश बालू के स्थानान्तरी टिब्बों (टीलों) से आवृत हैं। ये तीन भिन्न प्रकार के हैं : अनुदैर्घ्य टिब्बे, चापाकार टिब्बे (बरखान) तथा अनुप्रस्थ टिब्बे। अनुदैर्घ्य टिब्बे, प्रचलित पवनों के समान्तर, उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में फैले हैं। बरकान की आकृति चाप के समान होती है। प्रचलित पवनों की दिशा में इन टिब्बों का उत्तल ढाल होता है। अनुप्रस्थ टिब्बे प्रचलित पवनों के साथ लंबवत् होते हैं। अरावली श्रेणियों के पाद और पश्चिमी मरुस्थली के बीच की पट्टी में बालू के टिब्बों की संख्या कम है। इस क्षेत्र के जल को छोटी-छोटी नदियाँ बहाकर ले जाती हैं। इन नदियों के द्वारा उपजाऊ भूमि का निर्माण हुआ है। ऐसी भूमि को 'रोही' कहते हैं। इस प्रदेश के उत्तरी और मध्यवर्ती भाग में रोही भूमि के अनेक खंड हैं।

मध्यवर्ती उच्च् भूमि

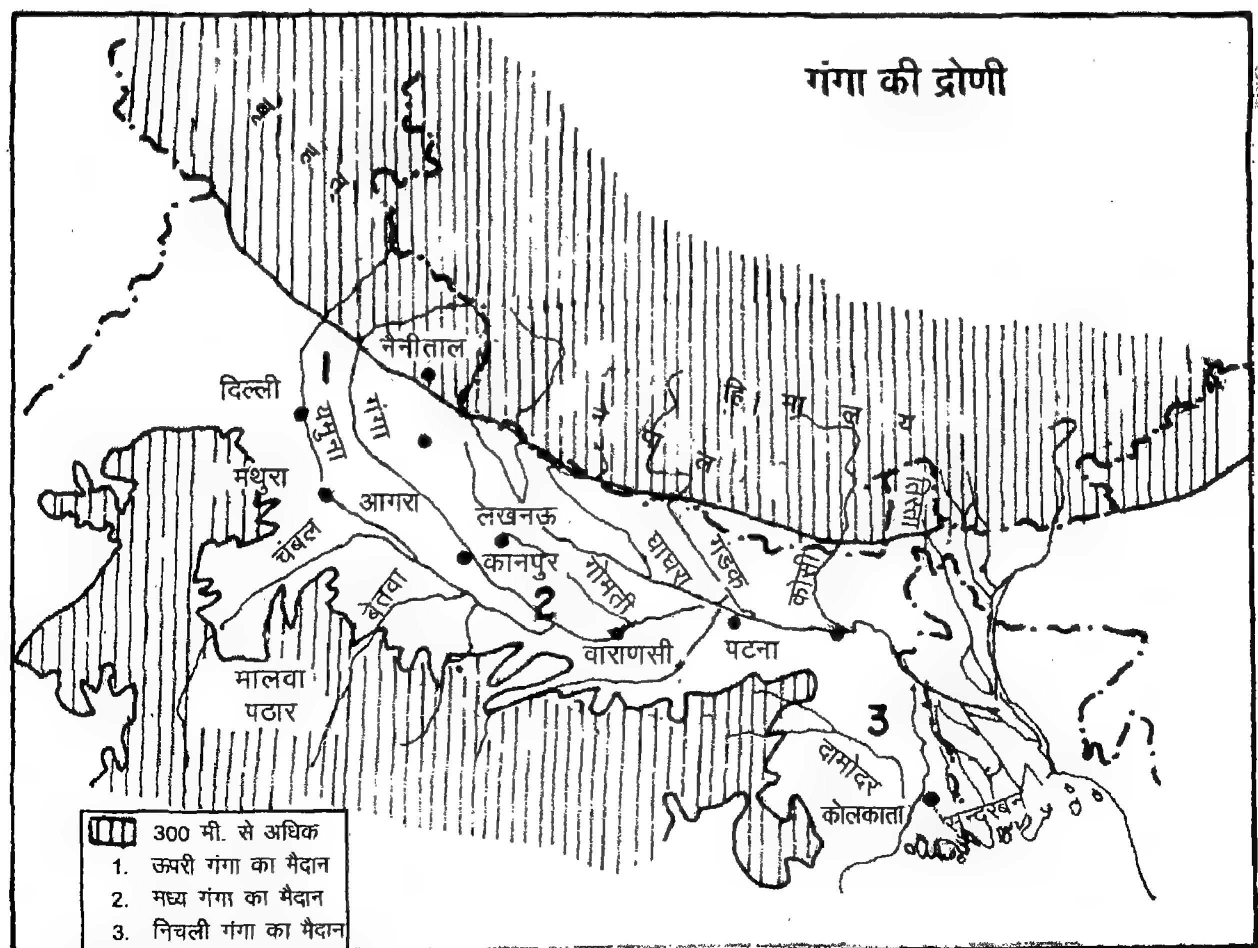
पश्चिम में अरावली पर्वत श्रेणी से तथा पूर्व में विंध्य की कगार से सीमांकित पहाड़ी प्रदेश की चौड़ी पट्टी को मध्यवर्ती उच्चभूमि कहते हैं। इसकी दक्षिणी सीमा



चित्र 2.6 पूर्वी हिमालय

पर नर्मदा की भ्रंश घाटी है। इन उच्चभूमियों में मध्य प्रदेश का आधा, राजस्थान का एक तिहाई तथा उत्तर प्रदेश का थोड़ा सा भाग शामिल है। यह पूरा का पूरा प्रदेश वनाच्छादित है। इसमें अधिकतर गोंड, संथाल, उराँव और भील नाम की जन-जातियाँ रहती हैं। अरावली पर्वत श्रेणी, पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि, मध्य-भारत का पठार, बुंदेलखंड की उच्चभूमि, मालवा का पठार, विंध्य की कगारी भूमि, विंध्य श्रेणी और नर्मदा घाटी इसी प्रदेश के अंग हैं। इनमें से प्रथम चार उत्तरी उच्च भूमि के भाग हैं तथा अन्तिम चार दक्षिणी उच्च भूमि के भाग हैं।

अरावली पर्वत श्रेणी दिल्ली से लेकर दक्षिण-पश्चिम की ओर अहमदाबाद के निकट तक लगभग 800 कि.मी. की दूरी में फैली है। यह भारत का सबसे पुराना विवर्तनिक पर्वत है। अरावली कठोर क्वार्टजाइट चट्टानों से बना है। आबू की पहाड़ियों पर स्थित गुरु शिखर (1,722 मी.) अरावली श्रेणी का सबसे ऊँचा शिखर है। अरावली के पूर्व के क्षेत्र की ऊँचाई 250 मी. से लेकर 500 मी. तक है। इसे पूर्वी राजस्थान की उच्चभूमि कहते हैं। चंबल और बनास ही मुख्य रूप से इस क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती हैं। चंबल के पूर्व की भूमि चट्टानी है तथा यह सघन वनों से ढकी है। इसका नाम मध्य-भारत का पठार है। इस बलुआ पत्थरवाली उच्चभूमि की मुख्य नदी चंबल है। बुंदेलखंड की उच्चभूमि, यमुना और विंध्य की कंगारी भूमि के बीच विस्तृत है। यह क्षेत्र 100 से लेकर 300 मी. तक ऊँचा है। यह



चित्र 2.7 गंगा की द्रोणी

उच्चभूमि पुराना अपरदित धरातल है, जिसका निर्माण ग्रेनाइट से हुआ है।

मध्य भारत पठार और विंध्य श्रेणी के मध्य लावा निर्मित विस्तृत पठार है। इसे मालवा का पठार कहते हैं तथा यहाँ काली मिट्टी पाई जाती है। इस पठार के दक्षिण में विंध्याचल पर्वत श्रेणी है। यह नर्मदा नदी के समान्तर फैली है। इसका निर्माण बलुआ पत्थर, चूना पत्थर, क्वार्टजाइट और शेल से हुआ है। इसके उत्तर-पूर्वी भाग में कगारी भूमि की स्थलाकृतियाँ हैं। इसे विंध्य की कगारी भूमि (कैमूर की पहाड़ियाँ) कहते हैं। मध्यवर्ती उच्च भूमि का दक्षिणतम भाग नर्मदा का संरचनात्मक गर्त है।

प्रायद्वीपीय पठार

बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के अभिमुख भारत का सबसे बड़ा भू-आकृतिक विभाग प्रायद्वीपीय पठार है। यह उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक 1,500 कि.मी. की दूरी में फैला है। इसका पूर्व-पश्चिम विस्तार राजमहल की पहाड़ियों और सहयाद्रि (पश्चिमी घाट) के मध्य 1,400 कि.मी. की दूरी में है। दक्षिण में पठार के धरातल की ऊँचाई 1,000 मी. से अधिक ही है, लेकिन उत्तर में इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक 500 मी. ही है। इसकी आकृति त्रिभुज के समान है। इसकी चार भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ हैं, पश्चिमी घाट, दक्कन का पठार, पूर्वी घाट तथा पूर्वी पठार।

उत्तरी भाग में सह्याद्रि का निर्माण लावा की क्षैतिज चादरों से हुआ है। इसमें थाल घाट और भोर घाट नाम के दो प्रमुख दर्रे हैं। कोंकण के मैदान और आंतरिक पठार के परिवहन के मार्ग इन्हीं दर्रों से होकर गुजरते हैं। मध्य भाग में सह्याद्रि तट के निकट तक आ जाते हैं। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के उद्गम स्थान सह्याद्रि के इसी भाग में हैं। ये नदियाँ पठार से होकर बहती हुई बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। पाल घाट दर्रे के दक्षिण में, सह्याद्रि को दक्षिणी पहाड़ियाँ कहते हैं।

अनैमुदि दक्षिण भारत की सर्वोच्य शिखर (2,696 मी.) है। यह तीन पहाड़ियों का केंद्रबिंदु है। यहाँ से तीन पहाड़ी शृंखलाएँ तीन दिशाओं में जाती हैं। दक्षिण की ओर इलायची (कार्डामम) की पहाड़ियाँ, उत्तर की ओर अन्नामलाई की पहाड़ियाँ तथा उत्तर-पूर्व की ओर पलनी की पहाड़ियाँ हैं।

दक्कन के उत्तरी भाग में सतपुड़ा श्रेणी तथा महाराष्ट्र का पठार शामिल हैं। सतपुड़ा पश्चिम-पूर्व में विस्तृत हैं। मध्यवर्ती भाग में इसे महादेव की पहाड़ियाँ तथा पूर्वी भाग में मैकाल की श्रेणी कहते हैं। महाराष्ट्र का पठार लावा निर्मित है। उत्तर में तापी तथा दक्षिण में गोदावरी इसका जल बहाकर ले जाती है। दक्कन के दक्षिण भाग में आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के पठार हैं। पठार में आद्य महाकल्प की नीस चट्टानें पाई जाती हैं। कृष्णा और कावेरी की सहायक नदियाँ इन पठारों का जल बहाकर ले जाती हैं।

बघेलखंड का पठार, छोटा नागपुर का पठार, महानदी की द्रोणी तथा दंडकारण्य, पूर्वी पठार के अंग हैं। महानदी के उत्तर में बघेलखंड का पठार है। सोन और इसकी सहायक नदियाँ इस पठार का जल बहाकर ले जाती हैं।

राजस्थान की खारी झीलें

थार मरुस्थल के पूर्वी सिरे पर दो सुविख्यात खारी झीले हैं। इनके नाम हैं : सांभर और डीडवाना। ये दोनों ही सामान्य नमक के स्रोत हैं। सांभर झील 'बॉलसन' का अच्छा उदाहरण है। पहाड़ियों से घिरे अभिकेन्द्री अपवाह वाले विस्तृत समतल गर्त को बॉलसन कहते हैं। चौरस सतह तथा अनप्रवाहित द्रोणी वाली छोटी झीलों को प्लाया कहते हैं। वर्षा के बाद इन झीलों में पानी इकट्ठा हो जाता है तथा बड़ी जल्दी भाप बनकर उड़ जाता है। डीडवाना खारी झील एक प्लाया है। कुचामन, सरगोल तथा खाटू झीलें ऐसी ही अन्य प्लाया हैं।

इन खारी झीलों की उत्पत्ति, बहुत समय से विवाद का विषय रही है। इनके खारीपन की व्याख्या के लिए चार सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं : (क) नीचे के संस्तरों से नमक ऊपर आ जाता है। (ख) आस-पास की चट्टानों के निक्षालन से नमक की प्राप्ति होती है। (ग) कच्छ के रन से पवनें नमक के कण उड़ाकर लाती हैं। (घ) झीलें पीछे हटते हुए सागर के अवशेष हैं। नवीनतम वेधन और भू-रासायनिक खोजों के आधार पर प्रथम दो सिद्धांत ही सही लगते हैं।

छोटानागपुर का पठार ग्रेनाइट और नीस से बना है। यह झारखंड का दक्षिणी भाग है। इसकी औसत ऊँचाई 700 मी. है। यह प्राचीन अपरदित धरातल वाला है। इसकी तीन पहाड़ियाँ दालमा, पौरहाट और राजमहल लावा से बनी हैं। दामोदर इस पठार की प्रमुख जलवाहिका है। महानदी अपनी सहायक नदियों सहित पूर्वी पठार के मध्यवर्ती भाग की मुख्य अपवाहिका है। इस पठार का स्थानीय नाम छत्तीसगढ़ द्रोणी है। इस द्रोणी के दक्षिण में विरल जनसंख्या और ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति वाला प्रदेश है। इसे दंडकारण्य पठार कहते हैं।

पश्चिमी घाट की भाँति, पूर्वी घाट लगातार नहीं है। उड़ीसा में पूर्वी घाट को महेन्द्रगिरि कहते हैं। यह खौंडाइट तथा चर्नोकाइट नीस का बना है। दक्षिण की ओर जवादी और शेवराय की पृथक नीची पहाड़ियाँ हैं। तमिलनाडु के सुदूर दक्षिण में नीलगिरि, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट और दक्षिणी पहाड़ियों का मिलन स्थल है। नीलगिरि पर्वत निकटवर्ती क्षेत्रों से एकदम ऊपर उठा हुआ है। इसकी सबसे ऊँची चोटी दोदा-बेटा (2,637 मी.) है। इसी पर उद्गमंडलम (ऊटी) नाम का पहाड़ी स्थान भी है।

तटीय मैदान

प्रायद्वीपीय पठार की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर तटीय मैदान हैं। पश्चिमी तटीय मैदान की तुलना में पूर्वी तटीय मैदान शुष्क और चौड़ा है। पश्चिमी मैदान में दो सुविख्यात प्रायद्वीप : काठियावाड़ और कच्छ, तथा गुजरात का विस्तृत मैदान है। पूर्वी तट पर कई डेल्टा हैं। इनके नाम हैं : महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के डेल्टा। पश्चिमी तट पर कोई डेल्टा नहीं है। पश्चिमी तट लगभग सीधा है, लेकिन पूर्वी तट वक्र है। पहले पर पर्याप्त वर्षा होती है तथा यहाँ बालू के टिब्बे नहीं हैं, जबकि दूसरे में वर्षा की कमी रहती है तथा यहाँ स्थानान्तरी बालू के टिब्बे हैं।

आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पूर्वी तट को पायन घाट (कोरोमंडल) कहते हैं। इसकी चौड़ाई 100 से लेकर 130 कि.मी. के बीच है। यह गोदावरी के डेल्टा से लेकर कन्याकुमारी तक फैला है। उड़ीसा तटीय क्षेत्र को उत्कल का मैदान कहते हैं। यह अपेक्षाकृत सीधा है तथा यहाँ बालू के टिब्बे भी हैं। पूर्वी तट पर दो विशाल लैगून हैं : एक पुलिकट, चेन्नई के उत्तर में तथा दूसरा चिल्का, पुरी के दक्षिण में है।

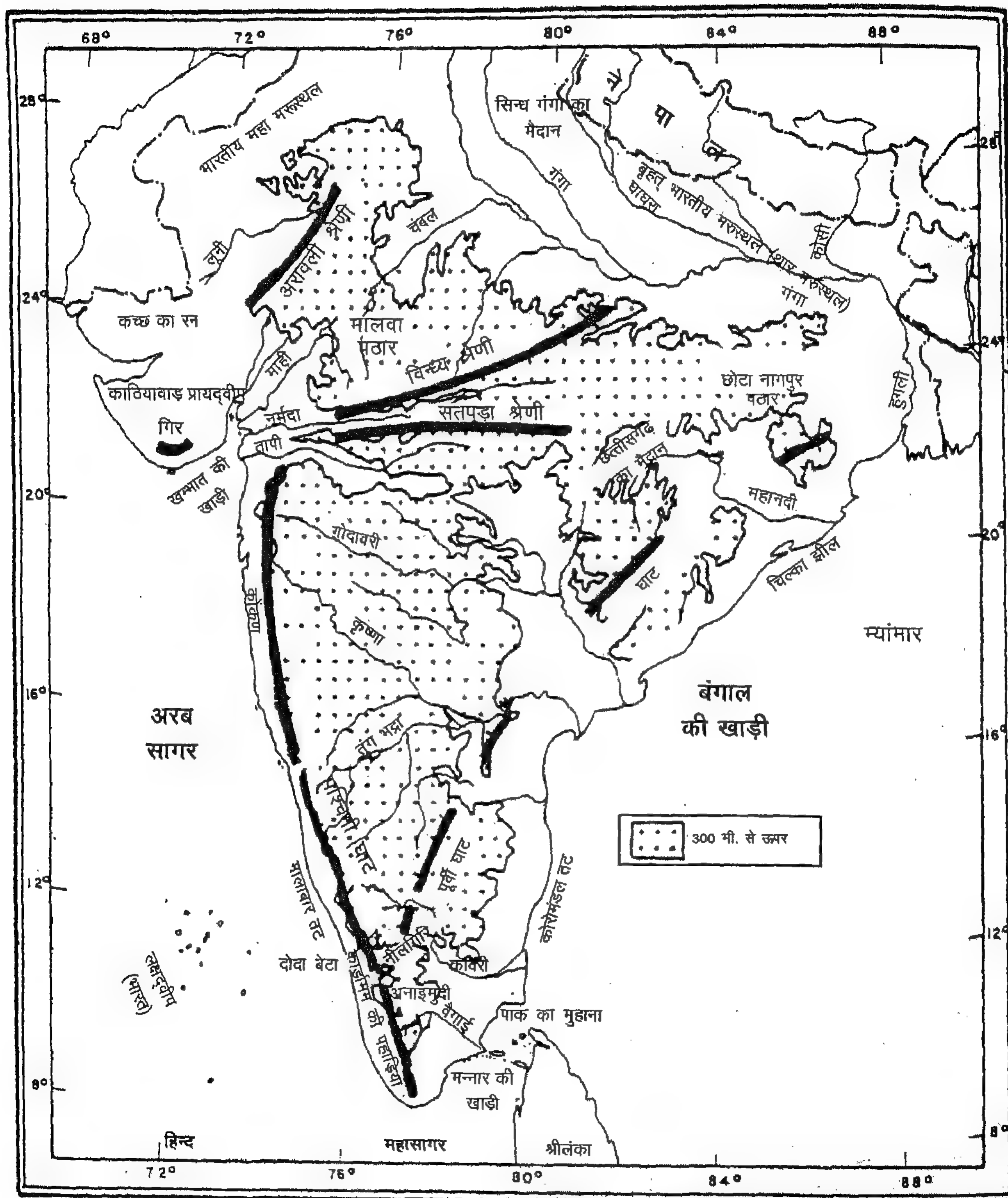
कन्याकुमारी और सूरत के बीच 1,500 कि.मी. की दूरी तक विस्तृत पश्चिमी तटीय मैदान की चौड़ाई 10 और 25 कि.मी. के बीच है। महाराष्ट्र के तटीय मैदान को कोंकण कहते हैं। कर्नाटक में इसे कन्नड के मैदान तथा केरल में मलाबार के मैदान के नाम से पुकारा जाता है। गुजरात का कच्छ प्रायद्वीप कभी एक द्वीप था, तब इसके चारों ओर जल रहता था। कच्छ के उत्तर में दो लवण मैदान हैं, जिन्हें बड़ा और छोटा रन कहते हैं। वर्षा ऋतु में ये पानी में डूब जाते हैं तथा वर्ष की शेष अवधि में सूख जाते हैं। काठियावाड़ के प्रायद्वीप में ज्वालामुखीय पहाड़ियाँ हैं। सुदूर दक्षिण में मालाबार तट पर अनेक पश्चजल हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें 'कयाल' कहते हैं।

मन्नार की खाड़ी और गंगा के मुहाने को छोड़कर अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी के महाद्वीपीय निमग्न तट संकरे हैं। महाराष्ट्र और गुजरात के तट के निकट ये निमग्न तट काफी विस्तृत हैं। आदम का पुल आज समुद्र में 4 मी. की गहराई में डूबा है, लेकिन कभी यह भारत और श्रीलंका के बीच आवागमन का स्थल मार्ग था। लेकिन हिम युग के बाद समुद्र तल के ऊँचा होने पर यह पानी में डूब गया। गंगा के डेल्टा का निकटवर्ती निमग्न तट उथला है। नदियों द्वारा लाए गए अवसादों का निक्षेपण इसका कारण है।

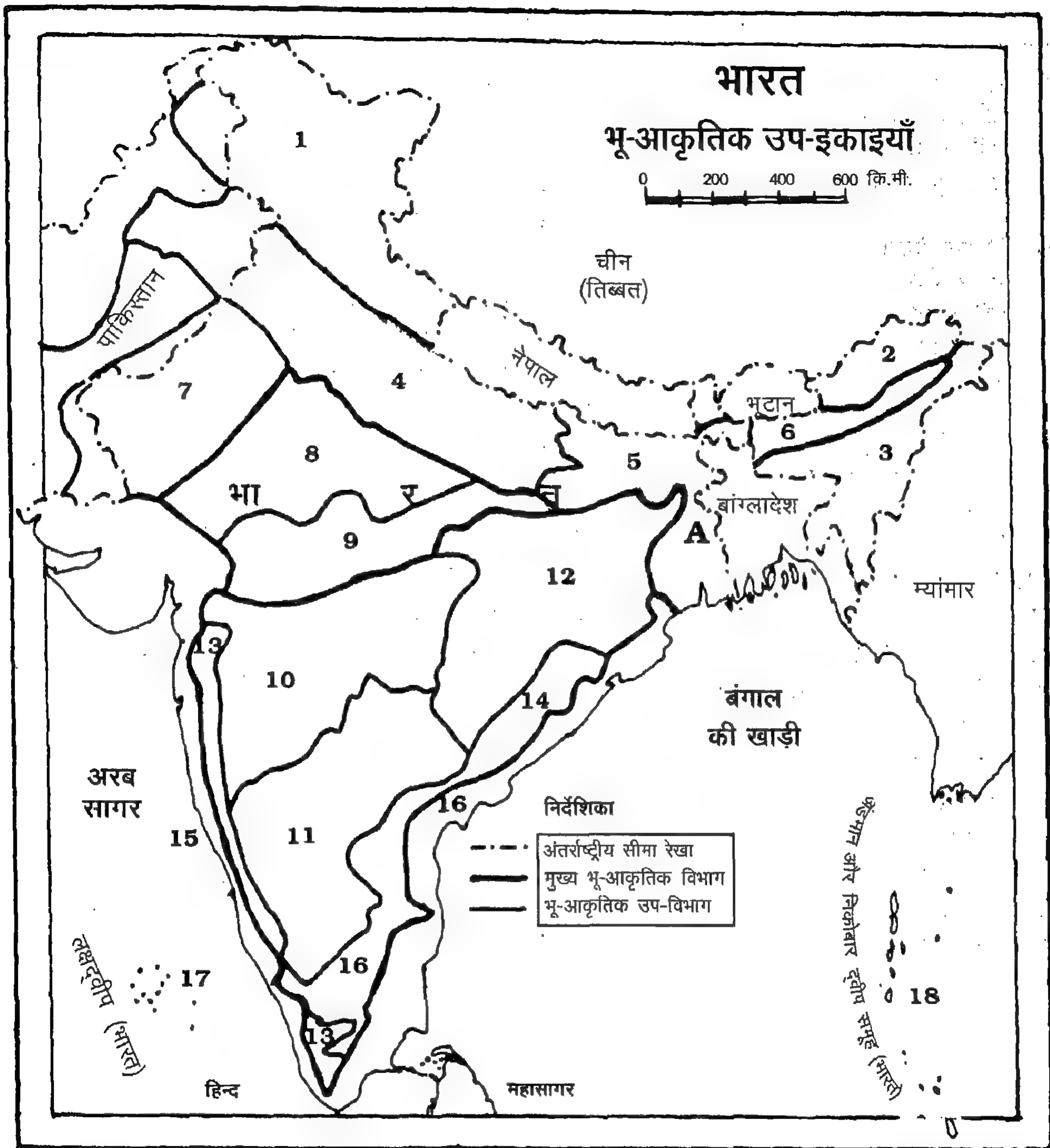
द्वीप समूह

बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में अनेक द्वीप हैं। बंगाल की खाड़ी के द्वीप, अपेक्षाकृत बहुत बड़े और आवास योग्य हैं। अरब सागर के द्वीपों के विपरीत बंगाल की खाड़ी के द्वीप समुद्री पर्वतों की पानी से बाहर निकली चोटियाँ हैं, जबकि अरब सागर के द्वीप पूर्णतया मूंगे के निक्षेपों से बने हैं।

अंडमान और निकोबार बंगाल की खाड़ी के द्वीप समूह हैं। बड़ा अंडमान, उत्तरी, मध्य और दक्षिणी द्वीपों का समूह है। दक्षिण अंडमान में सबसे ऊँची



चित्र 2.8 : प्रायद्वीपीय पठार



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र मे भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणो को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 2.9 भारत : भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ

सारणी 2.3 : भारत : द्वीतीय क्रम की इकाइयाँ

(क)	**हिमालय पर्वत**	**(घ)**	**प्रायद्वीपीय पठार**
1.	पश्चिमी हिमालय	10.	उत्तर दक्कन
2.	पूर्वी हिमालय	11.	दक्षिण दक्कन
3.	उत्तर-पूर्व पर्वत श्रेणी	12.	पूर्वी पठार
		13.	पश्चिमी पहाड़ियाँ
(ख)	**विशाल मैदान**	14.	पूर्वी पहाड़ियाँ
4.	उत्तरी मैदान		
5.	पूर्वी मैदान	**(ङ)**	**तटीय मैदान**
6.	असम का मैदान	15.	पश्चिमी तटीय मैदान
7.	थार मरुस्थल	16.	पूर्वी तटीय मैदान
(ग)	**मध्यवर्ती उच्चभूमि**	**(च)**	**द्वीप समूह**
8.	उत्तर मध्यवर्ती उच्चभूमि	17.	लक्षद्वीप
9.	दक्षिण मध्यवर्ती उच्चभूमि	18.	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

पहाड़ी है। इसका नाम माउंट हैरियट (450 मी.) है। इसका दक्षिणी तट बहुत दंतुरित है। पोर्ट ब्लेयर इस केंद्रशासित प्रदेश का सबसे बड़ा पत्तन दक्षिण अंडमान में ही है। निकोबार में 19 द्वीप हैं। सबसे उत्तरी द्वीप कार निकोबार तटीय प्रवालभित्ति से घिरा है। बैरन द्वीप एक प्रसुप्त ज्वालामुखी है, जबकि नारकोडम द्वीप निर्वापित ज्वालामुखी है।

अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप में कई द्वीप हैं। इनमें से 11 द्वीप अपेक्षाकृत बड़े हैं। सभी द्वीपों की उत्पत्ति प्रवालों से हुई है। सभी द्वीपों के चारों ओर तटीय प्रवालभित्तियाँ हैं।

भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ

ऊपर वर्णित सात भू-आकृतिक इकाइयाँ बृहत क्रम की इकाइयाँ कही जा सकती हैं। प्रत्येक बृहत इकाइयों को छोटी-छोटी उप-इकाइयों अर्थात् द्वितीय क्रम की इकाइयों में बाँटा जाता है।

इन द्वितीय क्रम की भू-आकृतिक इकाइयों को तीसरे क्रम या सूक्ष्म इकाइयों में उप-विभाजित किया जा सकता है। विभिन्न विद्वान भू-आकृतिक इकाइयों का विभाजन अलग-अलग तरह से करते हैं। ये इकाइयाँ हमें भू-आकृति, जलवायु, वनस्पति, मृदा, कृषि, उद्योग, जनसंख्या आदि के अध्ययन के लिए आधार प्रदान करती हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए:
   - (i) प्रमुख मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्पों के नाम लिखिए।
   - (ii) पुराजीव शब्द का क्या अर्थ है ?
   - (iii) भारत के चार भू-वैज्ञानिक महाकल्पों के नाम बताइए।
   - (iv) टेथिस सागर कहाँ था ?
   - (v) भारत के प्रमुख भू-आकृतिक विभागों के नाम लिखिए।
   - (vi) ऐसी तीन पर्वत चोटियों के नाम बताइए जो 8,000 मी. से ऊँची हैं।
   - (vii) हिमालय की लंबाई और चौड़ाई लिखिए।

(viii) भारत की चार सबसे बड़ी हिमानियों के नाम बताइए।
(ix) 'दून' क्या है?
(x) भारत का सबसे प्राचीन विवर्तनिक पर्वत कौन सा है ?
(xi) थार मरुस्थल के विभिन्न प्रकार के बालू के टिब्बों के नाम बताइए।
(xii) 'रोही' मैदान किसे कहते हैं ?
(xiii) पश्चिमी घाट के दो दर्रों के नाम बताइए।
(xiv) 'कयाल' किसे कहते हैं ?
(xv) बैरन द्वीप कहाँ स्थित है ?

2. अंतर स्पष्ट कीजिए:
(i) विंध्यपर्वत और पश्चिमी घाट
(ii) नदी घाटियाँ और दून
(iii) बांगर और खादर
(iv) अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के द्वीप समूह
(v) भाबर और तराई।

3. मध्यवर्ती उच्च भूमियों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिए।
4. विशाल मैदान के विशिष्ट भू-लक्षणों का वर्णन कीजिए।
5. हिमालय की निर्माण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

6. भारत के रेखामानचित्र में निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:
(i) थार मरुस्थल
(ii) तटीय मैदान
(iii) कांचनजुंगा
(iv) नाथू ला और काराकोरम
(v) शिवालिक पर्वतश्रेणी
(vi) मेघालय का पठार
(vii) दक्कन ट्रैप
(viii) विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रेणियाँ।

3
अध्याय

अपवाह तंत्र

एक निर्धारित जलमार्गों द्वारा जल के प्रवाह को अपवाह कहा जाता है। इस प्रकार के जलमार्गों के जाल को अपवाह तंत्र कहते हैं। नदियों और सहायक नदियों के विन्यास को प्राकृतिक अपवाह का प्रतिरूप कहा जाता है। कुछ कारक किसी क्षेत्र के अपवाह प्रतिरूप को निर्धारित करते हैं। ये कारक हैं : चट्टानों का स्वरूप और संरचना, स्थलाकृति, ढाल, प्रवाहित जल की मात्रा तथा प्रवाह की समय के अनुसार घट-बढ़।

अपवाह के विविध प्रतिरूप होते हैं। इनमें से कुछ प्रतिरूप हैं : द्रुमाकृतिक (वृक्षाकार), जालीनुमा, अभिकेन्द्री और गुबंदाकृति। जब अपवाह की आकृति वृक्ष के समान हो जाती है, तो अपवाह के प्रतिरूप को द्रुमाकृतिक कहते हैं। जब नदियाँ किसी पहाड़ी से चारों ओर विकीर्ण होती हैं, तो इस प्रतिरूप को अरीय प्रतिरूप कहते हैं। अभिकेंद्री प्रतिरूप में नदियाँ किसी गर्त या झील में मिल जाती हैं। जालीनुमा प्रतिरूप में प्रमुख सहायक नदियाँ एक दूसरे के लगभग समान्तर बहती हैं, जबकि गौण सहायक नदियाँ दोनों ओर से आकर मिलती हैं। गुंबदाकृति अपवाह प्रतिरूप में वलयाकार और अरीय अपवाह के तत्त्वों का मिला-जुला रूप होता है।

भारतीय अपवाह के प्रतिरूपों का अध्ययन बड़ा रोचक है। विशाल मैदान के अपवाह प्रतिरूप द्रुमाकृतिक हैं, जबकि हिमालय पर्वतमाला और पूर्वांचल के नाम से प्रसिद्ध पूर्वी पहाड़ियों में अपवाह का प्रतिरूप जालीनुमा है। प्रायद्वीपीय नदियाँ आयताकार प्रतिरूप बनाकर बहती हैं। थार मरुस्थल की विशेषता अभिकेंद्री अपवाह प्रतिरूप है।

जल संभर (water shed) एक क्षेत्र है, जिसका जल कोई नदी बहाकर ले जाती है। इसकी सीमा वह रेखा बनाती है, जो एक नदी के जल संभर को दूसरी नदी के जल संभर से पृथक करती है। विशाल नदियों के जल संभर को नदी-द्रोणियाँ (बेसिन) कहा जाता है, लेकिन छोटी सरिताओं और नालियों के रोके क्षेत्र जल संभर ही कहे जाते हैं। फिर भी, जल संभरों और नदी-द्राणियों में थोड़ा सा अंतर है। जल संभरों का क्षेत्रफल प्रायः 1,000 हेक्टेयर से कम ही होता है। जल संभर के लिए यह भी जरूरी नहीं है कि उनका निर्माण छोटी नदियों द्वारा ही हो। बिना किसी छोटी सरिता के भी जल संभर को देखा जा सकता है। इसके लिए केवल किसी क्षेत्र से जल प्रवाह का होना जरूरी है, जो किसी जलमार्ग या झील में चला जाता है।

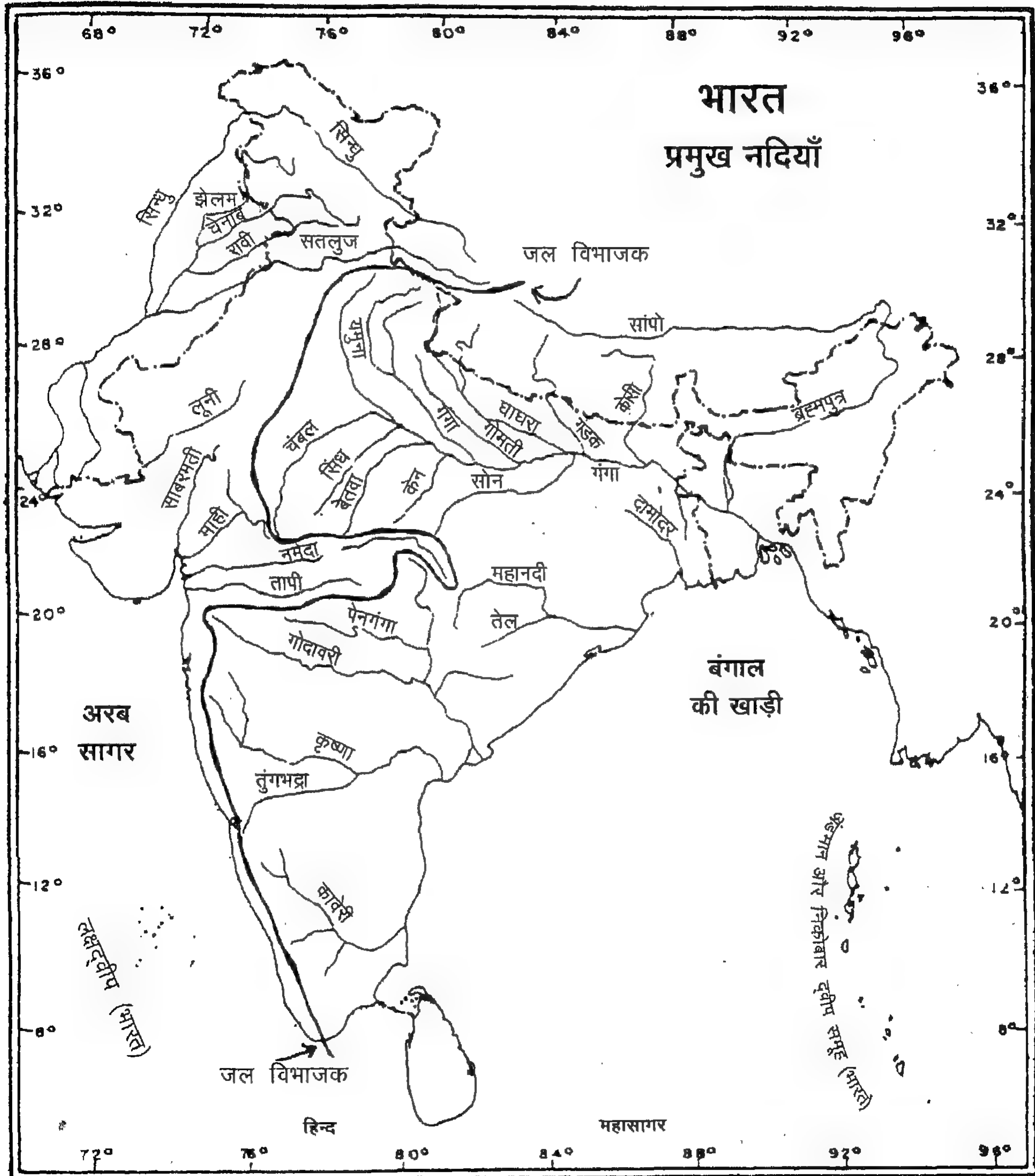
सहक्रिया और एकता नदी-द्रोणियों और जल संभरों की पहचान है। किसी द्रोणी या जल संभर में होने वाली घटना का प्रत्यक्ष प्रभाव इसके दूसरे भाग तथा संपूर्ण इकाई पर पड़ता है। इसीलिए इन्हें बृहत/लघुस्तर के विकास के नियोजन के लिए उपयुक्त नियोजन प्रदेश के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय नदियाँ

भारत में छोटी-बड़ी अनेक नदियाँ बहती हैं। भारत का अपवाह तंत्र, भू-आकृतियों की विकासात्मक प्रक्रियाओं और वर्षा का परिणाम है। असंख्य नदियाँ अपनी सहायक नदियों के साथ भारत के वर्षा जल को बहाकर समुद्र में ले जाती हैं (चित्र 3.1)। देश के वार्षिक वर्षण की कुल अनुमानित मात्रा 3,70,040 करोड़ घनमीटर है। इसमें से 1,67,753 करोड़ घनमीटर अर्थात् लगभग 45.3 प्रतिशत जल देश की 113 नदियों में प्रवाहित होता है। किसी नदी से अपवाहित क्षेत्र को इसकी द्रोणी, जलग्रहण क्षेत्र या जल संभर कहते हैं। नदी छोटी हो या बड़ी, इसकी द्रोणी या जल संभर या जलग्रहण क्षेत्र अवश्य होता है।

उत्पत्ति, स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर भारत की नदियों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये वर्ग हैं : हिमालय की नदियाँ, मध्यवर्ती तथा प्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ, तटीय नदियाँ और अंतस्थलीय बेसिन की नदियाँ।

हिमालय की नदियाँ बर्फीले प्रदेशों से निकलती हैं, अतः इनमें पूरे वर्ष जल बहता है। पर्वतीय मार्ग में ये नदियाँ महाखड्डों (गार्ज) से होकर बहती हैं। मध्यवर्ती और प्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ वर्षा के जल पर निर्भर रहती हैं। इसीलिए वर्ष की विभिन्न अवधियों में इन नदियों के जल प्रवाह में बहुत अधिक घट-बढ़ होती है। पश्चिमी तट की सरिताओं



चित्र 3.1 भारत : प्रमुख नदियाँ

के जलग्रहण क्षेत्र बहुत छोटे हैं। अंतस्थलीय बेसिन की नदियों का जीवन काल बहुत छोटा होता है। ये अपनी-अपनी उथली द्रोणियों की ओर बहती हैं तथा इनका जल कभी भी समुद्र में नहीं पहुँचता।

नदियों के चार वर्गों में से हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों का जलविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व हैं। हिमानियों में उद्गम स्रोत होने के कारण हिमालयी नदियाँ सदानीरा हैं। ये मुख्यतः हिम पोषित हैं, लेकिन इनके वर्षा पोषित स्रोत भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उत्तर-भारत के मैदानों की नदियाँ नाव्य तथा सिंचाई के लिए उपयोगी हैं। भू-वैज्ञानिक दशाओं और भू-भाग के भुरभुरे होने के कारण नदियाँ मोड़ (विसर्प) बनाकर बहती हैं तथा प्रायः मार्ग बदल देती हैं। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय नदियाँ चट्टानी भू-भाग से होकर बहती हैं, इसलिए इनमें विसर्पों की संख्या कम है। शुष्क ऋतु में ये रेत का विस्तृत क्षेत्र बन जाती हैं तथा वर्षा ऋतु में इनके जल प्रवाह की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। जल की अधिकता और तेज प्रवाह के कारण इनके निचले भागों में बाढ़ आ जाती है। इनके निचले डेल्टाई भाग नाव्य हैं, लेकिन ऊपरी भाग के चट्टानी होने तथा जल की मात्रा के घटने-बढ़ने के कारण, ये नदियाँ नाव्य नहीं हैं।

हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों की विशेषताएँ

पक्ष	*हिमालयी नदियाँ*	*प्रायद्वीपीय नदियाँ*
जल प्रवाह का स्वरूप	सदानीरा, हिम के पिघले जल और वर्षा जल पर निर्भर	ऋतुनिष्ठ, केवल वर्षा जल पर निर्भर
जल-ग्रहण क्षेत्र	विशाल द्रोणियाँ	छोटी द्रोणियाँ
अपरदन	तीव्र अपरदन के कारण हिमालय में गहरी घाटियाँ और महाखड्ड (गार्ज)	कम अपरदन के कारण उथली, आधार तल प्राप्त घाटियाँ
मार्ग का स्वरूप	विशाल मैदानों में मोड़दार मार्ग तथा मार्ग परिवर्तन	सीधा और रेखीय मार्ग
अन्य लक्षण	'V' आकृति की घाटियाँ, ऊँचे जलप्रपात और विशाल डेल्टा	उथली घाटियाँ, छोटे जलप्रपात, डेल्टा और ज्वारनदमुख

हिमालयी नदियाँ

हिमालयी नदी तंत्र का विकास लंबे भू-वैज्ञानिक काल में हुआ है । ब्रह्मपुत्र, गंगा और सिंधु, हिमालय की तीन प्रमुख नदियाँ हैं । ब्रह्मपुत्र और सिंधु के उद्गम स्रोत तिब्बत की उच्च भूमि के दक्षिण ढालों में है। प्रारंभ में ये नदियाँ हिमालय के अक्ष के समान्तर बहती हैं फिर अचानक दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं । मैदानों में पहुँचने के लिए इन्होंने हिमालय को काटकर गहरी घाटियों का निर्माण किया है। ब्रह्मपुत्र, कोसी, गंडक, अलकनंदा, सतलुज और सिंधु की गहरी घाटियों से प्रमाणित होता है कि ये हिमालय से भी पुरानी हैं। हिमालय के उत्थान की अवधि में भी ये नदियाँ बहती रही हैं और अपने तल को निरंतर गहरा करती रहीं, जिसके कारण इनके किनारे ऊँचे, और ऊँचे होते गए। ये नदियाँ हिमालय के उच्चावच की अनुवर्ती नहीं हैं। ये तो पूर्ववर्ती अपवाह का सुंदर उदाहरण हैं।

पर्वतों से निकलकर हिमालयी नदियों ने विशाल द्रोणियों का निर्माण किया है। इनके जल-ग्रहण क्षेत्र हजारों वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं। ये अब भी तीव्रता से अपरदन कर रही हैं। इसीलिए ये अपने साथ विशाल मात्रा में अपरदित पदार्थ (गाद, मिट्टी) बहाकर ले जाती हैं। इन पदार्थों के कुछ अंश को तो ये स्वनिर्मित मैदानों में जमा कर देती हैं और शेष को समुद्र में जमा करके विराट डेल्टाओं का निर्माण करती हैं। पर्वतीय मार्ग में हिमालयी नदियाँ गहरे महाखड्ड (गार्जों) से होकर गुजरती हैं। यहाँ इनके मार्ग बहुत टेढ़े-मेढ़े हैं। मैदान में प्रवेश करते ही ये बड़े-बड़े विसर्प बनाती हैं तथा प्रायः ही मार्ग बदलती रहती हैं, जिसके अवशिष्ट लक्षण जैसे छाड़ (चाप) झील हैं। ये सदानीरा नदियाँ हैं, क्योंकि इन्हें भारी वर्षा का तथा हिम का पिघला हुआ जल मिलता रहता है। लेकिन इनके प्रवाह की मात्रा ऋतुओं के अनुरूप घटती-बढ़ती रहती है।

भू-वैज्ञानिक प्रमाणों से ऐसे संकेत मिलते हैं कि हिमालय से निकलने वाली प्रमुख नदियाँ, पूर्व से पश्चिम को बहने वाली इंडोब्रह्म नदी की प्राचीन सहायक नदियाँ हैं। हिमालय की नदियों ने अपरदित पदार्थों से टेथिस सागर को भर दिया था। टेथिस के अवशेष के रूप में ही यह विशाल नदी इंडोब्रह्म रह गई थी। आज की सिंधु नदी की द्रोणी के क्षेत्र के ऊपर उठ जाने के कारण इंडोब्रह्म नदी की दिशा बदलकर पश्चिम से पूर्व हो गई थी।

हिमालयी नदी तंत्र में अनेक नदी तंत्र हैं। इनमें से सबसे प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. सिधु नदी तंत्र
2. गंगा नदी तंत्र
3. ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र।

सिंधु नदी तंत्र : यह संसार की सबसे बड़ी नदी द्रोणियों में से एक है। सिंधु की पाँच बड़ी सहायक नदियाँ हैं : झेलम, चिनाब, रावी, ब्यास और सतलुज। सिंधु का उदगम स्रोत तिब्बत में मानसरोवर झील के निकट 5,180 मी. की ऊँचाई पर है। पहले यह उत्तर पश्चिम दिशा में बहती है, फिर हिमालय पर्वत को काटकर जम्मू और कश्मीर में दमचौक के निकट भारत में प्रवेश करती है। लद्दाख, बाल्तिस्तान और गिलगिट से होकर बहती हुई, यह दर्दिस्तान प्रदेश में चिल्लास के निकट पाकिस्तान में प्रवेश कर जाती है।

सिंधु के बाएँ और दाएँ तटों पर अनेक हिमालयी सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इनमें से प्रमुख हैं : श्याक, गिलगिट, जांस्कर, हुंजा, नुब्रा और शिगार। अंत में अटक के निकट यह पर्वतों को छोड़कर मैदान में आ जाती है। यहीं दाईं ओर से इसमें काबुल नदी आकर मिलती है। सिंधु की दाएँ तट की अन्य प्रमुख नदियाँ हैं : कुर्रम, तोची, गोमल, विबोआ तथा सांगर। इन सभी के उद्गम स्रोत सुलेमान पर्वत श्रेणी में हैं। इसके बाद नदी दक्षिण दिशा में बहती है, जहाँ मिठनकोट से थोड़ा ऊपर इसमें पंचनद आकर मिलती है। पंजाब की पाँच नदियों, सतलुज, ब्यास, रावी, चिनाब और झेलम की संयुक्त धारा को पंचनद नाम दिया गया है। सिंधु अतंतोगत्वा कराची के पूर्व में अरब सागर में मिल जाती है। सिंधु भारत में केवल जम्मू और कश्मीर राज्य से होकर ही बहती है। इसका औसत वार्षिक प्रवाह 1,10,450 घन मी. है (सारणी 3.1)। सिंधु का कुल जल-ग्रहण क्षेत्र 11,65,000 वर्ग कि.मी.है। इसमें से 3,21,290 वर्ग कि.मी भारत में है,जो कुल का 20 प्रतिशत है।

झेलम, सिंधु की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी है। यह वेरीनाग के झरने से निकलती है। वेरीनाग कश्मीर घाटी के दक्षिण-पश्चिम भाग में है। श्रीनगर के निकट तथा वूलर झील में होकर बहने के बाद,यह एक संकरे महाखड्ड (गार्ज) से होकर पाकिस्तान में पहुँचती है। इस द्रोणी के कुल अपवाह क्षेत्र में से 28,490 वर्ग कि.मी. भारत में है। मुज्जफराबाद और मंगला के मध्य यह भारत-पाकिस्तान सीमा के साथ-साथ बहती है। पाकिस्तान में झंग के निकट यह चिनाब में मिल जाती है।

चिनाब, सिंधु की सबसे बड़ी सहायक नदी है। यह चन्द्रा और भागा नाम की दो सरिताओं के मिलने से बनी है। ये दोनों केलाँग के निकट तंडी में मिलती हैं। ये दोनों नदियाँ हिमाचल प्रदेश में हिमालय की हिममंडित चोटियों से निकलती हैं। चिनाब की कुल लंबाई 1,180 कि.मी. है और यह भारत के 26,755 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है।

रावी, सिंधु की दूसरी प्रमुख सहायक नदी है। यह हिमाचल प्रदेश की कुल्लू पहाड़ियों में रोहतांग दर्रे के पश्चिम से निकलती है तथा इस राज्य की चंबा घाटी से होकर बहती है। भारत में इसकी कुल लंबाई 725 कि.मी. है तथा यह भारत के 5,957 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल

बहाकर ले जाती है। रावी धौलाधार और पीरपंजाल श्रेणियों के बीच के क्षेत्र का जल प्रवाहित करती है।

ब्यास, सिंधु की एक अन्य सहायक है। 4,000 मी. की ऊँचाई पर रोहतांग दर्रे के निकट ब्यास कुंड से इसका उद्‌गम स्रोत है। इसकी कुल लंबाई 470 कि.मी. है तथा यह 25,900 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है। यह कुल्लू घाटी से होकर बहती है तथा धौलाधार पर्वत श्रेणी को पार करके यह पंजाब के मैदानों में पहुँचती है। यह हरिके नामक स्थान पर सतलुज में मिल जाती है।

सिंधु की मुख्य सहायिका सतलुज, तिब्बत में 4,555 मी. की ऊँचाई पर स्थित राकस झील से निकलती है। यह भारत में 1,050 कि.मी. की दूरी में बहती हुई 24,087 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र का जल प्रवाहित करती है। हिमालय की श्रेणी के शिपकी ला से होकर बहती हुई यह पंजाब के मैदान में प्रवेश करती है। भाखड़ा-नांगल योजना, हरिके, और सरहिंद नहरी तंत्र को जल प्रदान करने के कारण यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण नदी है।

गंगा नदी तंत्र : द्रोणी तथा सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से गंगा भारत की प्रमुख नदी है। उत्तरांचल के उत्तरकाशी जिले में 3,900 मी.की ऊँचाई पर स्थित गोमुख के निकट गंगोत्री हिमानी गंगा का उद्‌गम स्रोत है। यहाँ इसे भागीरथी कहते हैं। गंगा ने मध्य हिमालय और लघु हिमालय को काटकर संकरे महाखड्ड (गार्ज) बनाए हैं। देवप्रयाग में भगीरथी, अलकनंदा से मिलती है। यहीं से दोनों की संयुक्तधारा का नाम गंगा हो जाता है। अलकनंदा का उद्‌गम स्रोत बदरीनाथ के ऊपर सतोपंथ हिमानी में है। हरिद्‌वार के निकट गंगा मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ से पहले यह दक्षिण दिशा में तथा पुनः दक्षिण पूर्व और पूर्व दिशा में बहती है। और आगे चलकर भागीरथी और हुगली नाम की दो वितरिकाओं में बँट जाती है। गंगा की कुल लंबाई 2,525 कि.मी. है। उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश में 1,450 कि.मी., बिहार में 445 कि.मी. तथा पश्चिम बंगाल में 520 कि.मी. की दूरी में गंगा बहती है। गंगा के केवल भारत के बेसिन का ही क्षेत्रफल 9,52,000 वर्ग कि.मी. है।

भारत में गंगा नदी का तंत्र बहुत बड़ा है। इसमें उत्तर में हिमालय से तथा दक्षिण में प्रायद्‌वीपीय पठार से सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इनमें से कुछ सदानीरा तथा अन्य बरसाती हैं। इसके दाहिने तट पर आकर मिलने वाली प्रमुख सहायक नदियाँ हैः यमुना, सोन और पुन-पुन। बाएँ तट की प्रमुख सहायक नदियाँ ये हैं : रामगंगा, गोमती, घाघरा, राप्ती, गंडक, कोसी और महानंदा। ये सभी सदानीरा हैं और हिमालय से निकलती हैं। पश्चिम बंगाल के मालदा जिले के फरक्का नामक स्थान से नीचे गंगा दो भागों में विभाजित हो जाती हैः एक भागीरथी-हुगली और दूसरी पद्‌मा। अंत में गंगा बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है।

यमुना, गंगा की सबसे पश्चिम की तथा सबसे लंबी सहायिका है। यमुना बँदरपूँछ (6,316 मी.) श्रेणी पर स्थित यमुनोत्री हिमानी से निकलती है। यमुना की द्रोणी 3,66,223 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैली है। यह प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा से मिल जाती है। यमुना के दाहिने किनारे पर चंबल, सिंद, बेतवा और केन आकर मिलती हैं। यह उत्तरांचल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश का जल बहाकर ले जाती है।

चंबल, मध्य प्रदेश के मालवा पठार पर स्थित महू के निकट से निकलती है। यह पहले उत्तर की ओर राजस्थान के कोटा तक एक महाखड्ड में से होकर बहती है। कोटा के निकट गांधी सागर बाँध बनाया गया है। कोटा से बूंदी, सवाईमाधोपुर और धौलपुर से होकर बहती हुई अंत में यमुना में मिल जाती है। चंबल 960 कि.मी. लंबी है। इसकी दो सहायक नदियाँ हैं : बनास और कालीसिंद। बनास इसके बाएँ तट पर तथा कालीसिंद दाएँ तट पर मिलती हैं। चंबल अपनी उत्खात भूमि की स्थलाकृति के लिए प्रसिद्ध है। उत्खात भूमि को यहाँ बीहड़ कहते हैं।

गंडक, धौलागिरि और एवरेस्ट पर्वत के मध्य नेपाल हिमालय से निकलती है। यह नेपाल के मध्य भाग का जल बहाकर लाती है। यह बिहार के चंपारन जिले में गंगा के मैदान में प्रवेश करती है तथा पटना के निकट सोनपुर में गंगा में मिल जाती है।

कोसी एक पूर्ववर्ती नदी है। इसकी मुख्यधारा अरुण, एवरेस्ट पर्वत के उत्तर में तिब्बत से निकलती है। नेपाल में मध्य हिमालय को पार करते ही पश्चिम की ओर से इसमें सुनकोसी तथा पूर्व की ओर से तमूर कोसी आकर मिल जाती है। अरुण से मिलने के बाद यह सुप्त कोसी बन जाती है। प्रायः मार्ग बदलने की प्रवृत्ति के कारण इसे 'बिहार का शोक' कहा जाता है। नदी संरक्षण के अनेक उपायों के बावजूद इसमें हर वर्ष भयंकर बाढ़ आती है।

कुमाऊं की पहाड़ियों से निकलने वाली रामगंगा अपेक्षाकृत एक छोटी नदी है। कालागढ़ के निकट गंगा के मैदान में आने से पहले यह शिवालिक की श्रेणी को काट देती है, लेकिन यह श्रेणी इसे दक्षिण पश्चिम की ओर धकेल देती है। यह कन्नौज के निकट गंगा में मिल जाती है।

शारदा (सरयू), नेपाल हिमालय में मिलाम हिमानी से निकलती है। प्रारंभ में इसे गौरीगंगा कहते हैं। भारत-नेपाल सीमा पर इसे काली नदी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में जब यह घाघरा से मिलती है, तो इसे चौक कहते हैं। महानंदा दार्जिलिंग की पहाड़ियों से निकलती है तथा गंगा में मिल जाती है। भारत में यह गंगा की बाएँ तट की अन्तिम सहायिका है।

अमरकंटक के पठार से निकलनेवाली सोन, गंगा के दक्षिणी तट की मुख्य सहायिका है। पठार के किनारे पर जलप्रपातों की एक शृंखला बनाती हुई यह पटना के निकट गंगा में मिल जाती है। दामोदर नदी छोटा नागपुर के पूर्वी भाग में बहती है। यह नदी एक भ्रंश घाटी से होकर बहती है। बाराकर इसकी मुख्य सहायिका है। दामोदर अंत में हुगली में मिल जाती है।

ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र : ब्रह्मपुत्र संसार की सबसे बड़ी नदियों में से एक है। हिमालय के उस पार मानसरोवर झील के निकट, कैलाश श्रेणी की एक हिमानी इसका उद्गम स्रोत है। यहाँ से यह सांपू के नाम से दक्षिणी तिब्बत के शुष्क और समतल क्षेत्र में 1,200 कि.मी. की दूरी तक पूर्व की ओर अनुदैर्ध्य घाटी में बहती है। तिब्बती भाषा में सांपू का अर्थ पवित्र करनेवाली होता है। तिब्बत में रांगो इसके दाहिने तट की प्रमुख सहायिका है। नामचा बरवा (7,755 मी.) के निकट मध्य हिमालय को महाखड्ड के रूप में काट कर यह एक उग्र और ऊर्जस्वी धारा के रूप में प्रकट होती है। यह नदी सियांग और फिर दिहांग के नाम से भारत में प्रवेश करती है। कुछ दूरी तक दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहने के बाद इसकी दो प्रमुख सहायक नदियाँ दिबांग और लोहित इसके बाएँ किनारे पर आकर मिलती है। इसके बाद इस नदी को ब्रह्मपुत्र कहते हैं।

असम घाटी की 750 कि.मी. की यात्रा में ब्रह्मपुत्र में कई सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। बाईं ओर की प्रमुख सहायिकाएँ हैः बूढी दिहिंग, धनश्री और कालांग। दाहिनी ओर की प्रमुख सहायिकाएँ ये हैः सुबनश्री, कामांग, मानस और संकोश। सुबनश्री हिमालय के उस पार तिब्बत से निकलती है। धूबरी के निकट ब्रह्मपुत्र बांग्लादेश में प्रवेश करके दक्षिण की ओर बहती है। बांग्लादेश में ब्रह्मपुत्र का नाम जमना है। जमना में दाहिनी ओर से तिस्ता नदी आकर मिलती है। तिब्बत, भारत और बांग्लादेश में 2,900 कि.मी. की दूरी तय करके, अंत में यह पद्मा में विलीन हो जाती है। पद्मा बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र बाढ़ों, मार्ग परिवर्तन और तट-अपरदन के लिए बदनाम है। पूर्वांचल हिमालय और शिलांग के पठार पर होने वाली भारी वर्षा के कारण ही इसमें बाढ़ें आती हैं। इसकी अधिकतर सहायिकाएँ बहुत बड़ी हैं और वे भारी मात्रा में अवसाद लाकर इसमें डालती हैं।

प्रायद्वीपीय नदियाँ

हिमालयी नदी तंत्र की तुलना में प्रायद्वीपीय नदी तंत्र अधिक पुराना है। पश्चिमी घाट, पश्चिमी तट के निकट और समान्तर विस्तृत है। यह एक जल विभाजक है। इसके पश्चिम में छोटी-छोटी सरिताएँ बहकर अरब सागर में जा मिलती हैं तथा पूर्व में प्रमुख प्रायद्वीपीय नदियाँ बंगाल की खाड़ी की ओर बहती है। नर्मदा और तापी को छोड़कर, अधिकतर प्रायद्वीपीय नदियाँ पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती हैं।

सुदूर भूतकाल में घटी दो प्रमुख भू-वैज्ञानिक घटनाओं ने प्रायद्वीपीय भारत के नदी तंत्र को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है। प्रथम घटना थी, प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग का जलमग्न होना। इसके परिणामस्वरूप पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों के केवल ऊपरी भाग ही समुद्रतल से ऊपर रह गए। दूसरी घटना थी, हिमालय के उत्थान के साथ नर्मदा और तापी नदियों की भ्रंश घाटियों का निर्माण। नर्मदा और तापी भ्रंश घाटियों में बहती हैं। इन्होंने अपने अपरदित पदार्थों से मूल दरारों को पाट दिया है। इसी कारण इन नदियों में जलोढ़ और डेल्टाई निक्षेपों की कमी है।

प्रायद्वीप की अनेक नदियाँ वर्षाधीन हैं तथा सदानीरा नहीं हैं। नदी तल की कठोर चट्टानों तथा अल्प जलोढ़ निक्षेपों के कारण, कुल मिलाकर इनके मार्ग सीधे या रेखीय हैं। ये नदियाँ प्रौढ़ हैं तथा इनकी घाटियाँ संतुलित (graded) और उथली हैं। प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियाँ हैः महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। ये सभी

बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं तथा अपने मुहानों पर विशाल डेल्टा बनाती हैं। पश्चिमी घाट के पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियाँ छोटी हैं और ये डेल्टा नहीं बनाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

गोदावरी : यह प्रायद्वीपीय भारत की सबसे बड़ी नदी है। स्थिति, आयु, आकार और लंबाई के कारण इसे दक्षिण गंगा या वृद्ध गंगा कहते हैं। महाराष्ट्र के नाशिक जिले से निकलकर यह बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। इसकी सहायक नदियों का जाल महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में फैला है। यह 1,465 कि.मी. लंबी है तथा इसका जल ग्रहण क्षेत्र 3,12,812 वर्ग कि.मी. में फैला है। जलग्रहण क्षेत्र का 49 प्रतिशत महाराष्ट्र में, 20 प्रतिशत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ तथा शेष आंध्र प्रदेश में फैला है। इसकी प्रमुख सहायिकाएँ हैंः पेन गंगा, बर्धा, वेन गंगा, सबरी और मंजरा। पोलावरम से नीचे गोदावरी में प्रायः भयंकर बाढ़ आती है। डेल्टाई प्रदेश में यह नदी नाव्य है।

कृष्णा : पूर्व की ओर बहने वाली कृष्णा नदी प्रायद्वीप की दूसरी सबसे बड़ी नदी है। यह महाबलेश्वर के निकट सह्याद्रि से निकलती है। इसकी कुल लंबाई 1,400 कि.मी. है। कृष्णा की द्रोणी का क्षेत्रफल 2,59,000 वर्ग कि.मी. है तथा यह कुल मिलाकर 67,670 करोड़ घनमीटर जल बहाकर ले जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं: कोयना, येरिया, वरणा, पंचगंगा, मूसी, तुंगभद्रा और भीमा। भीमा और तुंगभद्रा प्रमुख सहायिकाएँ हैं। इनकी द्रोणियों के क्षेत्रफल क्रमशः 76,614 तथा 71,417 वर्ग कि.मी. है। कृष्णा के जलग्रहण क्षेत्र का 27 प्रतिशत महाराष्ट्र में, 44 प्रतिशत कर्नाटक में तथा 29 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में हैं।

महानदी : छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में सिहावा के निकट इसका उद्गम स्रोत है। यह नदी उड़ीसा में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। यह 858 कि.मी. लंबी है तथा इसका जलग्रहण क्षेत्र 1,41,589 वर्ग कि.मी. है। यह नदी भी बाढ़ों के लिए बदनाम है। यह प्रतिवर्ष 67,000 करोड़ घन मी. जल बहाकर ले जाती है। निचले मार्ग में यह नदी नाव्य है। महानदी की द्रोणी का 53 प्रतिशत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में तथा 47 प्रतिशत उड़ीसा में है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैंः शिवनाथ, हसदो, मांद, ईब, जोंकिंग और तेल।

कावेरी : यह कर्नाटक के कुर्ग जिले की 1,341 मीटर ऊँची ब्रहमागिरि की पहाड़ियों से निकलती है। इसकी कुल लंबाई 800 कि.मी. है। यह 67,900 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल अपवाहित करती है। इसके ऊपरी जल-ग्रहण क्षेत्र में दक्षिण-पश्चिम मानसून (ग्रीष्म ऋतु) में वर्षा होने के कारण तथा निचले भाग में उत्तर-पूर्व मानसून (शीत ऋतु) में वर्षा होने के कारण इसमें वर्षभर जल प्रवाह बना रहता है। अन्य प्रायद्वीपीय नदियों की तुलना में इसके जल प्रवाह में कम घट-बढ़ होती है। कावेरी की 3 प्रतिशत द्रोणी केरल में, 41 प्रतिशत कर्नाटक में तथा 56 प्रतिशत तमिलनाडु में है। इसके दाहिने तट की सहायक नदियाँ हैं : लक्ष्मण तीर्थ, कबिनी, सुवर्णावती, भवानी और अमरावती हैं तथा बाएँ किनारे की सहायिकाएँ हेरंगी, हेमावती, शिम्शा, और अर्कावती हैं।

नर्मदा : पश्चिम की ओर बहने वाली इस नदी का उद्गम स्थान मध्य प्रदेश में अमरकंटक के निकट है। 1,300 कि.मी. लंबी यह नदी अरब सागर में गिरती है। इसकी द्रोणी का क्षेत्रफल 98,796 वर्ग कि.मी. है। नर्मदा की द्रोणी का 87 प्रतिशत मध्य प्रदेश में,1.5 प्रतिशत महाराष्ट्र में तथा शेष गुजरात में है। 300 कि.मी. लंबी ओरिसन नदी को छोड़कर नर्मदा की कोई भी सहायिका 200 कि.मी. से अधिक लंबी नहीं है। इनमें से अधिकतर ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं।

तापी : पश्चिम की ओर बहने वाली दूसरी उल्लेखनीय नदी तापी है। यह अपनी यात्रा मध्य प्रदेश के बेतूल जिले से प्रारंभ करती है। यह 724 कि.मी. लंबी है तथा 64,750 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है। इसमें प्रतिवर्ष 17,980 करोड़ घन मी. जल प्रवाहित होता है। इसकी द्रोणी का 79 प्रतिशत भाग गुजरात में है। इसमें बाईं ओर से आकर मिलने वाली सहायक नदियाँ हैं: पूर्णा, वेघर, गिरना, बोरी और पांझर। दाहिनी ओर से अनेर आकर इसमें मिलती है। इस नदी का केवल निचला भाग ही नाव्य है।

तटीय नदियाँ

तटीय नदियाँ पश्चिम अरब सागर की ओर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी की ओर बहती हैं। पश्चिम की ओर बहने

वाली प्रमुख नदियाँ ये हैं: शतरंजी, भद्रा, वैतरणा, काली नदी, बेड़ती, शरावती, भारतपुझा, पेरियार और पंबा। शतरंजी अमरेली जिले के दलकहवा के निकट से, भद्रा राजकोट जिले में अनियाली गाँव के पास से, तथा धांधर गुजरात के ही पंचमहल जिले के घंटार गाँव के निकट से निकलती हैं। धांधर 135 कि.मी. लंबी है तथा इसका जलग्रहण क्षेत्र 2,770 वर्ग कि.मी. है। वैतरणा का उद्गम स्रोत महाराष्ट्र के नासिक जिले में 670 मी. की ऊँचाई पर त्रियंबक की पहाड़ियों के दक्षिणी ढालों पर है। 172 कि.मी. की यात्रा के बाद यह वलसाड़ के निकट अरब सागर में गिरती है। काली नदी कर्नाटक के बेलगाँव जिले में बीडी नामक गाँव के निकट से निकलती है और कारवाड़ की खाड़ी में गिरती है। इसका जलग्रहण क्षेत्र 5,179 वर्ग कि.मी. है। 161 कि.मी. लंबी बेड़ती नदी का उद्गम स्रोत हुबली-धारवाड के आस-पास की पहाड़ियों में 701 मी. की ऊँचाई पर है। शरावती का उद्गम स्थान कर्नाटक के शिमोगा जिले में है। इसी नदी पर प्रसिद्ध गरसोपा (जोग) जल प्रपात है। इसका जलग्रहण क्षेत्र 2,209 वर्ग कि.मी. है। भारतपुझा को पोन्नानी भी कहते हैं। यह केरल की सबसे लंबी नदी है। यह अन्नामलाई की पहाड़ियों के पास से निकलती है। इसका अपवाह क्षेत्र 5,397 वर्ग कि.मी. है। केरल की दूसरी सबसे लंबी नदी पेरियार का जलग्रहण क्षेत्र 5,243 वर्ग कि.मी. है। 177 कि.मी. लंबी पंबा नदी वेंबनाद झील में गिरती है।

सुवर्ण रेखा, बैतरणी और ब्राह्मणी के अलावा पूर्व की ओर बहने वाली प्रमुख नदियाँ हैं: वंशधारा, पेन्नर, पलार और वैगाई। वंशधारा का उद्गम तो उड़ीसा के दक्षिणी भाग में है, लेकिन यह आंध्र प्रदेश में बहती हुई, बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। पेन्नर कर्नाटक से निकलकर आंध्र प्रदेश में बहती है। पलार का जलग्रहण क्षेत्र 17,870 वर्ग कि.मी. है। पोइनी और चेय्यार इसकी दो प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। वैगाई केरल से निकलती है। यह पेरियार के अपवर्तित जल को लेकर अंत में पाक की खाड़ी में गिर जाती है। छोटी-छोटी तटीय नदियों की विशेषताएँ हैं: तीव्र ढाल, भारी मात्रा में गाद, तथा प्रवाह में शीघ्र घट-बढ़। तटीय क्षेत्रों की कृषि भूमि की सिंचाई में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

नदी प्रवृत्तियाँ

किसी नदी में जल के ऋतुनिष्ठ प्रवाह के प्रतिरूप को इसकी प्रवृत्ति कहते हैं। हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों के प्रवाह के प्रतिरूपों में अंतर का मुख्य कारण जलवायु में अंतर है। हिमालयी नदियाँ सदानीरा हैं। इनकी प्रवृत्तियाँ, हिम के पिघलने से और वर्षा के जल दोनों की ही आपूर्ति के प्रतिरूप पर निर्भर करती हैं। इनकी प्रवृत्तियाँ मानसूनी और हिमनदीय दोनों ही हैं। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय नदियों की प्रवृत्तियाँ केवल मानसूनी हैं, क्योंकि इन पर केवल वर्षा का ही नियंत्रण है। प्रायद्वीप की विभिन्न नदियों की प्रवृत्तियाँ भी एक समान नहीं है, क्योंकि पठार के विभिन्न भागों की वर्षा के ऋतुनिष्ठ वितरण में अंतर होता है।

किसी नदी में बहने वाले जल की मात्रा जिसे किसी समयावधि में नापा गया हो, 'विसर्जन' कहते हैं। जल विसर्जन को क्यसेक्स या क्यूमैक्स में नापा जाता है। क्यूसेक्स का अर्थ है: घन फुट प्रति सेकेंड तथा क्यूमैक्स का अर्थ है: घन मी. प्रति सेकेंड। जनवरी से लेकर जून तक गंगा में जल का न्यूनतम प्रवाह रहता है। अगस्त या सितंबर में अधिकतम प्रवाह होता है। सितंबर के बाद प्रवाह निरंतर घटता जाता है। इस प्रकार नदी में एक विशिष्ट मानसूनी प्रवृत्ति है। गंगा की द्रोणी के पूर्वी और पश्चिमी भाग की नदी प्रवृत्तियों में असाधारण अंतर पाए जाते हैं। मानसूनी वर्षा से पहले, ग्रीष्म ऋतु के पहले भाग में गंगा में पर्याप्त जल बहता है। इसका मुख्य कारण हिमालय पर बरफ का पिघलना है। लेकिन विसर्जन के आंकड़ों में फरक्का से पहले के विभिन्न स्थानों पर सिंचाई के लिए उपयोग में लाई गई जल की मात्रा को शामिल नहीं किया जाता। गंगा की प्रवृत्ति की तुलना, हिमालय की ही अन्य नदी झेलम से की जा सकती है। झेलम में अधिकतम प्रवाह जून या मई में भी हो जाता है, क्योंकि इसका प्रवाह मुख्य रूप से हिमालय की बरफ के पिघलने पर निर्भर करता है। इन दोनों नदियों की प्रवृत्तियों में एक रोचक अंतर है। इस अंतर को इन नदियों के अधिकतम और न्यूनतम प्रवाह की भिन्नता के परास (range) में देखा जा

सकता है। झेलम की तुलना में, गंगा में यह अंतर अधिक सुस्पष्ट है। फरक्का पर गंगा का अधिकतम माध्य (औसत) विसर्जन 55,000 क्यूसेक्स तथा न्यूनतम माध्य केवल 1,300 क्यूसेक्स है। झेलम में गंगा की तुलना में कम पानी बहता है। इसमें अधिकतम माध्य विसर्जन 600 क्यूसेक्स तथ्य न्यूनतम माध्य विसर्जन 50 क्यूसेक्स है।

प्रायद्वीप की दो नदियों की प्रवृत्तियों में हिमालयी नदियों की प्रवृत्तियों की तुलना में काफी अंतर है। नर्मदा में जल विसर्जन की मात्रा जनवरी से जुलाई तक काफी कम रहती है। लेकिन अगस्त में यह अचानक बढ़कर अधिकतम स्तर पर पहुँच जाती है। अगस्त में नर्मदा में जिस तेजी से जल की मात्रा बढ़ती है, उसी तेजी से अक्तूबर में यह घट जाती है। गोदावरी में प्रवाह का स्तर मई तक नीचा रहता है। इसमें दो बार जल की अधिकतम मात्रा रहती है: एक बार मई में और दूसरी बार जुलाई-अगस्त में। अगस्त के बाद जल प्रवाह तेजी से घटता है। जनवरी से लेकर मई तक के किसी भी महीने की तुलना में अक्तूबर और नवम्बर में जल प्रवाह की मात्रा अधिक होती है। पोलावरम पर गोदावरी का अधिकतम माध्य विसर्जन 50 क्यूसेक्स रहता है। ये आंकड़े नदी की प्रवृत्ति का एक संकेत देते हैं। गरुड़ेश्वर पर रिकार्ड किए गए नर्मदा के प्रवाह से पता चलता है कि इस नदी का अधिकतम प्रवाह 2,300 क्यूसेक्स तथा न्यूनतम प्रवाह केवल 15 क्यूसेक्स है।

वर्ष के विभिन्न महीनों में नदी के विभिन्न भागों में जल विसर्जन के आंकड़ों का राज्यों द्वारा इनके (नदियों के) उपयोग में बहुत महत्त्व है। इसी मुद्दे को लेकर अंतर्राज्यीय विवाद उत्पन्न होते हैं।

नदियों की उपयोगिता

बड़ी-बड़ी नदियों में देश की जल संपदा निहित है। देश में वार्षिक वर्षण की अनुमानित मात्रा लगभग 3,70,040 करोड़ घन मी. है। इसका बहुत बड़ा भाग धरातल में रिसकर भू-जल के रूप में जमा हो जाता है तथा कुछ भाग वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित होकर एक प्रकार से नष्ट हो जाता है। नदियों में प्रतिवर्ष 1,67,753 करोड़ घन मी. जल बहता है। असमतल धरातल तथा प्रवाह की विशेषताओं के कारण इस सारे जल का उपयोग नहीं हो सकता है। लगभग 55,517 करोड़ घन मी. अर्थात् वार्षिक प्रवाह के 33 प्रतिशत का सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है।

विशाल नदियों में जलशक्ति की बड़ी संभावनाएँ हैं। उत्तर में हिमालय, पश्चिम में विंध्याचल, सतपुड़ा और अरावली, पूर्व में मैकाल और छोटानागपुर, उत्तर-पूर्व में मेघालय के पठार और पूर्वांचल तथा दक्कन के पठार के पश्चिमी और पूर्वी घाट पर, बड़े पैमाने पर जल शक्ति के विकास की संभावनाएँ हैं। कुल नदी जल प्रवाह का 60 प्रतिशत हिमालय में, 16 प्रतिशत मध्यवर्ती भारत की नदियों (नर्मदा, तापी, महानदी, आदि) में तथा शेष दक्कन के पठार की नदियों में निहित है। प्रायद्वीपीय नदियों से सुनिश्चित और विश्वसनीय शक्ति उत्पादन के लिए मानसूनी वर्षा के महीनों में बांधों के पीछे जल का संग्रहण जरूरी है। हिमालयी नदियों में ऐसी कोई समस्या नहीं है, क्योंकि शीत ऋतु के नाजुक महीनों में भी इन नदियों में जल की पर्याप्त मात्रा रहती है। लेकिन यहाँ दूसरे प्रकार की समस्याएँ हैं जैसे : संकरी घाटियों के कारण विशाल जलाशयों के निर्माण में कठिनाई, प्रदेश में भूकंप के तीव्र झटकों की संभावना, तथा उच्चावच में विभिन्नता से रहित विस्तृत जलोढ़ मैदान। देश में इन नदियों से 60 प्रतिशत कार्यक्षमता के आधार पर लगभग 4.1 करोड़ किलो वाट जल शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है।

देश के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में क्रमशः गंगा और ब्रह्मपुत्र में, उड़ीसा में महानदी में, आंध्र प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा में, गुजरात में नर्मदा और तापी में, तथा तटीय राज्यों में झीलों और ज्वारीय निवेशिकाओं (creeks) में देश के प्रमुख और उपयोगी जल मार्ग हैं। विगत वर्षों में इनका बहुत महत्त्व था, लेकिन रेलों और सड़कों के विकास से इन्हें धक्का लगा है। सिंचाई के लिए नहरें निकालने के बाद बहुत सी नदियों में जल प्रवाह घट जाता है। देश में लगभग 10,600 कि.मी. लंबे नाव्य जल मार्ग हैं। इनमें से 2,480 कि.मी. लंबी नाव्य नदियों में स्टीमर और बड़ी देशी नावें, 3,920 कि.मी. लंबी नाव्य नदियों में मध्यम आकार की देशी नावें, और 4,200 कि.मी लंबी नहरों और पश्चजलों में देशी नावें चल सकती हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र और महानदी, प्रमुख नाव्य नदियाँ हैं। गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा और तापी केवल मुहानों के निकट ही नाव्य हैं।

नदियों से, नगरों, गाँवों और बड़े-बड़े कारखानों को भी जल मिलता है।

बाढ़ प्रवण क्षेत्र

भारत में प्रतिवर्ष बाढ़ें आती हैं। प्रतिवर्ष लगभग 60 लाख हैक्टेयर भूमि बाढ़ से प्रभावित होती है। ऊँची बाढ़ों से फसलों, मकानों और सार्वजनिक सुविधाओं को बहुत हानि होती है। अनेक लोग और पशु मर जाते हैं, परिवहन और संचार के साधन अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। इनसे सामान्य जन-जीवन भी गड़-बड़ हो जाता है।

देश के उत्तरी विशाल मैदान तथा बड़ी नदियों के तटीय क्षेत्रों में गंभीर बाढ़ के आने की आशंका बनी रहती है। बिहार के मैदान, पश्चिम बंगाल के उत्तरी तथा दक्षिणी भाग, असम घाटी और कछार प्रायः आने वाली बाढ़ों के लिए कुख्यात हैं। कश्मीर घाटी, पंजाब के मैदान, उत्तर प्रदेश के मैदान, महानदी, गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा, कावेरी डेल्टा तथा नर्मदा और तापी के निचले भागों में बाढ़ कभी-कभी ही आती है। बाढ़ आने के प्रमुख कारण ये हैं : भारी वर्षा, नदी घाटियों के मंद ढाल, नदी तल पर गाद का भारी मात्रा में जमाव तथा जलग्रहण क्षेत्रों में वनविहीन पहाड़ियाँ। कुछ क्षेत्रों में सड़कों, रेलमार्गों और नहरों के निर्माण से जल के प्रवाह में बाधा पड़ती है, जिससे बाढ़ आ जाती है। तटीय क्षेत्रों में कुछ बाढ़ें चक्रवातीय तूफानों के कारण भी आती हैं।

सारणी 3.1 : भारत की नदी द्रोणियाँ : जल ग्रहण क्षेत्र और प्रवाह

नदी द्रोणियाँ	*जल ग्रहण क्षेत्र (000 वर्ग कि.मी.)*	*प्रवाह (100 करोड़ घन मी.)*
प्रमुख नदी द्रोणियाँ		
सिंधु	321 (कुल 1,165)	97,350
गंगा	952	4,93,000
ब्रह्मपुत्र	240 (कुल 580)	5,10,000
साबरमती	55	3,200
माही	35	8,500
नर्मदा	99	40,700
तापी	65	17,980
सुवर्णरेखा	19	7,940
ब्राह्मणी	36	18,310
महानदी	142	66,640
गोदावरी	313	1,05,000
कृष्णा	259	67,670
पेन्नर	55	3,240
कावेरी	68	20,950
उप-योग	**2,659**	**14,06,000**
मध्यम नदी द्रोणियाँ	240	1,12,000
लघु नदी और मरुस्थली द्रोणियाँ	300	1,27,000
कुल योग	**3,199**	**16,45,000**

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. संक्षेप में उत्तर दीजिए:
   (i) अपवाह तंत्र की परिभाषा दीजिए।
   (ii) अपवाह प्रतिरूप किसे कहते हैं ?
   (iii) द्रुमाकृतिक अपवाह प्रतिरूप का एक भारतीय उदाहरण दीजिए।
   (iv) अपवाह द्रोणी किसे कहते हैं ?
   (v) मध्यवर्ती भारत की दो प्रमुख नदियों के नाम बताइए।
   (vi) अरब सागर में गिरने वाली तीन नदियों के नाम बताइए।
   (vii) उन राज्यों के नाम बताइए जिनसे होकर सुबर्ण रेखा और ब्राह्मणी नदियाँ बहती हैं।
   (viii) थार मरुस्थल में किस प्रकार का अपवाह है ?
   (ix) पूर्ववर्ती नदियों के दो उदाहरण दीजिए।
   (x) अनुवर्ती नदियों के दो उदाहरण दीजिए।
   (xi) भ्रंश घाटी से होकर बहने वाली दो नदियों के नाम बताइए।
   (xii) जल प्रवृत्ति किसे कहते हैं।
   (xiii) प्रायद्वीपीय नदियों में अधिकतम प्रवाह कब होता है ?
   (xiv) प्रायद्वीपीय नदियों की तीन विशेषताएँ लिखिए।
2. अंतर बताइए:
   (i) नदी द्रोणी और जल संभर
   (ii) अनुवर्ती और पूर्ववर्ती नदियाँ
   (iii) डेल्टा और ज्वार नदमुख
   (iv) अरीय तथा अभिकेंद्री अपवाह
   (v) महाखड्ड (गार्ज) और भ्रंश घाटी।
3. भारत की नदियाँ किस तरह देश के लिए उपयोगी हैं ?
4. गंगा की द्रोणी पर एक संतुलित टिप्पणी लिखिए।
5. ब्रहमपुत्र की द्रोणी की विशेषताएँ लिखिए। यह भी बताइए कि इस द्रोणी में बाढ़ें प्रायः क्यों आती हैं ?
6. कावेरी द्रोणी के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

7. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:
   (i) साबरमती और माही नदियाँ।
   (ii) पूर्व तथा पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियों के बीच का जल विभाजक।
   (iii) गंगा, तीन दाईं ओर की तथा तीन बाईं ओर की सहायक नदियाँ।
   (iv) नर्मदा नदी।
   (v) महानदी की द्रोणी।

4
अध्याय

जलवायु

मौसम और ऋतुओं की लय भारत की जलवायु की विशेषता है। कभी तो साल के कुछ महीनों में कई दिनों तक लगातार वर्षा होती रहती है, और कभी बिल्कुल नहीं होती। कभी पवनें समुद्र की ओर से चलती हैं और कभी स्थल की ओर से। ये विशेषताएँ भारत की जलवायु को मानसूनी बना देती हैं। मानसून शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के मौसिम शब्द से हुई है। मौसिम शब्द का अर्थ है : पवनों की दिशा का मौसम के अनुसार उलट जाना। अनेक लोगों के लिए मानसून का अर्थ वर्षा ऋतु है, जब भारतीय प्रायद्वीप के अधिकतर भाग पर दक्षिण-पश्चिम दिशा से पवनें चलती हैं। आर्द्रता से लदी दक्षिण-पश्चिम पवनें भारी वर्षा करती हैं, इससे सूखी भूमि संतृप्त हो फसलें बोने के लिए तैयार हो जाती हैं।

भारत की जलवायु में एक व्यापक एकता है। देश का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन जलवायु की ऋतुनिष्ठ लय से जुड़ा है। विभिन्न ऋतुओं में विविध प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। इन्हीं फसलों के साथ कई त्यौहार और सांस्कृतिक उत्सव मनाए जाते हैं। अत्यधिक प्रादेशिक भिन्नता, भारतीय जलवायु की विशेषता है। उत्तर-पूर्व में स्थित असम में भारी वर्षा होती है तथा यह आर्द्र है। इसके विपरीत पश्चिम में राजस्थान कम वर्षा के कारण शुष्क है। यही नहीं, दक्षिण में केरल गरम और आर्द्र है, जबकि उत्तर-पश्चिम में स्थित पंजाब की जलवायु महाद्वीपीय है और यहाँ अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। राजस्थान में बाड़मेर में गर्मियों के दिन में तापमान 48^0 से 50^0 से. तक पहुँच जाता है। इसके विपरीत जम्मू और कश्मीर में स्थित द्रास और कारगिल में शीत ऋतु की रातों में तापमान शून्य से 40^0 से. नीचे चला जाता है। मेघालय में स्थित चेरापूँजी और मॉसिनराम में वर्ष में 1,080 से.मी. से अधिक वर्षा होती है, इसके विपरीत राजस्थान के जैसलमेर में उसी अवधि में शायद ही कभी 12 से.मी. से अधिक वर्षा होती हो।

इन सभी भिन्नताओं के बावजूद भारत की जलवायु की लय और विशेषता मानसूनी ही है। भारत की जलवायु कई कारकों से नियन्त्रित होती है। ये कारक हैं : कर्क वृत्त के उत्तर और दक्षिण में इसकी स्थिति, उत्तर और पूर्व में एक दीवार की भाँति खड़े हिमालय की अत्यधिक ऊँचाई, दक्षिणी भाग की प्रायद्वीपीय आकृति, उत्तर-पश्चिमी भाग की समुद्र से लंबी दूरी तथा देश के विभिन्न भागों में पर्वत श्रेणियों की स्थिति। इन्हीं से भारत की जलवायु को एकता और प्रादेशिक विविधता मिली है। दिन और रात के तापमान या ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु की ऊष्मा में अंतर का कारण समुद्र से दूरी है। समुद्र तट पर स्थित मुंबई और पुरी जैसे स्थानों के तापमान में सुदूर आंतरिक भागों में स्थित, दिल्ली, कानपुर और भोपाल की तुलना में कम अंतर रहता है। मैदानों और निम्न भूमियों की तुलना में ऊँचे पर्वत और पहाड़ियाँ ठंडी रहती हैं। पर्वतों के पवनाविमुख ढालों पर अधिक वर्षा होती है, इसके विपरीत पवनाविमुख क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा घट जाती है। समुद्र की ओर से आने वाली मानसून पवनें समुद्र तट से दूर के क्षेत्रों की तुलना में तटवर्ती क्षेत्रों में अधिक वर्षा करती हैं।

मानसून की उत्पत्ति और विकास

पवनों की दिशा में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन भारतीय मौसम विज्ञान का प्रमुख लक्षण है। अत्यधिक महाद्वीपीयता और समुद्र के कम प्रभाव के कारण, भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग शीत ऋतु में अधिक वायुदाब तथा ग्रीष्म ऋतु में कम वायुदाब का केंद्र बन जाता है। शीत ऋतु में देश के इस भाग से बहने वाली ठंडी पवनों को प्रायद्वीप पर उत्तर-पूर्वी मानसून के रूप में जाना जाता है। ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली कोष्ण और आर्द्र पवनों को दक्षिण-पश्चिम मानसून कहा जाता है। मानसून शब्द का अर्थ है ऋतु तथा इसका तात्पर्य प्रचलित पवनों के दिशा परिवर्तन से है। शीत ऋतु में पवनें मुख्यतः अपतट तथा ग्रीष्म ऋतु में अभितट होती हैं। उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब में क्रमिक परिवर्तन होता है।

अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (ITCZ)

विषुवत वृत्त पर स्थित अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र एक निम्न वायुदाब वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र में व्यापारिक पवनें मिलती हैं। अतः इस क्षेत्र में वायु ऊपर उठने लगती है। जुलाई के महीने में ITCZ 20^0 से 25^0 उ. अक्षांशों के आस-पास गंगा के मैदान में स्थित हो जाता है। इसे कभी-कभी मानसूनी गर्त भी कहते हैं। यह मानसूनी गर्त, उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत पर तापीय निम्न वायुदाब के विकास को प्रोत्साहित करता है। ITCZ के उत्तर की ओर खिसकने के कारण दक्षिणी गोलार्द्ध की व्यापारिक पवनें 40^0 और 60^0 पूर्वी देशांतरों के बीच विषुवत वृत्त को पार कर जाती हैं। कोरियोलिस बल के प्रभाव से विषुवत वृत्त को पार करने वाली इन व्यापारिक पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर हो जाती है। यही दक्षिण-पश्चिम मानसून है। शीत ऋतु में ITCZ दक्षिण की ओर खिसक जाता है। इसी के अनुसार पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से बदल कर उत्तर-पूर्व हो जाती है, यही उत्तर-पूर्व मानसून है।

जेट वायुधाराएँ : ऋतुओं के अनुसार दिशा बदलने वाली निम्न स्तर की पवनों के अलावा ऊपरी स्तर पर चलने वाली पवनें भी हैं। ये पवनें धरातल से 6 से 7 कि.मी. की ऊँचाई पर चलती हैं। ऊँचे स्तरों पर इन पवनों की गति बहुत अधिक हो जाती है। ये पवनें कभी-कभी 12 से 16 कि.मी. की ऊँचाई पर भी चलती हैं। जिस क्षेत्र में ये पवनें चलती हैं, उसका अक्षांशीय विस्तार ऋतु और ऊँचाई के अनुसार बदलता रहता है। 12 से 13 कि.मी. की ऊँचाई पर इन पवनों की गति 180 कि.मी. प्रति घंटा से अधिक हो जाती है। इन्हीं पवनों को जेट वायुधाराएँ कहते हैं। ये दो प्रकार की होती हैं : पहली, पश्चिमी जेट वायुधारा, जो 12 कि.मी. की ऊँचाई पर पश्चिम से पूर्व को बहती है। दूसरी, पूर्वी जेट वायुधारा जो धरातल से 13 कि.मी. ऊपर पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। ऋतुओं के अनुसार इन जेट वायुधाराओं की स्थिति बदलती रहती है। शीत ऋतु में पश्चिमी जेट वायुधारा का अक्ष हिमालय के दक्षिणी ढालों पर स्थित होता है। लेकिन दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन के साथ यह उत्तर की ओर खिसक कर पूरी ऋतु में वहीं रहता है। दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान पूर्वी जेट वायुधारा 25^0 उ. अक्षांश वृत्त के दक्षिण में बहती है। जून में यह प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग के ऊपर बहती है। इस समय इसकी गति 90 कि.मी. प्रति घंटा होती है। अगस्त में यह 15^0उ. अक्षांश वृत्त पर तथा सितंबर में 22^0 उ. अक्षांश वृत्त पर सीमित हो जाती है। पूर्वी जेट वायुधारा ऊपरी क्षोभमंडल में 30^0 उ. अक्षांश वृत्त के उत्तर की ओर कभी नहीं खिसकती।

वर्ष की विभिन्न अवधियों में जेट वायुधाराओं के अक्ष उत्तर या दक्षिण की ओर खिसकते रहते हैं। इनके अध्ययन से दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन, वर्षा ऋतु में विच्छेद और पीछे हटने का पूर्वानुमान लगाने में सहायता मिलती है।

उपोष्ण कटिबंधीय पछुआ पवनों के ऊपरी वायु के गर्त उत्तर-भारत के ऊपर पूर्व की ओर आगे बढ़ते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान में इन्हें पश्चिमी विक्षोभ कहा जाता है। आगे बढ़ते हुए इन गर्तों से पवनें गोल-गोल घूमती हुई चलने लगती हैं। इन्हीं के द्वारा शीत ऋतु में वर्षण होता है। पश्चिमी गर्तों और निम्न स्तरीय चक्रवातीय तूफानों की उत्पत्ति भूमध्य सागर या पूर्वी अटलांटिक प्रदेश में होती है। इनके अलावा गौण चक्रवात पश्चिम एशिया के ऊपर बनते हैं। इनके जीवन का इतिहास प्रशांत या अटलांटिक के शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के समान ही होता है। ये भारत के ऊपर लगभग अधिधारित (अन्तिम) अवस्था (occluded state) में ही पहुँचते हैं।

पश्चिमी विक्षोभ ग्रीष्म ऋतु में भी उत्तर भारत में आते रहते हैं। इस समय इनका संबंध धूल भरी तेज आँधियों से होता है, जो इस ऋतु में पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत में चलती हैं। उत्तर-पूर्वी भारत और बांग्लादेश में ये काल बैसाखी से सबंधित रहते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में सामान्यतः हिमालय के दक्षिणी भाग में इनका चलना बंद हो जाता है, गंगा की घाटी के ऊपर जब ये गर्त पूर्व की ओर बढ़ते हैं, तब बिहार और उत्तर प्रदेश में मानसूनी धाराओं का विस्तार रुक जाता है और मानसून में विच्छेद आ जाते हैं। पीछे हटते हुए मानसून की ऋतु में

पश्चिमी विक्षोभों की आवृत्ति घट जाती है। लेकिन ये बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के मार्ग परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

उष्ण कटिबंधीय तूफान सामान्यतः तड़ित झंझा के रूप में ही आते हैं। इनमें वायु अस्थिर रहती है और तीव्रगति से ऊपर की ओर उठती है। ऊपर उठती हुई वायु 5 से 15 कि.मी. की ऊँचाई तक पहुँच जाती है। ग्रीष्म ऋतु में वायु और भी अधिक ऊँचाई तक ऊपर उठती है। तड़ित झंझाओं के व्यास की लंबाई 8 से 40 कि.मी. के बीच बदलती रहती है। पूर्ण विकसित तड़ित झंझा से मोटी-मोटी बूंदों और ओलों के रूप में भारी वर्षण होता है। स्थल पर धरातलीय तापन से उत्पत्ति के कारण ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के बाद इन तूफानों का आना सामान्य घटना है। ये तूफान बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली के कौंध के साथ आते हैं। उत्तरी-पूर्वी भारत और केरल में ये अक्सर आते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में कई तड़ित झंझाएँ आती हैं। ऋतु के एक तिहाई दिनों में बादल गरजते रहते हैं और बिजली कौंधती रहती है। पीछे हटते हुए मानसून की ऋतु में ये केवल प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिम भारत में ही सीमित हो जाती हैं। जनवरी-फरवरी में इनकी संख्या बहुत कम हो जाती है।

मानसूनी ऋतुएँ

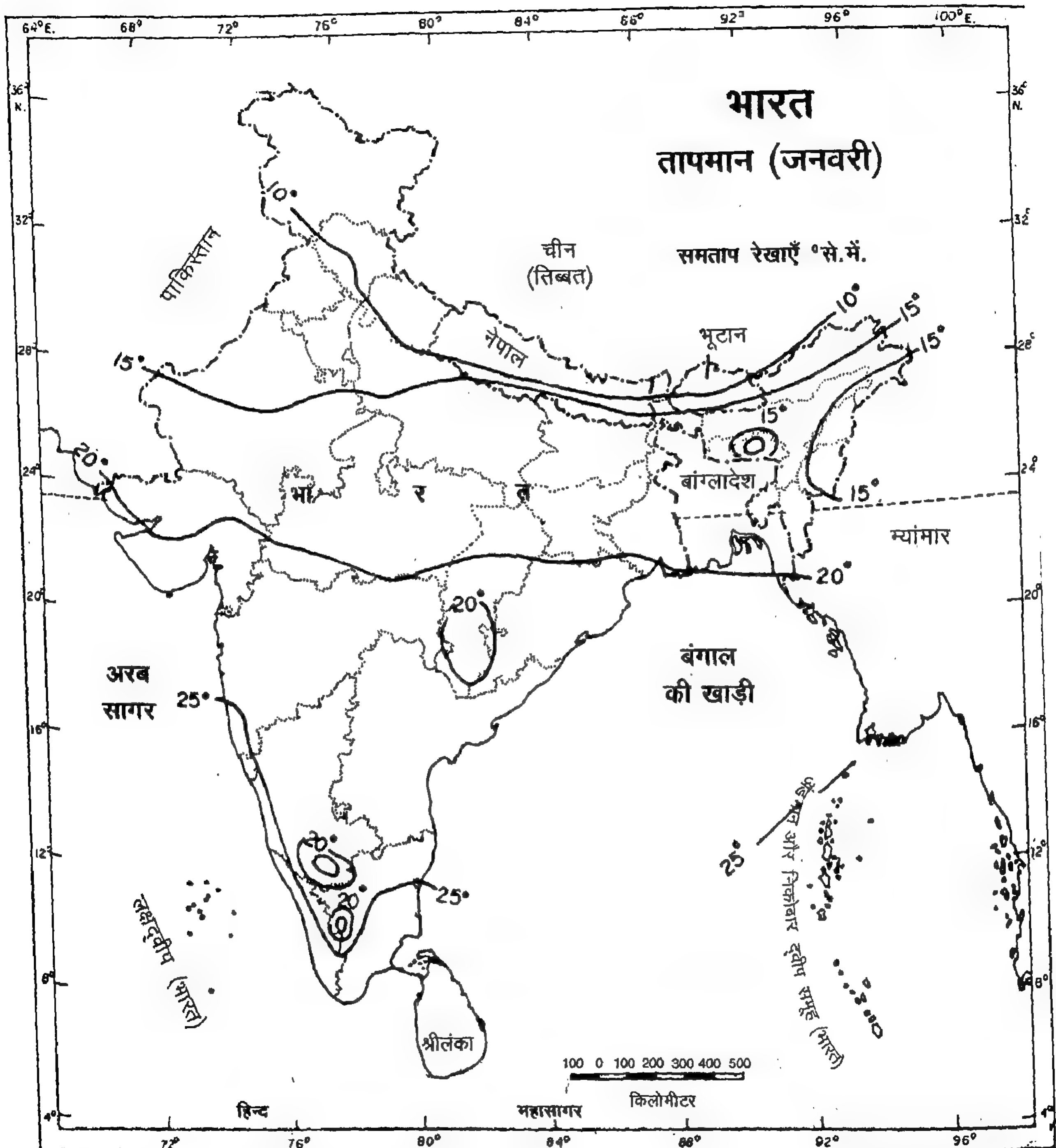
भारतीय जलवायु की दो स्पष्ट ऋतुएँ हैं। ये हैं : दक्षिण-पश्चिम मानसून और उत्तर-पूर्व मानसून। पहली ऋतु में भारत के अधिकतर भागों में वर्षा होती है, जो देश की कृषि अर्थव्यवस्था के लिए अत्यावश्यक है। दूसरी ऋतु में प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोड़कर भारत के अधिकतर भागों में वर्षा नहीं होती है। इन दो ऋतुओं के बीच, दो ऋतुएँ और होती हैं। एक है दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन से पहले की ग्रीष्म ऋतु; दूसरी है शीत ऋतु (उत्तर-पूर्व मानसून) के प्रारंभ होने से पहले की पीछे हटते मानसून की ऋतु। इस प्रकार पूरे वर्ष को आसानी से निम्नलिखित चार ऋतुओं में बाँटा जाता है।

(i) शीत ऋतु : दिसंबर से फरवरी
(ii) ग्रीष्म ऋतु : मार्च से मई
(iii) दक्षिण-पश्चिमं मानसून की ऋतु : जून से सितंबर, और
(iv) पीछे हटते मानसून की ऋतु (पश्चमानसून) : अक्तूबर और नवबंर

ऊपर दी गई चारों ऋतुएँ भारतीय मौसम विज्ञान पर आधारित हैं।

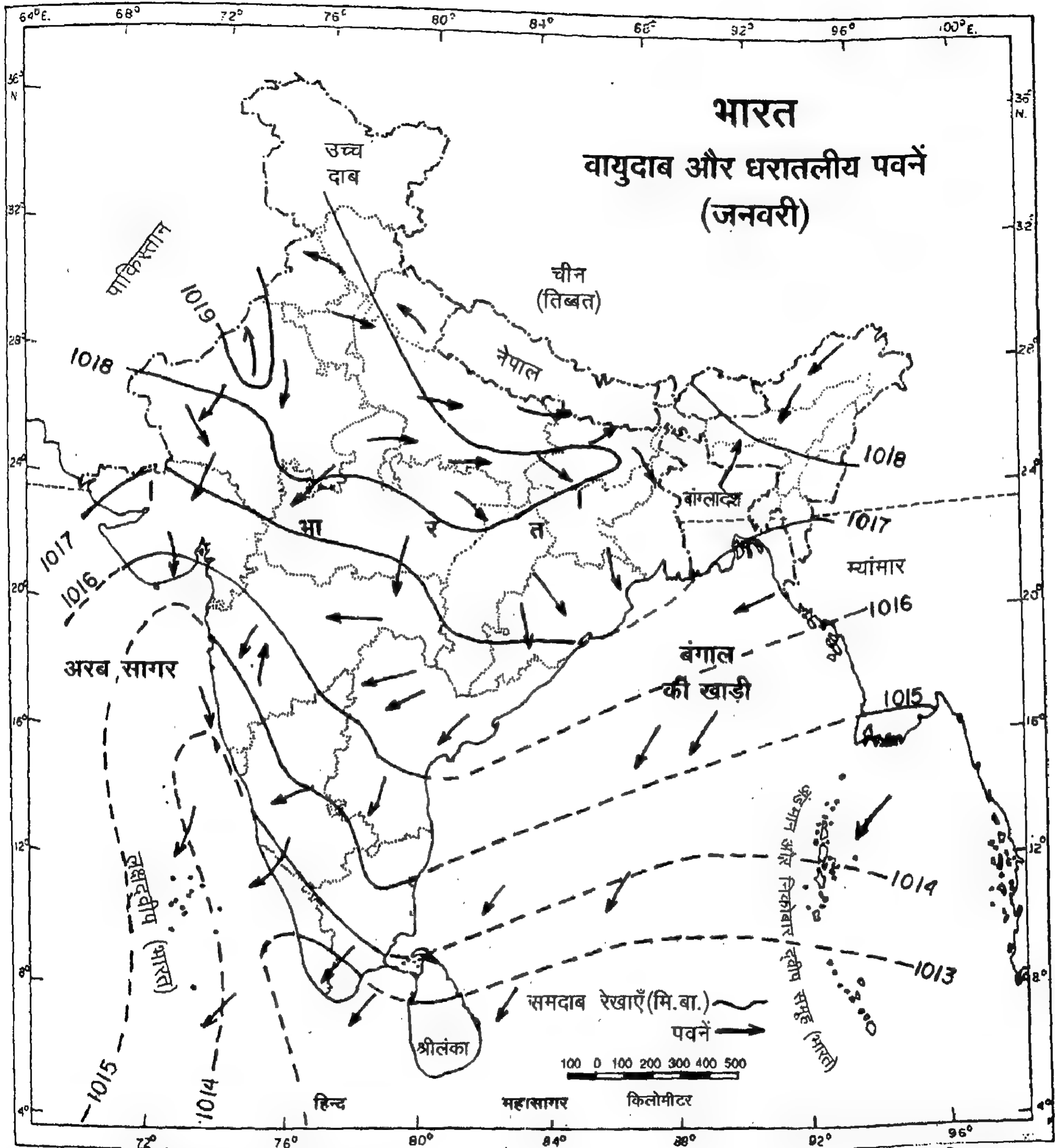
शीतऋतु : यह ऋतु दिसंबर में शुरु होकर फरवरी तक रहती है। सूर्य की किरणें इन दिनों मकर वृत्त पर लंबवत् पड़ती हैं। अत्यंत आंतरिक भाग में स्थित और समुद्र के प्रभाव से दूर भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में तापमान काफी गिर जाता है (चित्र 4.1) और इन दिनों यहाँ उच्च वायुमंडलीय दाब रहता है। यहाँ महीने का औसत तापमान 10^0 से 12^0 से. के बीच रहता है, लेकिन न्यूनतम तापमान इससे भी बहुत नीचे रहता है। देश के इस भाग में उच्च वायुदाब का एक केंद्र बन जाता है, जहाँ से बाहर की ओर ठंडी और शुष्क पवनें चलती हैं (चित्र 4.2)। उत्तर भारत में पवनें पश्चिम दिशा से, मध्य भारत में उत्तर दिशा से तथा प्रायद्वीपीय भारत में उत्तर पूर्वी दिशा से चलती हैं। इस ऋतु में गंगा के मैदान की ये विशेषताएँ हैं : स्वच्छ आकाश, सुहावना मौसम, मंद पश्चिमी समीर, निम्न आर्द्रता, निम्न तापमान, दिन के तापमान में काफी बड़ा अंतर। बह्मपुत्र और कछार घाटियों में उत्तर पूर्व से मंद-मंद समीर बहती है। शेष भारत में पवनों की दिशा उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी होती है। प्रायद्वीपीय पठार के अधिकतर भाग पर साफ और धूप वाला मौसम रहता है। लेकिन तमिलनाडु के तटीय जिलों में उत्तर-पूर्वी मानसून से वर्षा होती है।

शीत ऋतु में अनेक चक्रवातीय अवदाब भूमध्य-सागर से पूर्व की ओर चलते हुए उत्तर भारत में पहुँचते हैं। इस क्षेत्र में ये अवदाब थोड़ी मात्रा में वर्षा करते हैं। संघनन क्रिया ऊपरी वायु में, सामान्यतः धरातल से तीन कि.मी. ऊपर होता है। काफी ऊँचे हिमालय के आस-पास के क्षेत्र के अलावा देश के अन्य भागों में वर्षण के वितरण में स्थानीय उच्चावच से कोई परिवर्तन नहीं होता है। शीत ऋतु की वर्षा तो अल्पमात्रा में होती है, किंतु गेहूँ की फसल के लिए अत्यंत लाभकारी होने के कारण इसका अर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है। प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग में बंगाल की खाड़ी में बनने वाले चक्रवातीय तूफानों



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से माप गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.1 भारत : तापमान (जनवरी)



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.2 भारत : वायुदाब और धरातलयीय पवनें (जनवरी)

और अवदाबों के प्रभाव से यदा-कदा वर्षा हो जाती है। यह वर्षा आंतरिक भागों की ओर घटती जाती है।

ग्रीष्म ऋतु : मार्च से मई की अवधि में उत्तर भारत में तापमान निरंतर तेजी से बढ़ता है तथा वायुदाब कम हो जाता है। दक्षिणी हिंद महासागर में भी तापमान कम हो जाता है। मार्च के महीने में दक्कन के पठार पर दिन का उच्चतम तापमान 38^0 से. रहता है। गुजरात और मध्य प्रदेश में अप्रैल के महीने में तापमान 38^0 से 44^0 से. तक रहता है। उत्तर-पश्चिमी भारत के शुष्क क्षेत्रों में मई के महीने में दिन का उच्चतम तापमान 48^0 से. से भी अधिक हो जाता है (चित्र 4.3)। निम्नतम वायुदाब का क्षेत्र भी इसी प्रदेश में स्थित होता है। इस निम्न वायु दाब की ओर स्थानीय पवनें चलने लगती हैं। स्थानीय पवनों का यह परिसंचरण इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि इससे यहाँ ऐसी दशाएँ पैदा हो जाती हैं, जो दक्षिण पश्चिम पवनों को आकर्षित करने में सहायक होती हैं।

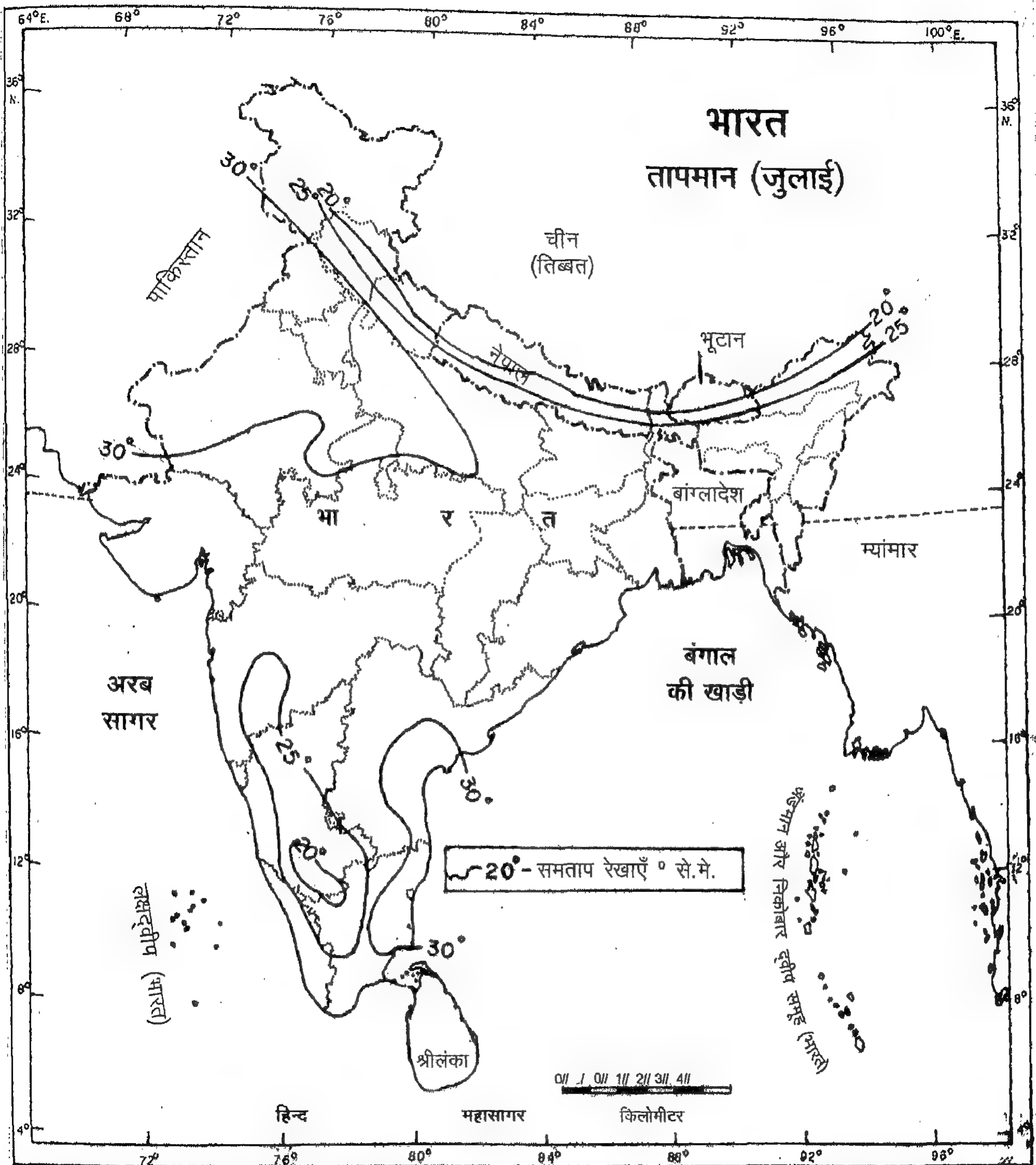
उतर भारत में पवनें मुख्यतः पश्चिम और उत्तर-पश्चिम दिशा से तथा राजस्थान में दक्षिण-पश्चिम दिशा से चलती हैं। गंगा के पूर्वी मैदान में पवनों की दिशा अधिकतर दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम रहती है। ब्रह्मपुत्र घाटी में पवनें पूर्व और पश्चिम दोनों ही दिशाओं से चलती हैं। गुजरात और मध्य भारत में पवनें अधिकतर पश्चिम और उत्तर-पश्चिम दिशाओं से आती हैं। प्रायद्वीप और पूर्वी तट के साथ-साथ पवनों की दिशा दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी होती है। इसके विपरीत पश्चिमी तट पर वे सामान्यतः उत्तर दिशा से ही आती हैं।

उत्तर भारत के अधिकतर भागों में धूल भरी आँधियाँ और तड़ित झंझाओं का चलना सामान्य सी बात है। इस ऋतु की अधिकतर अवधि में वायुमंडल में धुंध छाई रहती है। जहाँ समुद्री आर्द्र पवनें स्थानीय गरम और शुष्क पवनों से मिलती हैं, उन प्रदेशों में अक्सर प्रचंड स्थानीय तूफान बन जाते हैं। इन तूफानों के साथ तेज हवाएँ, मूसलाधार वर्षा और ओले आते हैं। इनसे भारी विनाश होता है। ये तूफान पश्चिम बंगाल और असम में प्रायः आते हैं, जहाँ इन्हें क्रमशः काल बैशाखी और बोर्डोइचिल्ला कहते हैं। इन तूफानों से काफी मात्रा में वर्षा होती है, जो चाय की फसल और धान की उगाती बसन्ती फसल के लिए लाभदायक होने के कारण इसका बहुत अधिक आर्थिक महत्त्व है। प्रायद्वीप में तड़ित झंझा से वर्षा मुख्य रूप से अप्रैल और मई में होती है। इसे ही आम्रवृष्टि कहते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की अस्थायी लहर के द्वारा केरल में मई के महीने में भारी वर्षा होती है। प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग से शुष्क पवनें चलती हैं। यहाँ वर्षा अत्यल्प या बिल्कुल ही नहीं होती है।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून की ऋतु : भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में मई में तापमान तेजी से बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वायुदाब घटने लगता है और शीत ऋतु के उच्च वायुदाब का स्थान अत्यंत निम्न वायु दाब ले लेता है। यह पश्चिमी राजस्थान से लेकर पश्चिम बंगाल तक विस्तीर्ण होता है। निम्न वायु दाब के इस क्षेत्र में वायु की कमी को पूरा करने के लिए बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से वायु खिंच आती हैं (चित्र 4.4)। दक्षिणी गोलार्ध की दक्षिण पूर्वी व्यापारिक पवनें भारत के ऊपर के इस वायु परिसंचरण में, दक्षिण-पश्चिमी पवनों के रूप में आकर मिल जाती हैं। जून के प्रथम सप्ताह में केरल के तट पर दक्षिण-पश्चिम मानसून फट पड़ता है (चित्र 4.5)। धीरे-धीरे यह उत्तर की ओर बढ़ने लगता है तथा महीने के अंत तक सामान्यतः देश के अधिकतर भागों में फैल जाता है। उच्चावच के लक्षणों का मानसून पवनों के प्रवाह और वर्षा के वितरण पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

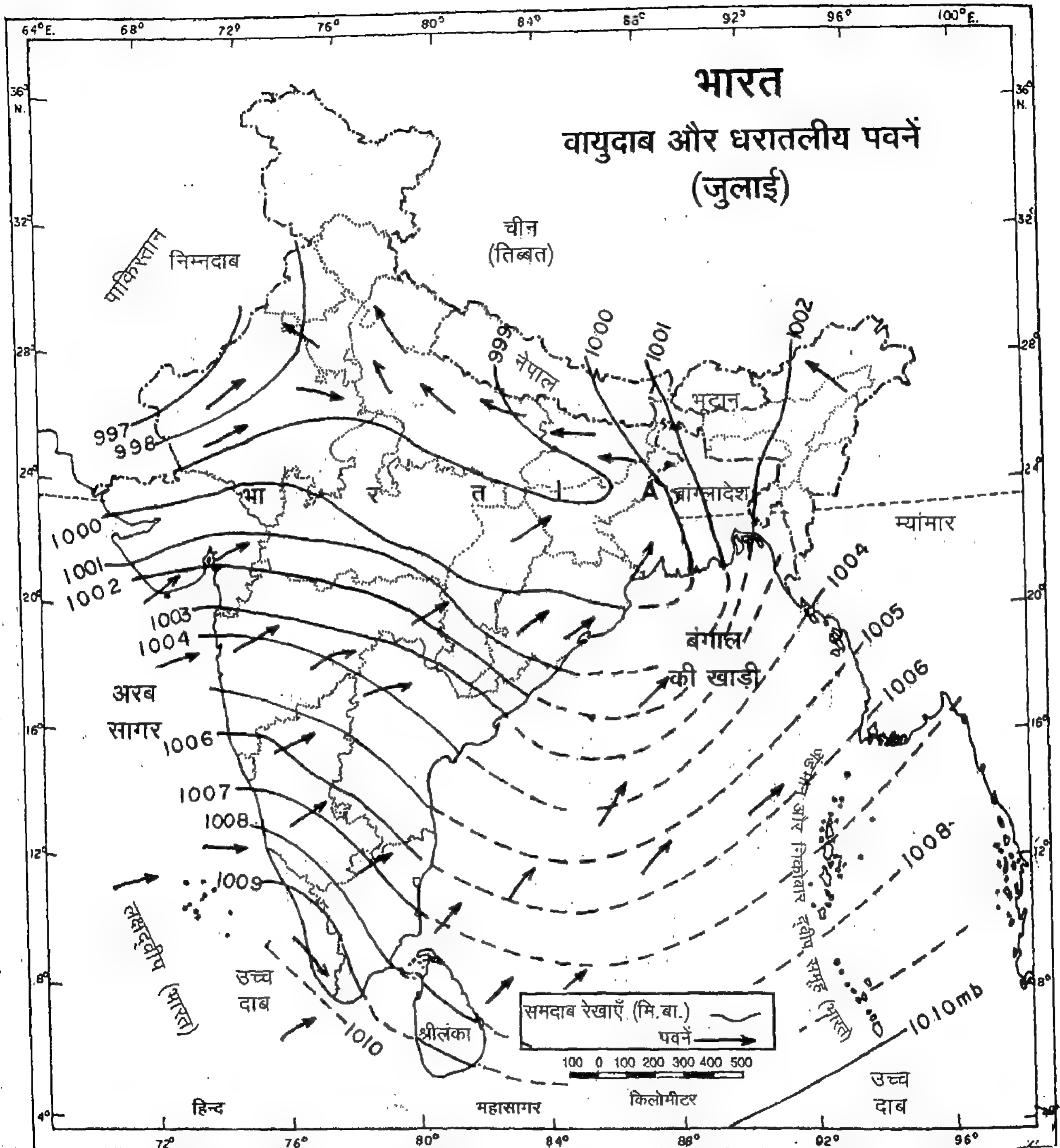
अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, दोनों से ही मानसून भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करता है। अरब सागर की मानसून की शाखा पश्चिमी तट से टकराकर मुंबई के दक्षिण में तटवर्ती जिलों और पश्चिमी घाट पर भारी वर्षा करती है। अरब सागर की मानसून पवनें दो शाखाओं में बँट जाती हैं। दक्षिणी धारा प्रायद्वीप के ऊपर से बहती है तथा बादलों के गर्जन और बिजली की चमक के साथ वर्षा करती है। उत्तरी धारा काठियावाड़ तट को पार करके आगे बढ़ती है तथा मुख्य रूप से गुजरात के तटवर्ती जिलों में वर्षा करती है। अरावली की पहाड़ियों के निकटवर्ती क्षेत्र को छोड़कर राजस्थान में बहुत कम वर्षा होती है।

बंगाल की खाड़ी की धारा भी दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक उत्तर-पूर्वी भारत, म्यांमार और थाईलैंड की ओर बढ़ जाती है तथा दूसरी बंगाल की खाड़ी को पार करके निम्न वायु दाब के मानसूनी गर्त की ओर पश्चिम दिशा में चली जाती है। गंगा के इसी मैदान में पवनों की



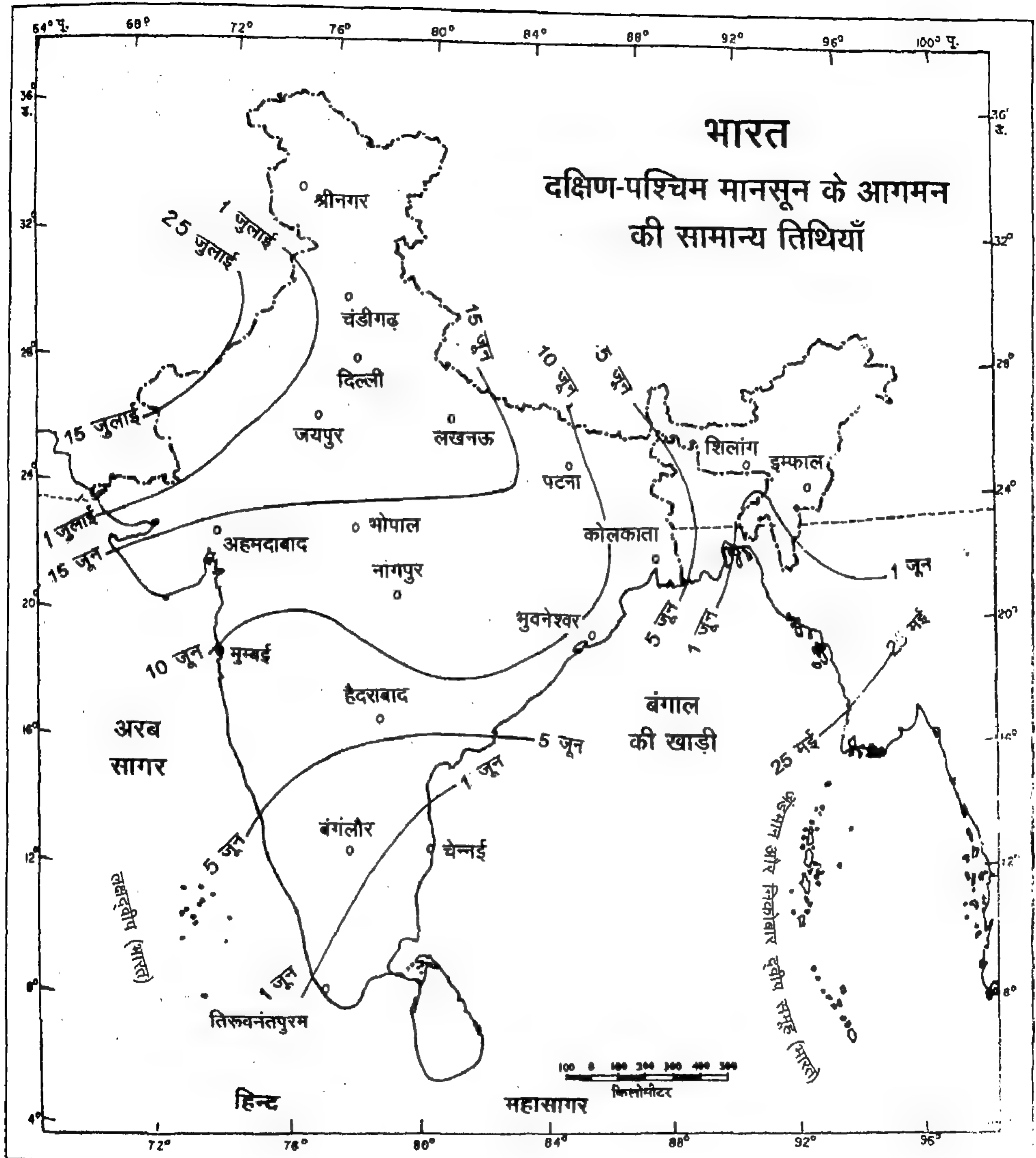
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र मे भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र मे अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणो को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.3 भारत : तापमान (जुलाई)



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.4 भारत : वायुदाब और धरातलीय पवनें (जुलाई)



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.5 भारत : दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन की सामान्य तिथियाँ

दिशा पूर्वी हो जाती है। पश्चिम की ओर वर्षा घटती जाती है। लेकिन मैदानों की तुलना में हिमालय के दक्षिणी पार्श्व में वर्षा की मात्रा काफी अधिक रहती है। राजस्थान पहुँचते-पहुँचते इनकी आर्द्रता काफी घट जाती है। इसी कारण यहाँ बहुत कम वर्षा होती है।

निम्न वायु दाब का मानसूनी गर्त उत्तर भारत के ऊपर ही स्थिर नहीं रहता है। यह उत्तर और दक्षिण की दिशाओं में खिसकता रहता है तथा देश में वर्षा के वितरण को बहुत अधिक प्रभावित करता है। इससे मानसूनी वर्षा में विच्छेद (अंतराल) आ जाते हैं। अंतराल या विच्छेद (break) मानसूनी वर्षा की दुःखदायी विशेषता है। इससे खड़ी फसलों को भारी नुकसान होता है। इस ऋतु में असंख्य उष्ण कटिबंधीय चक्रवात भी आते हैं। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उत्पन्न होने के बाद ये भारतीय भू-भाग की ओर चल पड़ते हैं। इनसे भारी वर्षा होती है तथा इस कारण आई बाढ़ों से बहुत बड़ी क्षति होती है। देश की तीन चौथाई वर्षा दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में ही होती है।

पीछे हटते मानसून की ऋतु : सूर्य की दक्षिण की ओर आभासी (apparent) गति के परिणामस्वरूप गंगा की घाटी में स्थित निम्न वायु दाब का गर्त दक्षिण की ओर खिसकने लगता है, जिससे सितंबर के अंत तक दक्षिण-पश्चिम मानसून कमजोर हो जाता है। सितंबर के प्रथम सप्ताह में मानसून पश्चिमी राजस्थान से पीछे हट जाता है। इसी महीने के अंत तक राजस्थान, गुजरात, गंगा के पश्चिमी मैदान और मध्य उच्च भूमि से भी पीछे हट जाता है (चित्र 4.6)। अक्तूबर के प्रारंभ में निम्न वायु दाब का गर्त बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भागों में केंद्रित हो जाता है तथा नवंबर के प्रारंभिक दिनों में ही यह कर्नाटक और तमिलनाडु के ऊपर चला जाता है। दिसंबर के मध्य तक निम्न वायुदाब का केंद्र प्रायद्वीप से पूरी तरह हट जाता है। यह परिवर्तन अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में शुरु होकर दिसंबर के प्रथम सप्ताह तक पूरा हो जाता है। इस प्रकार अक्तूबर और नवंबर सक्रांति काल तथा शीत ऋतु की शुष्क दशाओं के अग्रदूत हैं।

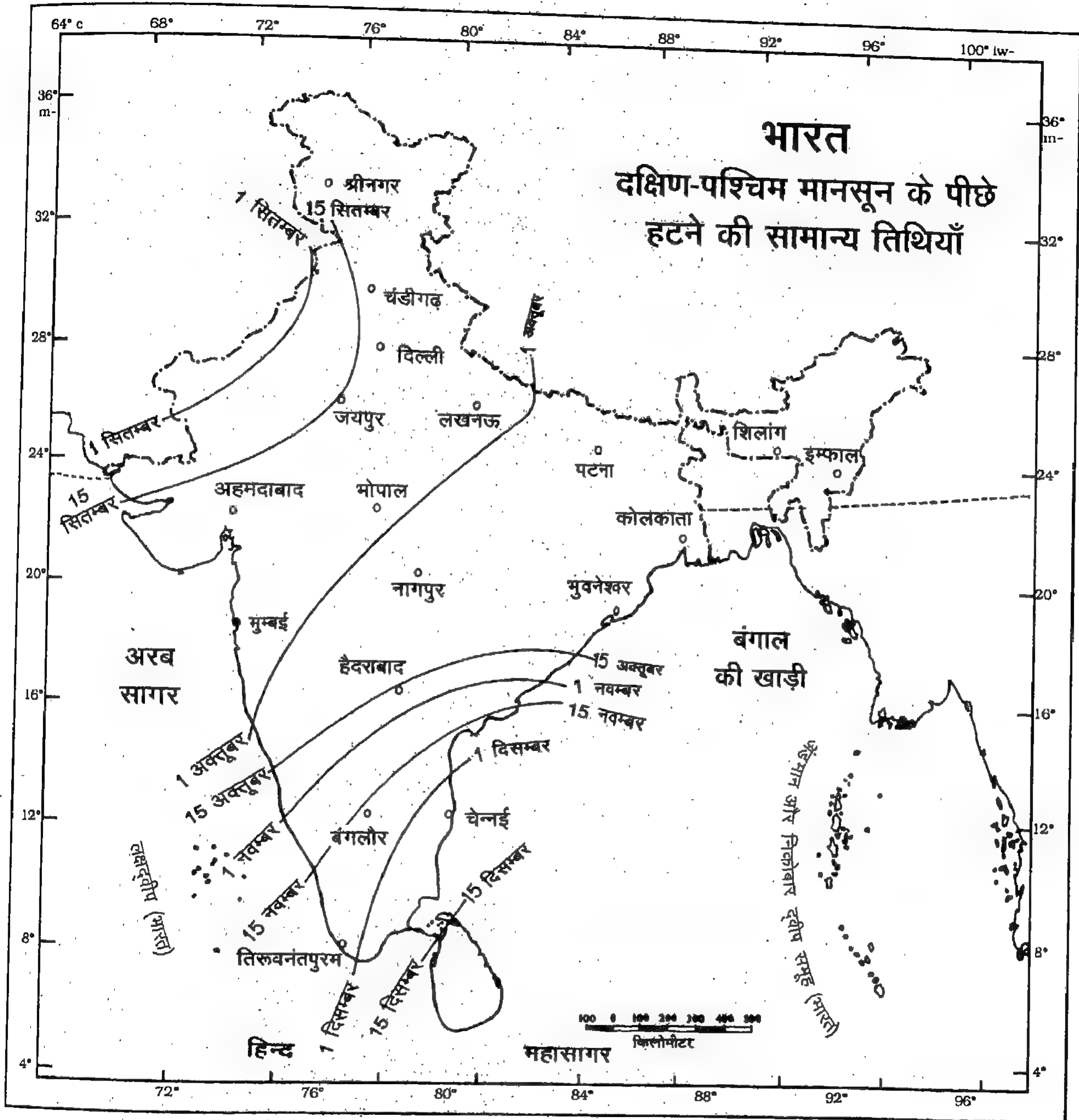
उत्तरी भारत में शुष्क मौसम पीछे हटते मानसून की विशेषता है। लेकिन प्रायद्वीप के पूर्वीभाग में इस ऋतु में भी वर्षा होती है। अक्तूबर और नवंबर में यहाँ वर्ष की सबसे अधिक वर्षा होती है। इस ऋतु की व्यापक वर्षा का संबंध चक्रवाती तूफानों से है, जो समुद्र में बनकर उत्तर की ओर आगे बढ़ जाते हैं। कुछ चक्रवाती तूफान बांग्लादेश और म्यांमार के तट से भी टकराते है। ऐसे चक्रवाती तूफान अरब सागर में कम ही आते हैं।

नवंबर तक देश के अधिकतर भागों से मानसून के हटते ही, उत्तर-पश्चिमी भारत में उच्च वायु दाब का एक केंद्र स्थापित हो जाता है। इसीलिए गंगा के मैदान के अधिकतर भागों में हवाएँ उत्तर-पश्चिम की दिशा से चलती हैं। असम और पश्चिम बंगाल में हवाएँ पूर्व से तथा पूर्वी राजस्थान में उत्तर से आती हैं। प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में पवनों की दिशा उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी रहती है। लेकिन इसके मध्य और दक्षिणी भाग में पवनें उत्तर-पूर्व और पूर्व से चलती हैं। प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर पवनों की दिशा पश्चिमी होती है। देश में दक्षिण-पश्चिम मानसून पवनों के प्रसार की गति तेज होती है, लेकिन मानसून की धाराओं की गति पीछे हटते समय धीमी होती है। इसीलिए मानसून के प्रारंभिक महीनों की तुलना में पीछे हटती हुई मानसून पवनों से कम वर्षा होती है। इस ऋतु में वर्षा का वितरण बहुत ही अनियमित होता है।

वर्षा का वितरण

भारतीय कृषि के लिए वर्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। देश की कृषि की संपन्नता बहुत कुछ समय पर होने वाली और सुवितरित वर्षा पर निर्भर करती है। वर्षा की कमी से कृषि पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए प्रायः कहा जाता है कि भारतीय कृषि मानसून के साथ एक जुआ है।

वर्षा के प्रादेशिक और सामयिक वितरण में बहुत अंतर पाया जाता है। भारत की 80 प्रतिशत से अधिक वार्षिक वर्षा, जून से लेकर सितंबर तक के चार महीनों में ही हो जाती है (चित्र 4.7) । लेकिन अन्य महीनों में भी थोड़ी बहुत वर्षा तो हो ही जाती है। शीत ऋतु में उत्तर-पश्चिमी भारत में लगभग 25 से. मी. वर्षा होती है। प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग में पीछे हटते हुए दक्षिण-पश्चिम मानसून तथा उत्तर-पूर्वी मानसून से लगभग 25 से.मी. वर्षा हो जाती है। लेकिन प्रायद्वीप के आंतरिक भागों में वर्षा की मात्रा तेजी से घटने लगती है। ग्रीष्म ऋतु में उत्तर-पूर्वी भारत और पश्चिम बंगाल में तड़ित झंझाओं से वर्षा होती है। इसी अवधि में केरल में भी दक्षिण-पश्चिम मानसून के अस्थायी प्रसार से वर्षा हो जाती है। लकिन भारत में सबसे

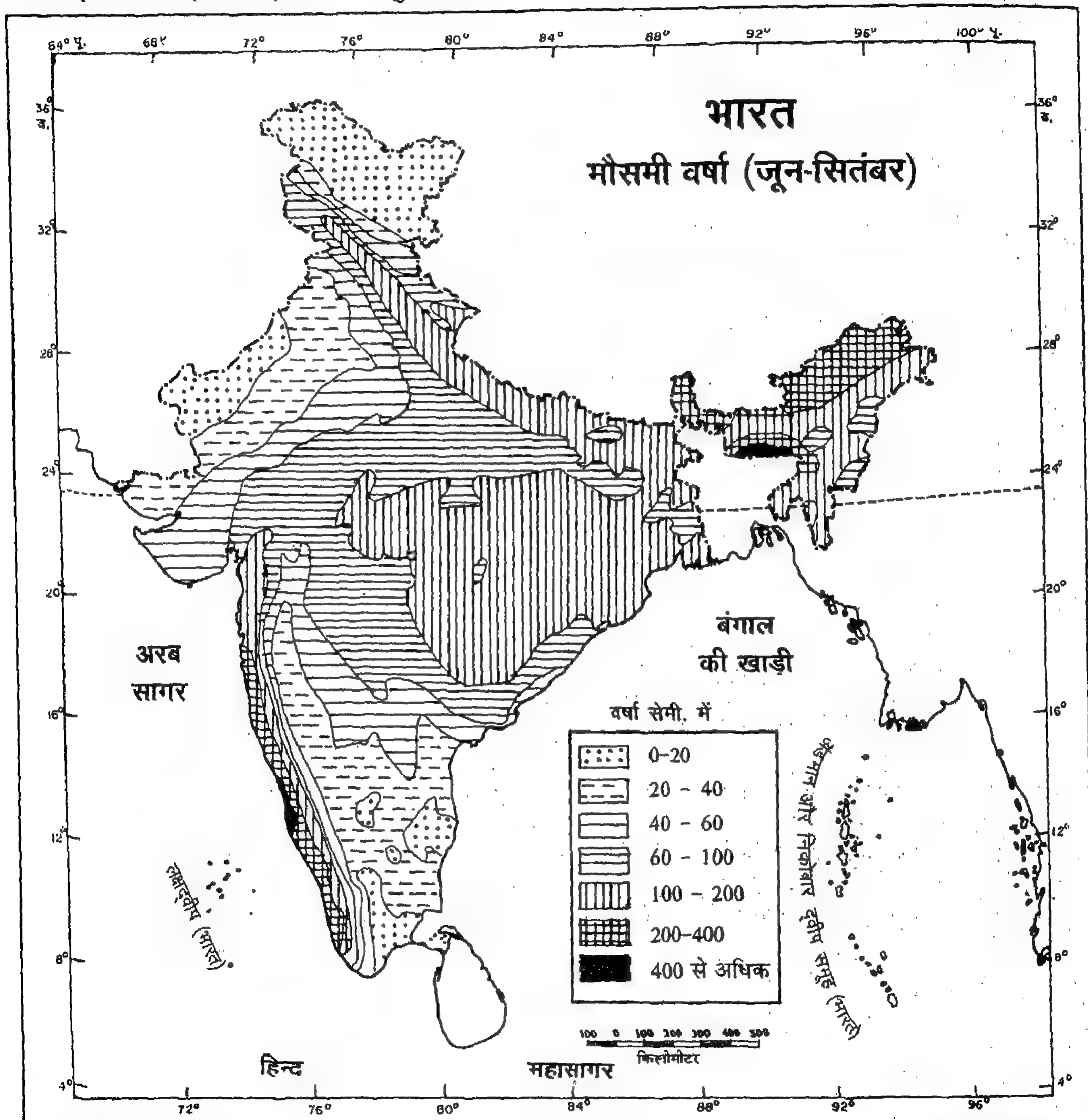


भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.6 भारत : दक्षिण-पश्चिम मानसून के पीछे हटने की सामान्य तिथियाँ

अधिक वर्षा दक्षिण-पश्चिम मानसून से ही होती है। यही नहीं यह वर्षा अपेक्षाकृत सुवितरित है।

भारत में औसतन वर्ष में 125 से.मी. वर्षा होती है, लेकिन इसमें क्षेत्रीय (स्थानिक) भिन्नताएँ बहुत अधिक हैं। चित्र 4.8 में भारत में वर्षा का वार्षिक वितरण दिखाया गया है। भारत के पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, लक्षद्वीप, उत्तर-पूर्व के उप-हिमालयी क्षेत्रों और मेघालय की दक्षिणी पहाड़ियों पर सबसे अधिक वर्षा होती है। यहाँ 400 से.मी.



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय के दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.7 *भारत : मौसमी वर्षा (जून-सितंबर)*

से अधिक ही वर्षा होती है। भारत के मॉसिनराम और चेरापूंजी सर्वाधिक वर्षा के लिए विख्यात हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी और निकटवर्ती पहाड़ियों पर 200 से.मी. से कम वर्षा होती है। गुजरात के दक्षिण भागों, पश्चिमी घाट, पूर्वी तमिलनाडु, प्रायद्वीप के उत्तरी-पूर्वी भाग के उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ राज्यों, बिहार, पूर्वी मध्य प्रदेश, उप-हिमालय के साथ-साथ विस्तृत गंगा के उत्तरी मैदान, कछार घाटी और मणिपुर में 100 से 200 से.मी. के बीच वर्षा होती है। प्रायद्वीप के कुछ भागों जैसे : विशेषरूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र, लद्दाख और पश्चिमी राजस्थान के अधिकतर भागों में 50 से.मी. से कम वर्षा होती है। भारत के शेष भागों में 50 से 100 से.मी. के बीच वर्षा होती है।

देश की वर्षा के वितरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद दो उल्लेखनीय तथ्य उजागर होते हैं : (क) भारत के उत्तरी भाग में वर्षा की मात्रा पश्चिम की ओर घटती जाती है; और (ख) प्रायद्वीपीय भारत में तमिलनाडु के तट को छोड़कर यह पूर्व की ओर घटती है।

वर्षा की परिवर्तिता : यह भारत की वर्षा का विशिष्ट लक्षण है। निम्नलिखित सूत्र की सहायता से वर्षा की परिवर्तिता का मान ज्ञात किया जाता है :

$$C = \frac{\text{मानक विचलन}}{\text{माध्य}} \times 100$$

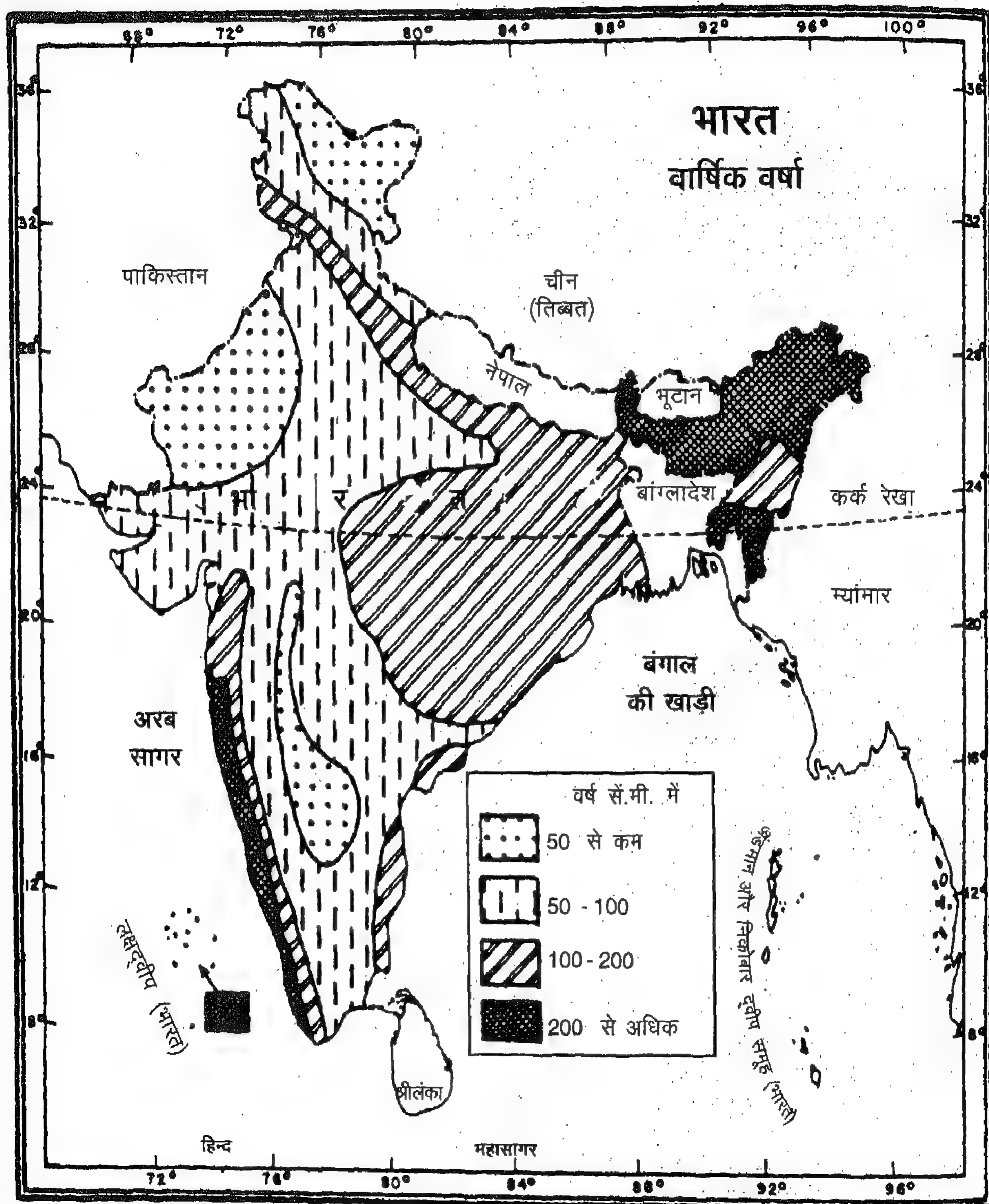
यहाँ C से तात्पर्य विचरण गुणांक से है। विचरण गुणांक वर्षा के माध्यमान से परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। कुछ स्थानों की वास्तविक वर्षा में 20 से लेकर 50 प्रतिशत तक परिवर्तन हो जाता है। विचरण गुणांक के मान एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित हो जाते हैं। चित्र 4.9 में भारत की वर्षा की परिवर्तिता को दिखाया गया है। 25 प्रतिशत से कम परिवर्तिता वाले ये क्षेत्र हैं : पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, उत्तर-पूर्वी प्रायद्वीप, गंगा के पूर्वी मैदान, उत्तर-पूर्वी भारत, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर के दक्षिण-पश्चिमी भाग। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 100 से.मी. से अधिक होती है। 50 प्रतिशत परिवर्तिता वाले क्षेत्र ये हैं : राजस्थान के पश्चिमी भाग, उत्तरी जम्मू और कश्मीर तथा दक्कन के पठार का आंतरिक भाग। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 50 से.मी. से कम होती है। भारत के शेष भागों में परिवर्तिता 25 से 50 प्रतिशत तक है। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 50 से 100 से.मी. के बीच होती है। ऊपर के वितरण से स्पष्ट है कि वर्षा की परिवर्तिता वर्षा की मात्रा का अनुसरण करती है। जितनी अधिक वर्षा उतनी ही वर्षा की परिवर्तिता कम; इसके विपरीत जितनी अधिक वर्षा की परिवर्तिता, उतनी ही कम वर्षा।

वर्षा की परिवर्तिता भारतीय कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उच्च परिवर्तिता की विशेषता वाले क्षेत्रों में पानी की हमेशा किल्लत बनी रहती है तथा फसलें आमतौर पर नष्ट हो जाती हैं। सूखे के दौर इन क्षेत्रों में प्रायः आते रहते हैं।

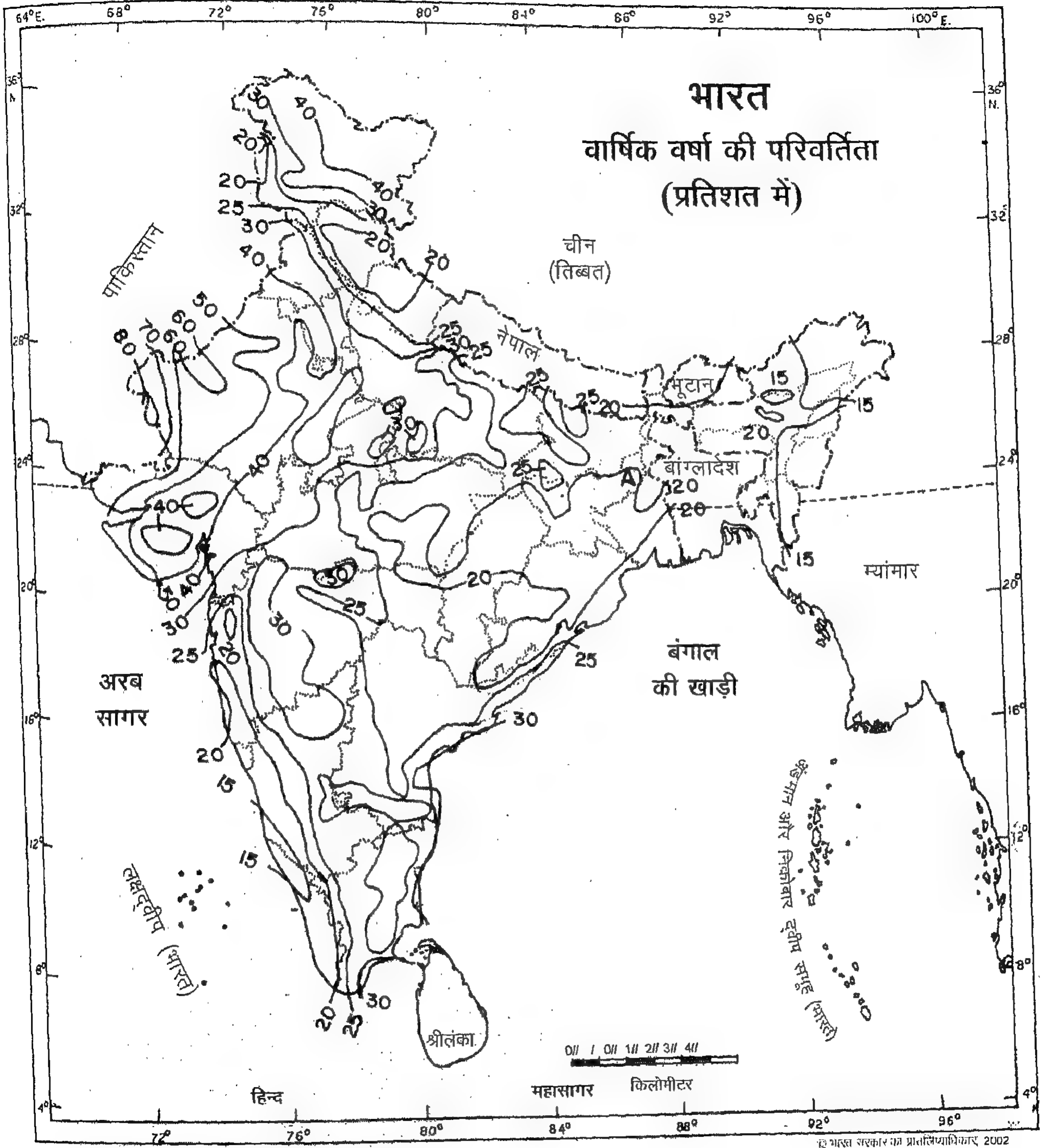
मानसूनी वर्षा की अन्य कई विशेषताएं हैं जैसे : (i) पूरे देश या इसके कुछ भागों में मानसूनी वर्षा का प्रारंभ काफी देर से होता है। (ii) जुलाई और अगस्त में जब ग्रीष्म ऋतु की फसलों को प्रचुर मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है, तब सूखे के लंबे दौर आ जाते हैं। (iii) कभी-कभी मानसूनी वर्षा अपनी सामान्य तिथि से काफी पहले ही हट जाती है, इससे खड़ी फसलों को भारी नुक्सान होता है तथा शीत ऋतु की फसलों की बुवाई में बड़ी कठिनाई होती है, (iv) देश के किसी भाग में तो वर्षा सामान्य तिथि के बाद भी होती रहती है तथा किसी भाग में वर्षा पहले ही रुक जाती है, (v) ग्रीष्म ऋतु की वर्षा मूसलाधार होती है, इससे अधिकतर पानी उपयोग हुए बिना ही बह जाता है और मृदा का अपरदन होता है।

तापमान का वितरण

लोगों के आर्थिक जीवन पर तापमान का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हमने किसी स्थान के तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में पढ़ा है। हम जानते हैं कि समुद्र के निकट के स्थानों की तुलना में सुदूर आंतरिक भागों के स्थानों में ताप परिसर अधिक रहता है। भारत के उत्तर-पश्चिम भाग की तुलना में सुदूर-दक्षिण के स्थानों के तापमान में कम भिन्नताएँ होती हैं। मैदानी स्थानों की तुलना में पहाड़ी स्थानों के तापमान कम रहते हैं। अधिकतर देशों में जुलाई और अगस्त भी जून महीने के समान ही गरम होते हैं। लेकिन दक्षिण-पश्चिम मानसूनी वर्षा और मेघावरण के प्रभाव से भारत के अधिकतर भागों का तापमान इस अवधि में कुछ कम हो जाता है।



चित्र 4.8 भारत : वार्षिक वर्षा



चित्र 4.9 भारत : वार्षिक वर्षा की परिवर्तिता (प्रतिशत में)

एल-नीनो और भारतीय मानसून

एल-नीनो एक जटिल मौसम तंत्र है। यह हर पाँच या दस साल बाद प्रकट होता रहता है। इसके कारण संसार के विभिन्न भागों में सूखा, बाढ़ और मौसम की चरम अवस्थाएँ आती हैं।

महासागरीय और वायुमंडलीय तंत्र इसमें शामिल होते हैं। पूर्वी प्रशांत महासागर में यह पेरू के तट के निकट कोष्ण समुद्री धारा के रूप में प्रकट होता है। इससे भारत सहित अनेक स्थानों का मौसम प्रभावित होता है।

भारत में मानसून की लंबी अवधि के पूर्वानुमान के लिए एल-नीनो का उपयोग होता है। सन् 1990-91 में एल-नीनो का प्रचंड रूप देखने को मिला था। इसके कारण देश के अधिकतर भागों में मानसून के आगमन में 5 से 12 दिनों तक की देरी हो गई थी।

शीत ऋतु में तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर घटता जाता है। इस ऋतु में प्रायद्वीप में औसत मासिक तापमान 29^0 से. के आस-पास रहता है तथा उत्तर भारत में यह 12^0 से. से भी कम हो जाता है। सुदूर दक्षिण में औसत न्यूनतम तापमान लगभग 24^0 से. होता है, लेकिन उत्तर-पश्चिमी भारत में यह 5^0 से. रहता है। शीत लहर की अवधि में तापमान सामान्य से 6^0 से.नीचे गिर जाता है। इस समय कई दिनों तक उत्तरी भारत में पाला भी पड़ता रहता है।

ग्रीष्म ऋतु में उत्तर-पश्चिम भारत के आंतरिक भागों में उच्चतम तापमान रहता है। संपूर्ण उत्तर भारत में अप्रैल में औसत मासिक तापमान 37^0 से. से अधिक हो जाता है। उत्तर-पश्चिम और मध्य भारत के अधिकतर भागों में मई का तापमान 40^0 से. से ऊपर चला जाता है। पश्चिमी राजस्थान और मध्य भारत में अधिकतम तापमान कभी-कभी 50^0 से. तक बढ़ जाता है। उत्तर-पश्चिम भारत में जब तापमान सामान्य से 6^0 से. से अधिक हो जाता है, तो यहाँ गरमी की लहर आ जाती है। संपूर्ण भारत में मई के महीने में औसत न्यूनतम तापमान 21^0 से. से अधिक रहता है। लेकिन प्रायद्वीप के पूर्वी आधे भाग में यह 26^0 से. से अधिक रहता है। मानसूनी वर्षा के प्रारंभ होते ही तापमान तेजी से गिरने लगता है। उत्तर-पश्चिम भारत में जुलाई में न्यूनतम तापमान घटकर 35^0 से. रह जाता है। अगस्त के महीने में तापमान और भी कम हो जाता है, लेकिन जैसे ही मध्य सितंबर में वर्षा थम जाती है यह पुनः बढ़कर 40^0 से. हो जाता है। इसके बाद औसत अधिकतम तापमान घट जाता है।

भारत के जलवायु प्रदेश

भारतीय मानसून की मौसमी दशाओं में कुछ प्रादेशिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर मानसूनी जलवायु के कुछ उप-प्रकारों की पहचान की गई है। जलवायु प्रदेश में जलवायु की लगभग एक जैसी दशाएँ पाई जाती हैं, जो कुछ कारकों का संयुक्त परिणाम होती हैं। तापमान और वर्षा जलवायु के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जिन्हें जलवायु के वर्गीकरण की किसी भी योजना में निर्णायक माना जाता है। लेकिन फिर भी जलवायु का वर्गीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। जलवायु के वर्गीकरण की विभिन्न योजनाएँ हैं। कोपेन की योजना पर आधारित जलवायु के प्रमुख प्रकारों का नीचे के अनुच्छेदों में वर्णन किया गया है।

कोपेन की योजना के अनुसार प्रदेश : कोपेन ने तापमान और वषर्ण के मासिक मानों को जलवायु के वर्गीकरण की योजना का आधार बनाया है। कोपेन ने पाँच प्रमुख जलवायु प्रदेशों का निर्धारण किया है। ये प्रदेश हैं :

(अ) *उष्ण कटिबंधीय जलवायु :* यहाँ औसत मासिक तापमान पूरे वर्ष 18^0 से. से अधिक रहता है।

(ब) *शुष्क जलवायु :* यहाँ तापमान की तुलना में वर्षण बहुत कम होता है, इसलिए शुष्क है। शुष्कता के कम होने पर अर्द्ध शुष्क मरुस्थल (S) होता है। इसके विपरीत शुष्कता अधिक होने पर मरुस्थल (W) होता है।

(स) *कोष्ण जलवायु :* यहाँ सबसे ठंडे महीने का औसत तापमान 18^0 से. और -3^0 से. के बीच रहता है।

(द) *हिम जलवायु :* यहाँ सबसे कोष्ण महीने का औसत तापमान 10^0 से. से अधिक और सबसे ठंडे महीने का औसत तापमान -3^0 सें. से कम रहता है।

(इ) *बर्फ जलवायु :* यहाँ सबसे कोष्ण महीने का औसत तापमान 10^0 से. से कम रहता है।

गरमी की लहर और शीत लहर

भारत के कुछ भागों में मार्च से लेकर जुलाई के महीनों की अवधि में असाधारण रूप से गरम मौसम के दौर आते हैं। ये दौर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की ओर खिसकते रहते हैं। इन्हें गरमी की लहर कहते हैं। गरमी की लहर से प्रभावित इन प्रदेशों के तापमान सामान्य से 6° से. अधिक रहते हैं। सामान्य से 8° से. या इससे अधिक तापमान के बढ़ जाने पर चलने वाली गरमी की लहर को प्रचंड (severe) माना जाता है। इसे उत्तर भारत में 'लू' कहते हैं। प्रचंड गरमी की लहर की अवधि जब बढ़ जाती है तब किसानों के लिए गंभीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। बड़ी संख्या में मनुष्य और पशु मौत के मुहँ में चले जाते हैं। दक्षिण के केरल और तमिलनाडु राज्यों तथा पांडिचेरी, लक्षद्वीप, तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को छोड़कर देश के लगभग सभी भागों में गरमी की लहर आती है। उत्तर-पश्चिम भारत और उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक गरमी की लहरें आती हैं। साल में कम से कम गरमी की एक लहर तो आती ही है।

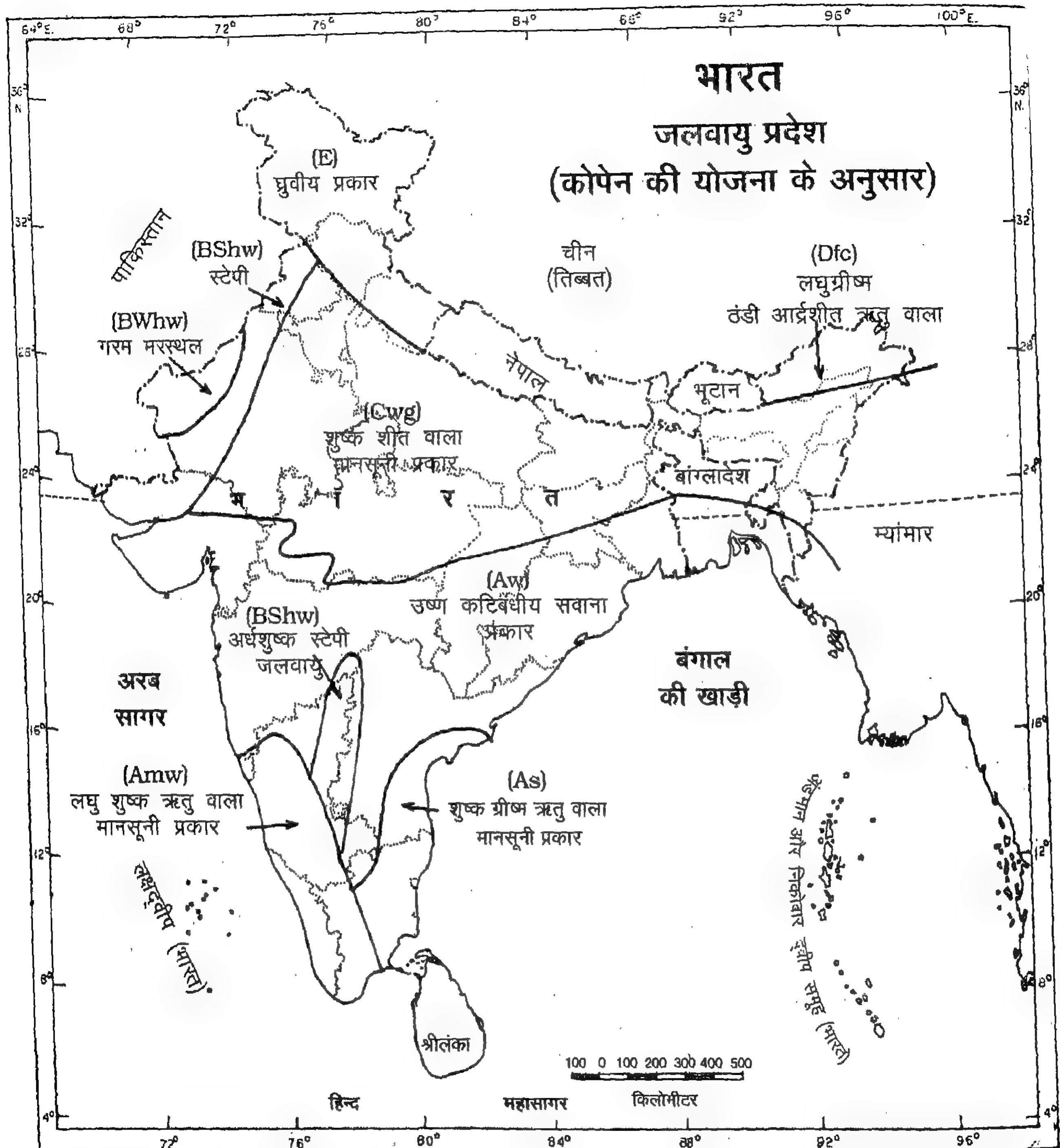
उत्तर-पश्चिम भारत में नवंबर से लेकर अप्रैल तक ठंडी और शुष्क हवाएँ चलती हैं। जब न्यूनतम तापमान सामान्य से 6° से. से नीचे चला जाता है, तब इसे शीत लहर कहते हैं। जम्मू और कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में ठिठुराने वाली शीत लहर चलती है। जम्मू और कश्मीर में औसतन साल में कम से कम चार शीत लहर तो आती ही हैं। इसके विपरीत गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश में साल में एक शीत लहर आती है। ठिठुराने वाली शीत लहरों की आवृत्ति पूर्व और दक्षिण की ओर घट जाती है। दक्षिणी राज्यों में सामांन्यतः शीत लहर नहीं चलती।

कोपेन ने जलवायु के प्रकारों को निर्धारित करने के लिए अक्षरों का संकेत के रूप में प्रयोग किया जैसाकि ऊपर दिया गया है। प्रत्येक प्रकार को उप-प्रकारों में विभाजित किया गया है। इस विभाजन में तापमान और वर्षा के वितरण में मौसमी भिन्नताओं को आधार बनाया गया है। उसने अंग्रेजी के बड़े अक्षर S को अर्द्ध मरूस्थल के लिए और W को मरूस्थल के लिए प्रयोग किया। इसी तरह उप-विभागों को परिभाषित करने के लिए अंग्रेजी के निम्नलिखित छोटे अक्षरों का उपयोग किया है जैसे : f(प्रर्याप्त वर्षण), m(शुष्क मानसून होते हुए भी वर्षा वन) w(शुष्क शीत ऋतु), h(शुष्क और गरम), c(चार महीनों से कम अवधि में औसत तापमान 10° से. से अधिक), और g(गंगा का मैदान)। इस योजना के अनुसार भारत को आठ जलवायु प्रदेशों में बाँटा जा सकता है (सारणी 4.1, एवं चित्र 4.10)।

जलाधिशेष और जलाभाव क्षेत्र

वर्षण और जल की आवश्यकता के बीच के संबंध को जल सतुंलन कहते हैं। यदि वर्षण, वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन की अधिकतम मात्रा से ज्यादा है, तो क्षेत्र आर्द्र कहलाएगा और यदि वर्षण, जल की आवश्यकता से कम है, तो क्षेत्र शुष्क कहलाएगा। वर्षण और जल की आवश्यकता ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। किसी ऋतु में वर्षण का अभाव हो सकता है और दूसरी ऋतु में अधिकता हो सकती है। जल संतुलन के निर्धारण के लिए वास्तविक वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन तथा संभावित वाष्पोत्सर्जन के बीच स्पष्ट अंतर मालूम होना चाहिए। पहली स्थिति में जल की मात्रा, जो वास्तव में वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित हो जाती है, जबकि दूसरी स्थिति में जल की वह मात्रा है, जो यदि उपलब्ध होती तो वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित हो जाती। जल संतुलन का मूल्यांकन करते समय, वर्षण को 'आय', संभावित वाष्पोत्सर्जन को 'खर्च' और मृदा में संचित नमी की मात्रा को शुष्क ऋतु में उपयोग करने के लिए भंडार के रूप में माना जाता है। जलाभाव जलवायु को उत्तरोतर शुष्क और जल की अधिकता उसे उत्तरोतर आर्द्र कर देती है।

भारत का जलाधिशेष क्षेत्र प्रायद्वीप का पश्चिमी घाट है। पूर्व की ओर बहने वाली गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी बड़ी नदियाँ और पश्चिम की ओर बहने वाली तटीय नदियाँ इसी पश्चिमी घाट से निकलती है। जल के अधिशेष का दूसरा क्षेत्र हिमालय के दक्षिणी ढलानों, मेघालय, पूर्वी पर्वत श्रेणियों में है। इन क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 100 से.मी. से अधिक जलाधिशेष रहता है। राजस्थान, पंजाब तथा कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों में या तो जलाधिशेष नहीं होता, या बहुत कम



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.10 भारत : जलवायु प्रदेश (कोपेन की योजना के अनुसार)

सारणी 4.1 : कोपेन की योजना के अनुसार भारत के जलवायु प्रदेश

जलवायु के प्रकार	*क्षेत्र*
Amw - लघु शुष्क ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	गोआ के दक्षिण में भारत का पश्चिमी तट
As - शुष्क ग्रीष्म ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	तमिलनाडु का कोरोमंडल तट
Aw - उष्ण कटिबंधीय सवाना प्रकार	कर्क वृत के दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार का अधिकतर भाग
BShw - अर्ध शुष्क स्टेपी जलवायु	उत्तर-पश्चिमी गुजरात, पश्चिमी राजस्थान और पंजाब के कुछ भाग
BWhw- गरम मरुस्थल	राजस्थान का सबसे पश्चिमी भाग
Cwg- शुष्क शीत ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	गंगा का मैदान, पूर्वी राजस्थान, उत्तरी मध्य प्रदेश, उत्तर पूर्वी भारत का अधिकतर प्रदेश
Dfc - लघु ग्रीष्म तथा ठंडी आर्द्र शीत ऋतु वाला जलवायु प्रदेश	अरुणाचल प्रदेश
E - ध्रुवीय प्रकार	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तरांचल

20° से.मी. प्रतिवर्ष से भी कम होता है। हमारे देश में जलाधिशेष की अन्य विशेषता है, ऋतुओं के अनुसार जल का घटना-बढ़ना। सर्वाधिक जलाधिशेष वर्षा ऋतु में रहता है।

सर्वाधिक जलाभाव का क्षेत्र, उत्तर-पश्चिमी भारत के राजस्थान, पंजाब और हरियाणा हैं। इनमें प्रतिवर्ष 150 से.मी. से अधिक जलाभाव रहता है। जलाभाव का दूसरा बड़ा क्षेत्र कृष्णा नदी की द्रोणी है। जलाभाव केवल शुष्क क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है। यह उन क्षेत्रों में भी पाया जाता है, जहाँ दक्षिणी-पश्चिम मानसून की ऋतु में भारी वर्षा होती है।

नमी सूचकांक : जलाभाव और जल की आवश्यकता के बीच के अनुपात को शुष्कता का सूचकांक कहते हैं। इसके विपरीत जलाधिशेष और जल की आवश्यकता के बीच के अनुपात का आर्द्रता सूचकांक कहते हैं। इन सूचकांकों को प्रतिशत में इस प्रकार व्यक्त किया जाता है

$I_a = d \times 100/n$ $I_h = s \times 100/n$, इसमें I_a शुष्कता के सूचकांक को, I_h आर्द्रता के सूचकांक को, d जलाभाव को, s जलाधिशेष और n जल की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है।

आर्द्रता और शुष्कता सूचकांकों के वार्षिक मानों के आधार पर थार्न्थवेट ने नमी सूचकांक (I_m) विकसित किया। इसका सूत्र है :

$I_m = 100s - 60d/n$

इसमें ऊपर दिए गए अक्षर चिह्नों का उपयोग किया गया है।

नमी सूचकांक के धनात्मक मान आर्द्र जलवायु और ऋणात्मक मान शुष्क जलवायु को दर्शाते हैं। नमी सूचकांकों के आधार पर निम्नलिखित पाँच जलवायु पहचाने जाते हैं:

A	अति आर्द्र	:	I_m 100 या अधिक;
B	आर्द्र	:	I_m 20 और 100 बीच;
C_2	नम उप-आर्द्र	:	I_m 0 और 20 के बीच;
C_1	शुष्क उप-आर्द्र	:	I_m 0 और -20 के बीच;
D	अर्द्ध शुष्क	:	I_m -40 और -20 के बीच;
E	शुष्क	:	I_m -40 और इससे कम।

ऋतुओं के अनुसार नमी में घट-बढ़ को थार्न्थवेट ने अंग्रेजी के छोटे अक्षरों के द्वारा अभिव्यक्त किया है, जैसे ग्रीष्मऋतु में जलाभाव को s के द्वारा, शीतऋतु में जलाभाव को w के द्वारा, आर्द्र जलवायु में जलाभाव के न होने या बहुत कम होने को r के द्वारा, तथा शुष्क जलवायु में जलाधिशेष के न होने या बहुत कम होने को d के द्वारा दर्शाया गया है। ऊपर वर्णित नमी सूचकांक के आधार पर थार्न्थवेट की जलवायु प्रकारों के विभाजन की योजना के अनुसार भारत को छः जलवायु प्रदेशों में बाँटा गया है (सारणी 4.2 तथा चित्र 4.11)।

नमी का अभाव, नमी का अधिशेष तथा इन दोनों में ऋतुओं के अनुसार घट-बढ़, पौधों की वृद्धि और विकास के प्रमुख निर्धारक हैं।

जल संतुलन का ज्ञान, वैज्ञानिक सिंचाई में बहुत उपयोगी होता है। इसके द्वारा अच्छे कृषि उत्पादन के लिए न केवल नमी की आवश्यकता का ज्ञान होता है अपितु सिंचाई के लिए पानी की उपयुक्त मात्रा का भी पता चलता है।

सूखा : यह वह दशा है, जिसमें अधिकतम वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन के लिए आवश्यक जल की मात्रा की तुलना में वर्षण तथा मृदा द्वारा प्राप्त जल की मात्रा कम होती है। सूखा तीन प्रकार का होता है : स्थायी, ऋतुनिष्ठ तथा आकस्मिक। स्थायी सूखा शुष्क जलवायु की विशेषता है। ऐसे क्षेत्र में वनस्पति विरल, कठोर और कम से कम जल मिलने पर जीवित रहने वाली होती है। इस प्रकार सूखे की दशा में बिना सिंचाई के खेती असंभव है। ऋतुनिष्ठ सूखा ऐसी जलवायु के क्षेत्रों में पड़ता है, जहाँ वर्षा और शुष्क ऋतुओं में स्पष्ट अंतर पाया जाता है। भारत का अधिकतर क्षेत्र ऋतुनिष्ठ सूखे से पीड़ित हैं। आकस्मिक सूखा अनियमित होता है। यह परिवर्तनशील वर्षा के क्षेत्रों में पड़ता है। वैसे तो यह किसी भी ऋतु में पड़ सकता है, लेकिन यह प्रायः उप-आर्द्रता जलवायु वाले क्षेत्रों में पड़ता है।

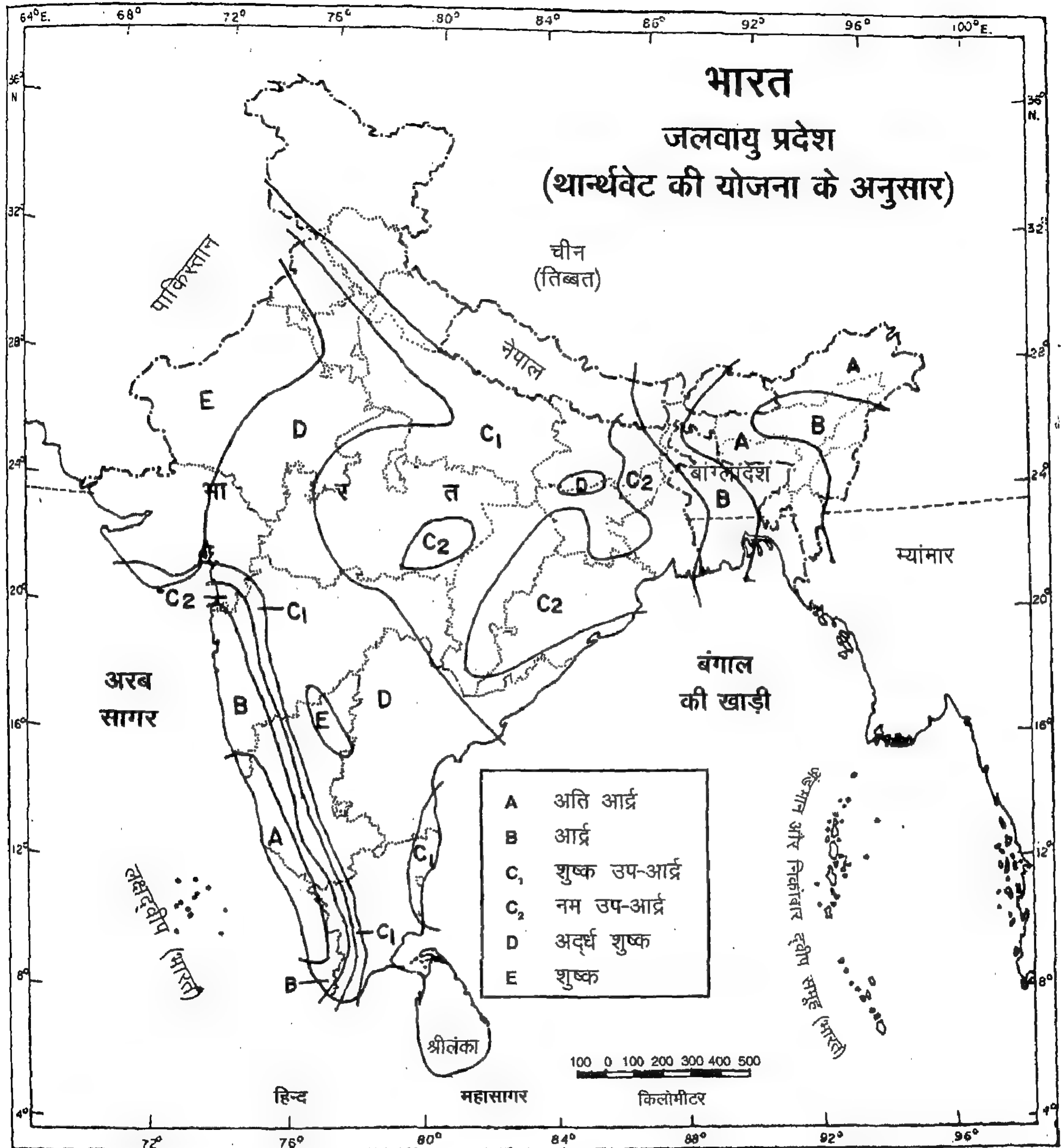
जलवायु और लोग

जलवायु का सुखद या दुःखद होना भी जलवायु के वर्गीकरण के किसी भी अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है। ली (Lee) ने मानव सुख की दृष्टि से जलवायु का अध्ययन किया था। उसने वर्ष के सबसे गरम और सबसे ठंडे महीने के तापमान और आर्द्रता को इस अध्ययन का आधार बनाया था।

जब सबसे गरम और ठंडे महीनों का औसत तापमान 30^0 से. होता है, तब इसे गरम के वर्ग में रखा जाता है; जब यह 20^0-30^0 से. होता है तो कोष्ण; 10^0-20^0 से. है, तो शीतोष्ण; तथा जब यह 10^0 से. से कम होता है, तो

सारणी 4.2 : थार्न्थवेट की योजना के अनुसार भारत के जलवायू प्रदेश

जलवायु के प्रकार	*क्षेत्र*
A अति आर्द्र	उत्तर-पूर्वी भारत में मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय, निचला असम, और अरुणाचल प्रदेश तथा गोआ के दक्षिण में पश्चिमी तट।
B आर्द्र	नागालैंड, ऊपरी असम और मणिपुर, उत्तरी-बंगाल और सिक्किम, तथा पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र
C2 नम उप-आर्द्र	पश्चिम-बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी-बिहार, पंचमढ़ी (मध्य प्रदेश), पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल
C1 शुष्क उप-आर्द्र	गंगा का मैदान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तर-पूर्वी आंध्र प्रदेश, उत्तरी-पंजाब और हरियाणा, उत्तर-पूर्वी तमिलनाडु, उतरांचल, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर।
D अर्ध शुष्क	तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पूर्वी-कर्नाटक, पूर्वी-महाराष्ट्र, उत्तर-पूर्वी-गुजरात, पूर्वी-राजस्थान, पंजाब और हरियाणा का अधिकतर भाग
E शुष्क	पश्चिमी-राजस्थान, पश्चिमी-गुजरात और दक्षिणी-पंजाब



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र मे अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरीपूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, *परन्तु अभी सत्यापित होनी है।*
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तराचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रो द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.11 भारत : जलवायु प्रदेश (थार्न्थवेट की योजना के अनुसार)

इसे शीतल के वर्ग में रखा जाता है। आर्द्रता को सबसे गरम और सबसे ठंडे महीनों के औसत वाष्पदाब के संदर्भ में अभिव्यक्त किया जाता है। जब यह पारे का 20 मि.मी. से अधिक होता है, तब इसे जलवायु के जल सिक्त (wet) वर्ग में रखा जाता है ; 15-20 मि.मी. होने पर नम (moist), 10-15 मि.मी. होने पर आर्द्र (humid), तथा 10 मि.मी. से कम होने पर शुष्क। ऊपर दिए गए आर्द्रता के वर्गीकरण के आधार पर सुब्रह्मण्यम और शिवराम कृष्णैया ने भारत में पाँच जैव-जलवायुविक मंडल निर्धारित किए हैं। ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु, के लिए ये मंडल अलग-अलग हैं। इनके नाम हैं (i) पीड़ादायक (discomfortable); (ii) कष्टकर (uncomfortable); (iii) कम सुखद ; (iv) सुखद ; (v) अत्यधिक सुखद क्षेत्र।

ग्रीष्म ऋतु में देश के पीड़ादायक क्षेत्र हैं : पूर्वी तटीय मैदान, और पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत। कष्टकर क्षेत्र हैं : महाराष्ट्र का पठार, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार के कुछ भाग, तथा लद्दाख। कम सुखद क्षेत्र हैं : भारत का पश्चिमी तट, प्रायद्वीप का उत्तर-पश्चिमी भाग तथा गढ़वाल हिमालयी क्षेत्र। सुखद क्षेत्र हैं : मध्य-मेघालय, गढ़वाल हिमालय के कुछ भाग, तथा पश्चिमी घाट के ऊँचे क्षेत्र। अत्यधिक सुखद क्षेत्र हैं : कर्नाटक में बंगलौर और मैसूर के आस-पास का आंतरिक क्षेत्र तथा पश्चिमी घाट के पूर्वी ढलानों पर पुणे-कोल्हापुर का क्षेत्र।

शीत ऋतु में उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, तथा जम्मू और कश्मीर पीड़ादायक हो जाते हैं। राजस्थान से लेकर बिहार तक विस्तृत सम्पूर्ण उत्तर-भारत तथा मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग कष्टकर होते हैं। देश के कम सुखद क्षेत्र हैं : उत्तर-पूर्वी भारत तथा प्रायद्वीप के उत्तर-पूर्वी पठार। सुखद क्षेत्र हैं : भारत के पूर्वी तटीय मैदान, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात के कुछ भाग। अत्यधिक सुखद क्षेत्र हैं : कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के आंतरिक भाग।

भू-मंडलीय तापन का प्रभाव

प्राचीन काल में जलवायु में परिवर्तन हुआ है। इसमें आज भी परिवर्तन हो रहे हैं। भारत में जलवायु परिवर्तन के अनेक ऐतिहासिक और भू-वैज्ञानिक प्रमाण मिलते हैं। इस परिवर्तन के लिए अनेक प्राकृतिक एवं मानवकृत कारक उत्तरदायी हैं। ऐसा कहा जाता है कि भू-मंडलीय तापन के प्रभाव से ध्रुवीय व हिम की चादरें और पर्वतीय हिमानियाँ पिघल जाएंगी। इसके परिणामस्वरूप समुद्रों में जल की मात्रा बढ़ जाएगी।

आजकल संसार के तापमान में काफी वृद्धि हो रही है। मानवीय क्रियाओं द्वारा उत्पन्न कार्बनडाइऑक्साइड की वृद्धि चिंता का प्रमुख कारण है। जीवश्म ईंधनों के जलने से वायुमंडल में इस गैस की मात्रा क्रमशः बढ़ रही है। कुछ अन्य गैसें जैसे : मीथेन, क्लोरो-फल्यूरो-कार्बन, ओजोन, और नाइट्रस ऑक्साइड, वायुमंडल में अल्प मात्रा में विद्यमान हैं। इन्हें तथा कार्बनडाइऑक्साइड को हरितगृह गैसें कहते हैं। कार्बनडाइऑक्साइड की तुलना में अन्य चार गैसें दीर्घ तरंगी विकिरण का ज्यादा अच्छी तरह से अवशोषण करती हैं, इसीलिए हरितगृह प्रभाव को बढ़ाने में उनका अधिक योगदान है। इन्हीं के प्रभाव से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है।

विगत 150 वर्षों में पृथ्वी की सतह का औसत वार्षिक तापमान बढ़ा है। ऐसा अनुमान है कि सन् 2100 में भू-मंडलीय तापमान में लगभग 2^0 सेल्सियस की वृद्धि हो जाएगी। तापमान की इस वृद्धि से कई अन्य परिवर्तन भी होंगे। इनमें से एक है गरमी के करण हिमानियों और समुद्री बरफ के पिघलने से समुद्र तल का ऊँचा होना। प्रचलित पूर्वानुमान के अनुसार औसत समुद्र तल 21 वीं शताब्दी के अंत तक 48 से.मी. ऊँचा हो जाएगा। इसके कारण प्राकृतिक बाढ़ों की संख्या बढ़ जाएगी। जलवायु परिवर्तन से कीटजन्य मलेरिया जैसी बीमारियाँ बढ़ जाएंगी। साथ ही वर्तमान जलवायु सीमाएँ भी बदल जाएंगी, जिसके कारण कुछ भाग अधिक जलसिक्त (Wet) और अधिक शुष्क हो जाएंगे। कृषीय प्रतिरूपों के स्थान बदल जाएंगे। जनसंख्या और परितंत्र में भी परिवर्तन होंगे। जरा सोचिए, यदि आज का समुद्र तल 50 से.मी. ऊँचा हो जाए, तो भारत के तटवर्ती क्षेत्रों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   - (i) मानसून शब्द से क्या तात्पर्य है ?
   - (ii) भारतीय मानसून के विकास में सहायक दो कारकों के नाम बताइए।
   - (iii) भारतीय जलवायु की दो मुख्य ऋतुओं के नाम बताइए।
   - (iv) महीनों के नाम के साथ भारत की संक्रांति काल की ऋतुओं के नाम बताइए।
   - (v) जेट वायुधारा किसे कहते हैं ?
   - (vi) मानसून में 'विच्छेद' किसे कहते हैं ?
   - (vii) गंगा के मैदान में दक्षिण-पश्चिमी मानसून से होने वाली वर्षा पश्चिम की ओर क्यों घट जाती है ?
   - (viii) असम और बंगाल की तड़ित झंझाओं के स्थानीय नाम बताइए।
   - (ix) पीछे हटते मानसून की ऋतु में केरल में पवनों की कौन-सी दिशा होती है ?
   - (x) गरमी की लहर और शीत लहर किसे कहते हैं ?
   - (xi) वर्षा की परिवर्तिता की गणना के लिए किस सूत्र का उपयोग किया जाता है ?
   - (xii) भारत में ध्रुवीय प्रकार की जलवायु कहाँ पाई जाती है ?
   - (xiii) शीत ऋतु में भारत के अत्यधिक सुखद क्षेत्रों के नाम बताइए।
   - (xiv) भारत के अति आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों के नाम लिखिए।
   - (xv) मानसूनी वर्षा की चार विशेषताएँ बताइए।
   - (xvi) आम्र वृष्टि किसे कहते हैं ?

2. कारण बताइए :
   - (i) उत्तर-पश्चिम भारत में शीत ऋतु में भी वर्षा होती है।
   - (ii) ग्रीष्म ऋतु की तुलना में तमिलनाडु में शीत ऋतु में अधिक वर्षा होती है।
   - (iii) पश्चिमी राजस्थान में बहुत थोड़ी वर्षा होती है।
   - (iv) शीत ऋतु में भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में उच्च वायु दाब का केंद्र बन जाता है।
   - (v) दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में गंगा की घाटी में पवनें प्रायः पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं।
   - (vi) मॉसिनराम और चेरापूंजी में भारी वर्षा होती है।
   - (vii) मुंबई की अपेक्षा दिल्ली का तापान्तर अधिक है।

3. नीचे दिए गए स्तंभों से सही जोड़े बनाइए :

जलवायु / मौसम	प्रदेश
(क) 25 प्रतिशत से कम वर्षा परिवर्तिता	(i) मध्य मेघालय
(ख) शुष्क ग्रीष्म ऋतु वाली मानसूनी प्रकार (As)	(ii) पश्चिमी-मध्य प्रदेश
(ग) शुष्क उप-आर्द्र	(iii) उत्तर प्रदेश
(घ) ग्रीष्म ऋतु में सुखद क्षेत्र	(iv) गंगा का मैदान
(ङ) 50 और 100 से.मी. के बीच वार्षिक वर्षा	(v) गंगा का पूर्वी मैदान
(च) गरमी की लहर	(vi) तमिलनाडु का कोरोमंडल तट

4. भारत की ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में तापमान के वितरण का वर्णन कीजिए।
5. "भारतीय किसान के लिए मानसून जुआ है" व्याख्या कीजिए।
6. भारत में वर्षा के वितरण के प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।

7. भारत की शीत ऋतु के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।
8. भारतीय मानसून के आगमन और निवर्तन (पीछे हटना) के अर्थ स्पष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य

1. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित को दिखाइए :
   (क) शीतकालीन वर्षा के क्षेत्र
   (ख) ग्रीष्म ऋतु में तड़ित झंझा के क्षेत्र
   (ग) शीतऋतु में पवनों की दिशा
   (घ) वर्षा की 50 प्रतिशत परिवर्तिता वाले क्षेत्र
   (ड.) 200 से.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र।

2. (i) नीचे दिए गए आंकड़ों के आधार पर तिरुवनन्तपुरम, दिल्ली और जोधपुर की वर्षा और तापमान के आरेख बनाइए।

स्थान	ज.	फ.	मा.	अ.	म.	जू.	जु.	अ.	सि.	अ.	न.	दि.
तिरुवनन्तपुरम												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	31.3	31.7	31.4	32.3	31.9	29.5	29.2	29.1	29.7	30.0	30.1	30.7
औसत न्यूनतम ता.से.अंश	22.2	22.9	24.2	25.1	25.3	23.7	23.3	23.3	23.3	23.4	23.1	22.4
वर्षा मि.मी.	22.9	20.8	38.6	105.7	207.8	356.4	223.0	145.5	137.9	273.3	20.5	64.7
दिल्ली												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	21.1	24.3	30.6	37.1	41.2	40.2	35.1	33.6	33.7	33.3	28.8	23.1
औसत न्यूनतम से.अंश	7.3	9.4	14.8	21.4	26.7	28.7	26.9	26.1	24.3	18.5	11.4	6.8
वर्षा मि.मी.	20.8	23.6	12.9	9.7	9.7	67.6	186.2	169.9	134.9	14.2	2.0	8.6
जोधपुर												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	24.5	27.1	32.7	37.7	40.9	39.8	35.9	33.1	34.5	35.4	31.0	26.2
न्यूनतम औसत ता.से.अंश	9.2	11.4	16.5	21.8	26.6	28.1	26.7	25.0	23.8	18.7	13.2	10.2
वर्षा मि.मी.	5.1	6.1	2.8	3.3	9.7	30.7	108.2	131.3	57.4	7.6	1.8	2.00

संकेत – ता.: तापमान, से. : सेल्सियस, मि.मी. : मिलीमीटर

(ii) इन स्थानों के तापमान और वर्षा के वितरण की एक-दूसरे से तुलना कीजिए।

5

अध्याय

प्राकृतिक वनस्पति

पौधों के समूह को वनस्पति कहते हैं। प्राकृतिक वनस्पति में केवल वे पौधे ही सम्मिलित किए जाते हैं, जो मानव की सहायता के बिना जंगली अवस्था में उगते हैं। अपनी संरचना और पदार्थों में परिवर्तन करके ऐसे पौधे अपने आपको प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल बना लेते हैं। इस प्रकार फसलें और फलों के बाग वनस्पति के सामान्य वर्ग में शामिल किए जाते हैं, लेकिन वे प्राकृतिक वनस्पति का अंग नहीं होते। ऐसे पौधे प्राकृतिक वनस्पति का भी अंग हो सकते हैं, यदि वे मानव के हस्तक्षेप के बिना ही उगें। विभिन्न पर्यावरणीय एवं पारितंत्रीय परिवेश में जो कुछ भी प्राकृतिक रूप में उगता है, उसे प्राकृतिक वनस्पति कहते हैं। मानव के फसलों के उगाने और पशुओं को पालने से पूर्व संपूर्ण पृथ्वी पर प्राकृतिक वनस्पति का आवरण था। यदि हम 25 वर्षों के लिए पृथ्वी को अकेला छोड़ें, तो यह पुनः प्राकृतिक वनस्पति से भरपूर हो जाएगी।

प्राकृतिक वनस्पति पौधों का वह समुदाय है, जिसमें लंबे समय तक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ है। मानव के हस्तक्षेप से रहित प्राकृतिक वनस्पति के उस भाग को अक्षत वनस्पति कहते हैं। भारत में अक्षत वनस्पति हिमालय, थार मरुस्थल और सुंदरबन (बंगाल का डेल्टा) के अगम्य क्षेत्रों में पाई जाती है। दूसरे क्षेत्रों में वनस्पति में परिवर्तन हो गया है। इस परिवर्तन के कारण हैं : जनसंख्या वृद्धि, भूमि अधिग्रहण क्षेत्र का विस्तार तथा कृषि के लिए वनस्पति को साफ करके खेत बनाना। सम्राट अशोक ने सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाए थे तथा मुगलों ने फलदार वृक्षों के विशिष्ट बाग लगवाए थे। लोगों ने जंगली दशा में उगने वाली घासों, झाड़ियों और वृक्षों की मूल प्रजातियों से सैकड़ों फसलें विकसित की थीं। मूल जातियों में से आज भी अनेक पेड़-पौधे उसी रूप में पाए जाते हैं जैसे : कीकर, पीपल, बेर और ढाक।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि प्राकृतिक वनस्पति अपने आपको भौतिक पर्यावरण, ऊँचाई, मौसम, जलवायु आदि के अनुकूल बना लेती है। इसलिए प्राकृतिक वनस्पति में बहुत भिन्नता पाई जाती है। पर्वतों पर लंबे और छोटी पत्तियों वाले वृक्षों के वन, कोष्ण जलवायु में चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के वन, मरुस्थलों में झाड़ियाँ और कांटेदार वृक्षों वाले वन, और दलदली भूमि में गरान (मैंग्रोव) वन पाए जाते हैं।

भारत में बहुत प्राकृतिक विषमता है। अतः यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति में भी बहुत विविधता पाई जाती है। हिमालय की ऊँचाई पर शीतोष्ण वनस्पति दिखाई पड़ती है तथा पश्चिमी घाट पर उष्ण कटिबंधीय हरे-भरे वन पाए जाते हैं। डेल्टाई प्रदेशों में उष्ण कटिबंधीय वन और गरान मिलते हैं, राजस्थान के मरुस्थली और अर्ध-मरुस्थली भाग खेजड़ी वृक्षों, झाड़ियों और कांटेदार वृक्षों के लिए प्रसिद्ध हैं। जलवायु की परिवर्तिता, विशेषरूप से वर्षा की मात्रा में अंतर होने के कारण देश के अन्य भागों में विभिन्न प्रकार के वन पाए जाते हैं। वनस्पति उष्ण कटिबंधीय से उपोष्ण कटिबंधीय में तथा अंत में हिमालय के ढालों पर अल्पाइन प्रकार में बदल जाती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट और नीलगिरि पर वनस्पति में परिवर्तन आ जाता है। पूर्वी और पश्चिमी हिमालय, पश्चिमी घाट के पूर्वी और पश्चिमी ढलानों तथा भारत के उत्तर-पश्चिमी मैदानों और गंगा के मध्यवर्ती और निचले मैदानों में भी वर्षा की मात्रा के परिवर्तन के साथ ही वनस्पति का स्वरूप भी बदल जाता है।

वनस्पति के प्रकार

विभिन्न विद्वानों, संस्थाओं और संगठनों ने भारत की वनस्पति का वर्गीकरण किया है, लेकिन एच.जी. चैंपियनकृत वर्गीकरण सबसे अधिक लोकप्रिय और बहुमान्य है। सन् 1936 में चैंपियन ने वृहत्तर भारत के लिए अपने वर्गीकरण की योजना विकसित की थी। सन् 1968 में चैंपियन और सेठ ने स्वतंत्र भारत के लिए इसे पुनः प्रकाशित किया है। यह वर्गीकरण पौधों की संरचना, आकृति विज्ञान और

पादपी स्वरूप पर आधारित है। सर्वप्रथम वनों को 16 मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है, फिर इन्हें 221 उप-वर्गों में बाँटा गया है। 16 प्रकारों को पुनः निम्नलिखित 6 वर्गों में समूहित किया गया है (चित्र 5.1) :

1. उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन
2. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन
3. अर्ध-मरुस्थलीय वन और मरुस्थलीय वनस्पति (कांटेदार वन)
4. ज्वारीय अथवा डेल्टाई वन
5. पर्वतीय वनस्पति
6. घासें

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन : इन्हें वर्षा वन भी कहते हैं। ये वन तीन प्रकार के हैं : आर्द्र-सदाहरित, अर्ध-सदाहरित तथा आर्द्र-पर्णपाती वन। ये वन भारत के कुल वन क्षेत्र के 49 प्रतिशत भाग पर फैले हैं। ये वन सामान्यतः वहीं पाए जाते है, जहाँ वर्षा 130 और 250 से.मी. के बीच होती है तथा तापमान 22^0 से लेकर 27^0 से. तक रहता है।

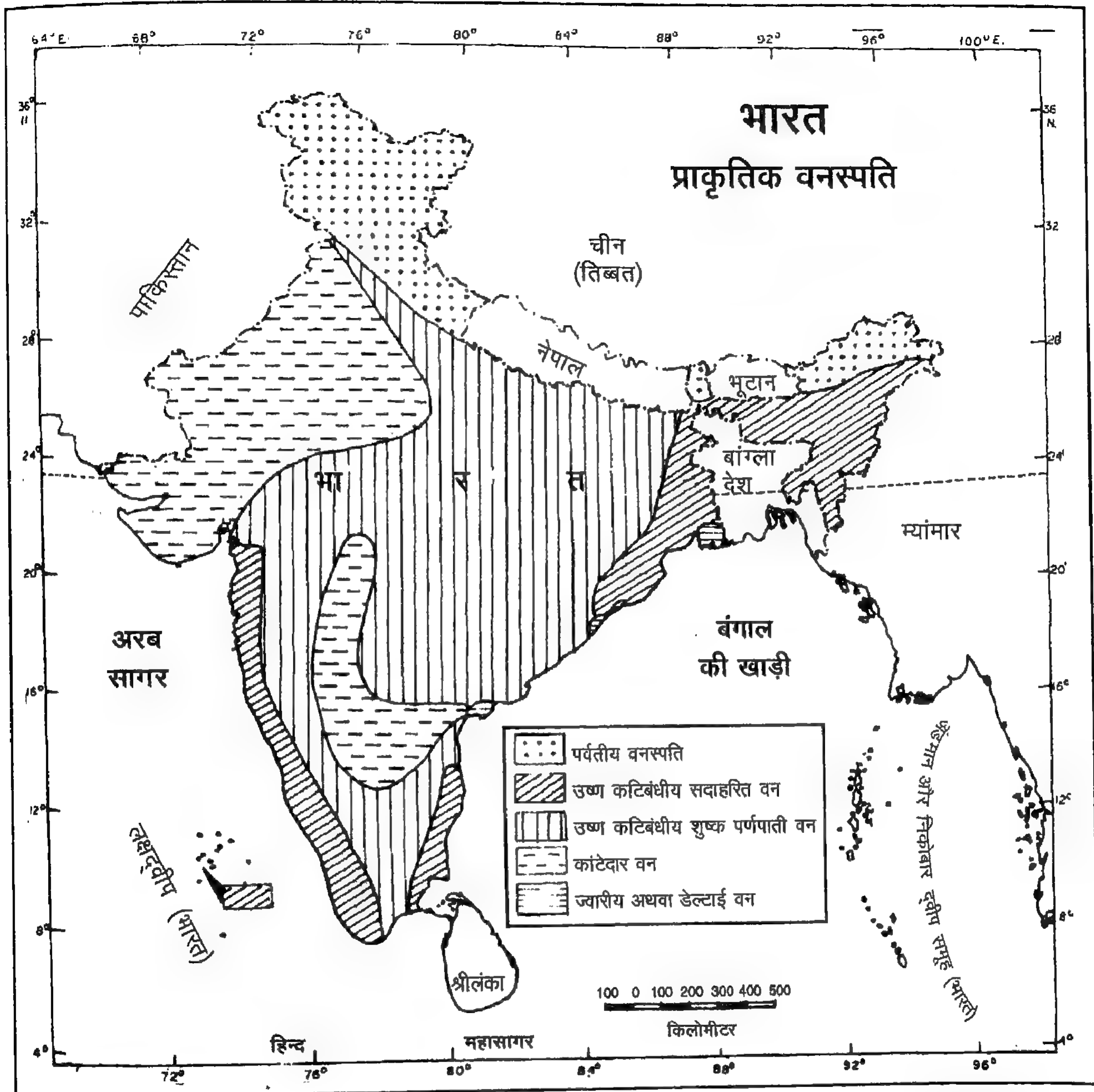
उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वनों के मुख्य क्षेत्र ये हैं : पश्चिमी घाट, प्रायद्वीपीय भारत के अरब सागर के तट के साथ-साथ का क्षेत्र, भारत का उत्तर-पूर्वी प्रदेश, तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। इन वनों के कुछ छोटे-छोटे अवशिष्ट क्षेत्र उड़ीसा में भी मिलते हैं। मानवीय हस्तक्षेप के कारण सदाहरित वनों की तुलना में अर्ध-सदाहरित वनों का विस्तार अधिक है। आर्द्र पर्णपाती प्रकार के वन मध्य प्रदेश, केरल, तमिलनाडु के दक्षिणी कोयंबतूर क्षेत्र, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में भली-भाँति उगते हैं।

वर्षा वनों के तीनों प्रकारों के वनस्पतिजात और प्राणिजात में काफी अंतर पाया जाता है। पश्चिमी-घाट के पश्चिमी ढलानों पर ये वन बहुत घने हैं। लेकन पूर्वी ढाल वृष्टि छाया प्रदेश में आते हैं। इन वनों में व्यापारिक महत्त्व के वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ मिलती हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं: भारतीय रोजवुड, (डलबर्गिया लैटीफोलिया) मलाबार कीनो, सागौन और टर्मिनालिया क्रेनुलटा। फसलों और रोपण कृषि के लिए उपयुक्त अनेक क्षेत्रों से ये वृक्ष काट दिए गए हैं। वर्षा वनों में वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। दक्षिण-पश्चिमी भारत के सभी सदाहरित और अर्ध-सदाहरित वनों में नदियों, नालों और तालाबों के किनारे बांस के झुरमुट मिलते हैं।

उत्तर-पूर्वी भारत में उष्ण कटिबंधीय वनस्पति 900 मी. की ऊँचाई तक पाई जाती है। इनमें सदाहरित और अर्ध-सदाहरित वर्षा वन, आर्द्र-पर्णपाती मानसून वन, नदियों के किनारे के वन, दलदल और घास भूमि शामिल हैं। सदाहरित वर्षा वन असम घाटी, पूर्वी हिमालय की पाद पहाड़ियों, नागा पहाड़ियों के भागों, मेघालय, मिजोरम और मणिपुर में पाए जाते हैं। यहाँ वर्षा प्रतिवर्ष 200 से.मी. से अधिक होती है। असम घाटी में विशालकाय डिपटैरोकारपस, मैक्रोकारपस और साल (शोरिया असैमिका) एकाकी ही उगते हैं। कभी-कभी इनके तने का घेरा (girth) 7 मी. तक और ऊँचाई 50 मी. तक हो जाती है। साल वन अधिकतर आर्द्र-पर्णपाती प्रकार के होते हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में भी तीनों प्रकार अर्थात् उष्ण कटिबंधीय सदाहरित, उष्ण कटिबंधीय अर्ध-सदाहरित तथा उष्ण कटिबंधीय आर्द्र-पर्णपाती वन, पाए जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन : ये वन उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ वर्ष में 60 से लेकर 120 से.मी. के बीच वर्षा होती है तथा नवंबर से मई तक एक लंबी शुष्क ऋतु होती है। 29^0 से 35^0 से. के मध्य अधिकतम तापमान वाले तथा 18^0 से 23^0 से. के मध्य न्यूनतम तापमान वाले क्षेत्रों में ये वन अच्छी तरह से उगते हैं। इन वन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतुओं में काफी गरमी पड़ती है तथा तापमान 48^0 से. तक पहुँच जाता है। इन वनों में पेड़ 13 से 20 मी. तक ऊँचे बढ़ जाते हैं। इन वनों में वृक्षों की प्रजातियाँ कम हैं। प्रायः सागौन और एक्सल वुड (एनोजिसस) मिलते हैं।

वनों का यह प्रकार कुल वन क्षेत्र के 28.6 प्रतिशत भाग में पाया जाता है। इन वनों का विस्तार मुख्यतः गंगा के मैदान, भारतीय प्रायद्वीप के मध्यवर्ती भाग और तमिलनाडु में कोयंबतूर के पठार पर है। इन वनों के मुख्य वृक्ष हैं : सागौन (टैक्टोना ग्रांडिस), इमली, अमलतास (कैसिया) खैर और बांस। प्रायद्वीपीय पठार के अधिक वर्षा वाले प्रदेशों और उत्तरी भारत के मैदान में ये वन पार्क-भूमि जैसे लगते हैं। खुले मैदान में सागौन तथा अन्य वृक्ष सामान्य रूप में उगते हैं। इन वृक्षों के बीच-बीच में घास के छोटे-छोटे मैदान होते हैं। शुष्क ऋतु के आगमन के



चित्र 5.1 भारत : प्राकृतिक वनस्पति

साथ ही ये वृक्ष अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इस समय ये वन विस्तृत घास भूमि की तरह दिखाई पड़ते हैं, जिसमें चारों ओर पत्ते-विहीन वृक्ष होते हैं। पश्चिम की ओर ये वन शुष्क कांटेदार वनों में विलीन हो जाते हैं। नमी वाले क्षेत्रों में विशेषरूप से नदियों के निकट पीपल खूब फूलता-फलता है। इन वनों का एक अन्य सुंदर वृक्ष सेमल है। सेमल (बौम्बक्सीबा) की रूई कोमल और रेशमी होती है।

अर्ध-मरुस्थलीय वन तथा मरुस्थलीय वनस्पति (कांटेदार वन): ये वन घासभूमि और झाड़ियों के मिश्रण हैं। ये वन 30 से 60 से.मी. वर्षा वाले तथा 8 से 11 महीने

की शुष्क ऋतु वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहाँ की भूमि समतल और मृदा सामान्यतः उपजाऊ है। इसीलिए इन वनों के अधिकतर भागों को साफ करके मनुष्य ने खेती करनी शुरू कर दी थी। यह विशेषरूप से वहीं संभव हुआ जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। पूर्वी-राजस्थान, दक्षिण-पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी हरियाणा, मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड, उत्तर प्रदेश, दक्षिणी-कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में इस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। उष्ण कटिबंधीय अर्ध-मरुस्थलीय वनस्पति, उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वनस्पति में विलीन हो जाती है। यहाँ वनस्पति विरल है। इन बौने वनों में वृक्ष और झाड़ियाँ दूर-दूर उगे होते हैं। इनमें ऐकेशिया तथा यूफोर्बिया बहुतायत से पाए जाते हैं। घाटियों में जंगली खजूर के पेड़ उगते हैं। नदियों के किनारे और टीलों पर खैर (ऐकेशिया कैच्यू) शीशम, पीपल (फाइकस रिलीजियोसा) और बबूल (एकेशिया अरेबिका) के वृक्ष मिलते हैं। अरावली की श्रेणियों में खरधई (एनोजैविसस पेंडुला), बेर (जिजिफस मौरीटियानिया) और ढाक के वृक्षों की बहुतायत है। आज की अपेक्षा प्राचीन काल में थार मरुस्थल का अधिक भाग वनों से ढका था। कम वर्षा और अति चराई ने इसे रेगिस्तान बना दिया है। यहाँ घास के झुंड कहीं-कहीं 2 मी. ऊँचे तक बढ़ जाते हैं। वर्षा ऋतु का आगमन तूफानों (अल्पकालिक झंझा) के साथ होता है। इससे मृदा को बहुत हानि होती है। गरम हवाएँ भी वृक्षों और झाड़ियों की वृद्धि को प्रभावित करती हैं। कोपलों की सुरक्षा के लिए घासों में मोटी पत्तियों का गुच्छा सा उग आता है। इनकी जड़ों में बारीक शाखाएँ होती हैं। शुष्क ऋतु में पत्ते-विहीन होकर वृक्ष वाष्पोत्सर्जन की मात्रा को कम कर लेते हैं। इनकी मूसला जड़ें होती हैं। इन वनों की शाखाएँ छोटी-छोटी तथा ऊँचाई केवल 15 मी. तक ही होती है। इन वृक्षों की छाल मोटी और मुड़ी हुई आकृति की होती है।

ज्वारीय अथवा डेल्टाई वन : भारत विविध प्रकार की आर्द्र भूमियों में सपन्न है, इसमें विविध प्रकार के वन्य-जीव और पेड़-पौधे पाए जाते हैं। भूमि के 70 प्रतिशत भाग में धान की खेती होती है। आर्द्र भूमि का कुल क्षेत्रफल 3,904,543 हैक्टेयर है। अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के आर्द्र भूमि सम्मेलन (रामसर सम्मेलन) के अंतर्गत चिल्का झील (उड़ीसा) तथा केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (भरतपुर) की दो आर्द्र भूमियाँ, अनेक सरंक्षित जलपांखियों के उल्लेखनीय आवास हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के बीच किया गया समझौता ही अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन है। प्रदेशानुसार देश की आर्द्र भूमियों के 8 वर्ग हैं: (i) दक्षिण में दक्कन के पठार के जलाशय। इसमें लैगून और दक्षिण-पश्चिमी तट की आर्द्र भूमियाँ भी शामिल हैं; (ii) राजस्थान, गुजरात और कच्छ की खाड़ी के विस्तृत खारी जलाशय; (iii) गुजरात के पूर्व में राजस्थान (केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान) से होकर मध्य प्रदेश तक की अलवणजल की झीलें और अन्य जलाशय; (iv) भारत के पूर्वी तट की डेल्टाई आर्द्र भूमियाँ और लैगून (चिल्का झील); (v) गंगा के मैदान की अलवण जल की दलदलें; (vi) ब्रह्मपुत्र के बाढ़ के मैदान, उत्तरी-पूर्वी भारत की पहाड़ियाँ तथा हिमालय की पाद पहाड़ियों की दलदलें; (vii) कश्मीर और लद्दाख के पर्वतीय प्रदेश की नदियाँ और झीलें; (viii) अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के गरान (मैंग्रोव) तथा अन्य आर्द्र भूमियाँ। गरान (मैंग्रोव) वनों को भी इसी वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। ये वन समुद्र तट पर स्थित खारी दलदलों, ज्वारीय निवेशिकाओं, संकरी खाड़ियों, पंक मैदानों और ज्वारनदमुखों में उगते हैं। इन वनों में अनेक लवण-सह पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। निवेशिकाओं के जाल के स्थिर जल और ज्वारीय प्रवाह में विविध प्रकार के अनेक पक्षियों को आश्रय मिलता है।

भारत में गरान वन 6,740 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं। यह संसार के कुल गरान वन क्षेत्र का 7 प्रतिशत है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में इनका बहुत अच्छा विकास हुआ है। इन वनों के अन्य उल्लेखनीय क्षेत्र हैं : महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेश। इन वनों पर मानवीय क्रिया-कलापों के कारण विनाश का खतरा मंडरा रहा है। इसलिए इनका संरक्षण अत्यावश्यक है।

पर्वतीय वनस्पति : पर्वतीय प्रदेश में पाई जाने वाली यह वनस्पति दो प्रकार की है : हिमालयी और प्रायद्वीपीय वनस्पति।

हिमालयी पर्वतीय वनस्पति : ऊँचाई और वर्षा की मात्रा के आधार पर हिमालयी वनस्पति को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। ये वर्ग हैं : उष्ण कटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय, शीतोष्ण कटिबंधीय और अल्पाइन। उच्चावच में स्थानीय विभिन्नताओं, जलवायु, सूर्य के

प्रकाश की ओर रूख तथा पवनें, प्रत्येक क्षेत्र की वनस्पति के संघटन में उल्लेखनीय परिवर्तन कर देती हैं।

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित पर्वतीय वर्षा वन पूर्वी और मध्य हिमालय की आर्द्र पाद-पहाड़ियों तक ही सीमित हैं। ये वन 1,500 मी. की ऊँचाई तक पाए जाते हैं। इन वनों में इमारती लकड़ी वाले तथा राल (रेजिन) उत्पादक वृक्ष पाए जाते हैं। नागकेसर के वृक्ष (आयरन वुड) 1,200 से लेकर 1,300 मी. तक की ऊँचाई पर सरंध्र मृदा में खूब उगते हैं। बांस तीव्र ढालों पर पाए जाते हैं। अरुणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम की ओर मध्य नेपाल तक 1,200 से 1,300 मी. ऊँचाई पर बलुहा पत्थर पर विकसित अधकचरी मिट्टी (लिथोसोल) पर बांज (ओक) और पांगर (चेस्टनट) के वृक्ष उगते हैं। भिदुर (आल्डर) के वृक्ष अपेक्षाकृत अधिक तीव्र ढालों पर नदी-नालों के किनारे पाए जाते हैं। इन वृक्षों के अलावा लगभग 4,000 प्रजातियों के पुष्पी पादप भी यहाँ उगते है। इनमें से 20 प्रकार के ताड़ हैं। ये वन नेपाल, उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश की तराई के आर्द्र प्रदेश में पाए जाते हैं। ये वन उन प्रदेशों में उगते हैं, जहाँ साल में 100 से लेकर 150 से.मी. तक वर्षा होती है, तापमान 26^0 और 27^0 से. के मध्य रहता है तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत रहती है। छोटे-बड़े पर्णपाती वृक्ष इन वनों का विशिष्ट लक्षण है। ये अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई पर उगते हैं। अपेक्षाकृत कम ऊँचाई वाले प्रदेशों में वृक्षों के बीच-बीच में बांस के झुरमुट, लताएँ, बेंत और सदाहरित झाड़ियाँ उगती हैं। मुख्य वृक्ष हैं : साल, बेर, गूलर, झिंगल, पलाश (ढाक), महुआ, सेमल, आंवला, जामुन आदि।

पश्चिम की ओर घटती वर्षा और बढ़ती ऊँचाई के कारण वर्षा वनों का स्थान उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन ले लेते हैं। कीमती इमारती लकड़ी वाला साल इन वनों का मुख्य वृक्ष है। 920 मी. की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आर्द्र साल के उगने की आदर्श दशाएँ पाई जाती हैं। लेकिन 1,370 मी. की ऊँचाई तक भी शुष्क साल उगता है।

1,500 से लेकर 3,500 मी. की ऊँचाई तक शीतोष्ण कटिबंधीय वन पाए जाते हैं। इनमें शंकुधारी तथा शीतोष्ण कटिबंधीय चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष उगते हैं। बांज और शंकुधारी वृक्षों के सदाहरित वन लघु हिमालय की मुख्य विशेषता है। कश्मीर में पीरपंजाल की श्रेणी के बाह्य ढालों पर इन्हें विशेषरूप से देखा जा सकता है। 920 से लेकर 1,640 मी. की ऊँचाई तक चीड़ (पाइनस राक्सबर्घी) प्रमुख वृक्ष हैं। आंतरिक घाटियों में वृक्षों की ये प्रजातियाँ 800 मी. की ऊँचाई पर भी मिलती हैं। देवदार (सीडर) एक अत्यंत मूल्यवान स्थानीय प्रजाति का वृक्ष है। यह मुख्य रूप से हिमालय की श्रेणी के पश्चिमी भाग में उगता है। देवदार के पेड़ 2,700 मी. की ऊँचाई पर पाए जाते हैं। सतलुज और गंगा नदी की घाटियों में ये वृक्ष और भी अधिक ऊँचाई पर उगते हैं। नीला चीड़ और स्प्रूस 2,225 मी. से 3,048 मी. की ऊँचाई तक भी उगते हैं।

अल्पाइन क्षेत्र वृक्ष-सीमा के उपर से शुरू होता है। इसका विस्तार 3,200 तथा 3,500 मी. की ऊँचाई के मध्य है। अल्पाइन क्षेत्र पश्चिमी हिमालय में 3,900 मी. तथा पूर्वी हिमालय में 4,450 मी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। इस क्षेत्र में आर्द्र अल्पाइन वनस्पति पाई जाती है। नंगा पर्वत के धूपवाले, तीव्र तथा चट्टानी ढालों पर और सूखे क्षेत्रों में जूनिपर नामक वृक्ष बहुतायत में पाए जाते हैं। यह 3,880 मी. की ऊँचाई पर भी पाया जाता है। बुरुंश सर्वत्र पाया जाता है, लेकिन पूर्वी हिमालय के आर्द क्षेत्रों में यह बहुतायत से उगता है। यहाँ यह पेड़ से होकर छोटी झाड़ी जैसे सभी आकारों में उगता है। इसी ऊँचाई पर पाए जाने वाले अन्य वृक्ष हैं : भोजपत्र और हनी सकल। कम ऊँचाई के छाया वाले क्षेत्रों में जहाँ आर्द्रता अधिक होती है, काई और शैवाल (लाइकेन) उगते हैं। हिमाद्रि (बृहतहिमालय) के ऊँचे भागों में अल्पाइन वनस्पति पाई जाती है। एवरेस्ट पर्वत और नंगा पर्वत पर हिमरेखा के ठीक नीचे अल्पाइन वनस्पति मिलती है। इस वनस्पति में झाड़ियाँ, बुरूंश, काई, शैक और वन्यफूल सम्मिलित हैं। वृहत् हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में रहने वाले लोग अल्पाइन वनस्पति क्षेत्र का उपयोग ग्रीष्म ऋतु में भेड़ों को चराने के लिए करते हैं।

प्रायद्वीपीय पर्वतीय वनस्पति : प्रायद्वीपीय क्षेत्र में पर्वतीय वनस्पति के तीन विशिष्ट क्षेत्र पश्चिमी घाट, विंध्याचल और नीलगिरी हैं। अयनमंडल में (उष्ण कटिबंध) होने तथा मात्र 1,500 मी. की ऊँचाई होने के कारण ऊँचे ढलानों पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनस्पति पाई जाती है। केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु में सहष्णाद्रि के कम ऊँचाई वाले ढलानों पर उपोष्ण कटिबंधीय वनस्पति मिलती है। नीलगिरि, अनैमलाई और पलनी पहाड़ियों पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनों को शोला कहते हैं। इस वन के तेल और औषधियों के लिए उपयोगी अन्य वृक्ष हैं : मैग्नोलिया,

लारेल, यूकेलिप्टस, सिनकोना और ठांठर (वाटल)। सतपुड़ा और मैकाल पर्वत श्रेणियों पर भी ऐसे वन पाए जाते हैं।

घासें : बारहमासी घासों की 60 प्रजातियाँ हैं। इनसे मिलकर ही हमारा पारितंत्र बना है, जो हमारे पशुधन के जीवन का आधार है। वास्तविक चरागाह और घास भूमियाँ लगभग 12.04 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में विस्तीर्ण हैं। चराई के लिए अन्य भूमि, वृक्ष-फसलों और उद्यानों, बंजर भूमि तथा परती भूमि के रूप में हैं। जिनका क्षेत्रफल क्रमशः 37 लाख हैक्टेयर, 15 लाख हैक्टेयर और 23.3 लाख हैक्टेयर है। वनों के अपकर्ष (डिग्रेडेशन) और विनाश के परिणामस्वरूप ही चरागाह और घासभूमियाँ विकसित हुई हैं। कालांतर में चरागाह सवाना में बदल जाते हैं। हिमालय की अधिक ऊँचाइयों वाले उप-अल्पाइन और अल्पाइन क्षेत्रों में वास्तविक चरागाह पाए जाते हैं। भारत में घास के तीन पृथक आवरण हैं। उष्ण कटिबंधीय : यह मैदानों में पाया जाता है। उपोष्ण कटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ मुख्य रूप से हिमालय की पर्वत में ही पाई जाती हैं।

वन-नीति और वनों का संरक्षण

मनुष्यों और पशुओं की बढ़ती हुई संख्या का प्राकृतिक वनस्पति पर दुष्प्रभाव पड़ा है। जो क्षेत्र कभी वनों से ढके थे, आज अर्द्ध-मरुस्थल बन गए हैं। राजस्थान में भी कभी वन थे। पारिस्थितिक संतुलन के लिए वन अनिवार्य हैं। मानव का अस्तित्व और विकास पारिस्थितिक संतुलन पर निर्भर है। संतुलित पारितंत्र और स्वस्थ पर्यावरण के लिए भारत के कम से कम एक तिहाई भाग पर वन होने चाहिए। दुर्भाग्य से हमारे देश के एक चौथाई भाग पर भी वन नहीं हैं। इसीलिए वन संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन के लिए एक नीति की आवश्यकता है।

भारत की पहली वन नीति सन् 1952 में लागू की गई थी। लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और जन-जातियों के विकास के लिए टिकाऊ वन प्रबंधन पर बल दिया गया था। जन-जातियों की आजीविका वनों के सहारे ही चलती है।

सन् 1988 में नई राष्ट्रीय वन नीति, वनों के क्षेत्रफल में हो रही कमी को रोकने के लिए बनाई गई थी। इस नीति के अनुसार देश के 33 प्रतिशत भू-भाग को वनों के अंतर्गत लाना था। संसार के कुल भू-भाग का 27 प्रतिशत तथा भारत का लगभग 19 प्रतिशत भू-भाग वनों से ढका है। वन नीति में आगे कहा गया है कि पर्यावरण की स्थिरता कायम रखने का प्रयत्न किया जाएगा तथा जहां पारितंत्र का संतुलन विगड़ गया है, वहाँ पुनः वनारोपण किया

सामाजिक वानिकी

- 1976 के राष्ट्रीय कृषि आयोग ने पहले-पहल 'सामाजिक वानिकी' शब्दावली का प्रयोग किया था। इसका अर्थ है : ग्रामीण जनसंख्या के लिए जलावन, छोटी इमारती लकड़ी और छोटे-छोटे वन-उत्पादों की आपूर्ति करना।
- अनेक राज्य सरकारों ने सामाजिक वानिकी के महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किए हैं। अधिकतर राज्यों में वन विभागों के अंतर्गत सामाजिक वानिकी के अलग से प्रकोष्ठ बनाए गए हैं।
- सामाजिक वानिकी के मुख्य रूप से तीन अंग हैं : कृषि वानिकी किसानों को अपनी भूमि पर वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित करना; वन-भूखंड (वुडलाट्स) वन विभागों द्वारा लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए, सड़कों के किनारे, नहर के तटों, तथा ऐसी अन्य सार्वजनिक भूमि पर वृक्षारोपण; सामुदायिक वन-भूखंड लोगों द्वारा स्वयं बराबरी की हिस्सेदारी के आधार पर भूमि पर वृक्षारोपण।
- सामाजिक वानिकी योजनाएँ असफल हो गईं, क्योंकि इसमें उन निर्धन महिलाओं को शामिल नहीं किया गया, जिन्हें इससे अधिकतर फायदा होना था। यह योजना पुरुषोन्मुख हो गई। यही नहीं, यह कार्यक्रम लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्यक्रम के स्थान पर किसानों का धनोपार्जन कार्यक्रम बन गया।
- सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के द्वारा उत्पादित लकड़ी ग्रामीण भारत के गरीबों को न मिलकर, नगरों और कारखानों में पहुँचने लगी है। इससे गाँवों में रोजगार के अवसर घटे हैं और अन्न-उत्पादन करने वाली भूमि पर पेड़ लग गए हैं। इससे अनिवासी भू-स्वामित्व को बढ़ावा मिला है।

जाएगा। आनुवांशिक संसाधनों की जैव विविधता को देश की प्राकृतिक विरासत कहा जाता है। इस विरासत का संरक्षण, वन नीति का अन्य उद्देश्य है। इस नीति में मृदा-अपरदन, मरुभूमि के विस्तार तथा सूखे पर नियंत्रण का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है। इस नीति में जलाशयों में गाद के जमाव को रोकने के लिए बाढ़ नियंत्रण का भी प्रावधान है। नीति के और भी उद्देश्य हैं जैसे : अपरदित और अनुत्पादक भूमि पर सामाजिक वानिकी और वनरोपण द्वारा वनावरण में अभिवृद्धि, वनों की उत्पादकता बढ़ाना, ग्रामीण और जन-जातीय जनसंख्या के लिए इमारती लकड़ी, जलावन, चारा और भोजन जुटाना। यही नहीं इस नीति में महिलाओं को शामिल करके, व्यापक जनान्दोलन द्वारा वर्तमान वनों पर दबाव कम करने के लिए भी बल दिया गया है।

विगत वर्षों में संसद और राज्य विधानसभाओं में पारित अनेक कानूनों ने वनों के नियमित उपयोग, पेड़ काटने पर पाबंदी, तथा वन-भूमि के अतिक्रमण को रोकने पर बल दिया है। सन् 1980 में सुरक्षित वन क्षेत्रों के लिए एक 'वन संरक्षण अधिनियम' पारित किया गया था। सन् 1986 के पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत केंद्र सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता में वृद्धि और प्रदूषण रोकने के लिए अधिकृत किया गया है। इन अधिनियमों से उत्पादक, सुरक्षित और सौंदर्यपूर्ण वनों की स्थापना में सहायता मिली है। यही नहीं, ये अधिनियम वनों की उत्तमता सुनिश्चित करने तथा औषधीय, औद्योगिक और स्थानीय उपयोग के लिए लकड़ी और वनोत्पादों की आपूर्ति बनाए रखने में भी सहायक हुए हैं।

भारत में वनावरण

राज्यों के रिकार्ड के अनुसार देश में कुलभूमि के 23.28 प्रतिशत भाग पर वन हैं। इसमें से 11.48 प्रतिशत भाग पर सघन वन और 7.76 प्रतिशत भाग पर खुले वन हैं। वन क्षेत्र और वास्तविक वनावरण में भी अंतर हैं। वनक्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसे वन के रूप में अधिसूचित और अभिलिखित किया गया है। इसके विपरीत वास्तविक वनक्षेत्र वह क्षेत्र है, जिस पर सचमुच वन हैं। पहला अनुमान राजस्व बोर्ड के दस्तावेजों के अभिलेखों पर आधारित है। दूसरे अनुमान का आधार वायुफोटो और उपग्रह-चित्र हैं। 1999 में कुल वनक्षेत्र 23.28 प्रतिशत था, जबकि वास्तविक वनावरण केवल 19.39 प्रतिशत ही था। वनावरण में से 54.53 प्रतिशत सुरक्षित वन है तथा 29.18 प्रतिशत पर संरक्षित वन हैं।

विभिन्न राज्यों में वनक्षेत्र का प्रतिशत और वनावरण अलग-अलग हैं। लक्षद्वीप में किसी भी प्रकार का वन नहीं है, जबकि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में वन क्षेत्र, कुल भूक्षेत्र का 86.93 प्रतिशत हैं। 10 प्रतिशत से कम वन क्षेत्र वाले राज्य देश के उत्तर-पश्चिम भाग में स्थित हैं। ये राज्य हैं : राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली। गुजरात, राजस्थान और हरियाणा अर्ध-मरुस्थली क्षेत्र हैं। पंजाब और हरियाणा की अधिकतर भूमि पर खेती होती हैं। यहाँ के अधिकतर वन खेती के लिए साफ कर लिए गए हैं। 10 से लेकर 20 प्रतिशत वनावरण वाले राज्य हैं : उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल। इन राज्यों की अधिकतर भूमि पर या तो खेती होती है या बस्तियाँ बसी हैं। तमिलनाडु को छोड़कर प्रायद्वीपीय भारत में वनावरण 30 से लेकर 40 प्रतिशत तक है। उत्तर पूर्वी भारत के राज्यों में कुल भूमि के 40 प्रतिशत से भी अधिक भाग में वन हैं। यहाँ पहाड़ी भूमि है तथा भारी वर्षा होती है, जो वनों की वृद्धि के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

वनक्षेत्र की भाँति वनावरण में भी बहुत अंतर है। जम्मू और कश्मीर में वास्तविक वनावरण एक प्रतिशत है, जबकि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की 92 प्रतिशत भूमि पर वास्तविक वनावरण है। परिशिष्ट 1 में दी गई सारणी से स्पष्ट है कि 9 ऐसे राज्य हैं जहाँ कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग से अधिक पर वनावरण है। एक तिहाई वनावरण पारितंत्र का संतुलन बनाए रखने के लिए मानक आवश्यकता है। चार राज्य ऐसे हैं जहाँ वन का प्रतिशत आदर्श स्थिति जैसा ही है। अन्य राज्यों में वनों की स्थिति असंतोषजनक या संकटपूर्ण है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि तीन नवीन राज्यों, उत्तरांचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ में प्रत्येक के कुल क्षेत्रफल के 40 प्रतिशत भाग पर वन हैं। इन राज्यों के पृथक आँकड़े न मिलने के कारण इन्हें इनके पूर्व राज्यों में ही सम्मिलित किया गया है।

वास्तविक वनावरण के प्रतिशत के आधार पर भारत के राज्यों को चार प्रदेशों में विभाजित किया गया है :

1. अधिक वनावरण वाले प्रदेश
2. मध्यम वनावरण वाले प्रदेश
3. कम वनावरण वाले प्रदेश
4. बहुत कम वनावरण वाले प्रदेश।

1. अधिक वनावरण वाले प्रदेश : इस प्रदेश में 40 प्रतिशत से अधिक वनावरण वाले राज्य सम्मिलित हैं। असम के अलावा सभी पूर्वी राज्य इस वर्ग में शामिल हैं। जलवायु की अनुकूल दशाएँ मुख्य रूप से वर्षा और तापमान अधिक वनावरण में होने का मुख्य कारण हैं। इस प्रदेश में भी वनावरण भिन्नताएँ पाई जाती हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और मिजोरम, नागालैंड तथा अरुणाचल प्रदेश के राज्यों में कुल भौगोलिक क्षेत्र के 80 प्रतिशत भाग पर वन पाए जाते हैं। मणिपुर, मेघालय त्रिपुरा, सिक्किम और दादर और नागर हवेली में वनों का प्रतिशत 40 और 80 के बीच है।

2. मध्यम वनावरण वाले प्रदेश : इसमें मध्य प्रदेश, उड़ीसा, गोवा, केरल, असम और हिमाचल प्रदेश सम्मिलित हैं। गोवा में वास्तविक वन क्षेत्र 33.79 प्रतिशत है, जो कि इस प्रदेश में सबसे अधिक है। इसके बाद असम और उड़ीसा का स्थान है। अन्य राज्यों में कुल क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर वन हैं।

3. कम वनावरण वाले प्रदेश : यह प्रदेश लगातार नहीं है। इसमें दो उप-प्रदेश हैं : एक प्रायद्वीप भारत में स्थित है। इसमें महाराष्ट्र, कर्नाटक, आँध्र प्रदेश और तमिलनाडु शामिल हैं। दूसरा उप-प्रदेश उत्तरी भारत में है। इसमें उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य शामिल हैं।

4. बहुत कम वनावरण वाले प्रदेश : भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग को इस वर्ग में रखा जाता है। इस वर्ग में शामिल राज्य हैं : राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और गुजरात। इसमें चंडीगढ़ और दिल्ली दो केंद्र शासित प्रदेश भी हैं। इनके अलावा पश्चिम बंगाल का राज्य भी इसी वर्ग में है। भौतिक और मानवीय कारणों से इस प्रदेश में बहुत कम वन हैं।

वन्य जीवन

भारत में विविध प्रकार की पारिस्थितिक और भौगोलिक दशाएँ पाई जाती हैं। इसीलिए यहाँ विविध प्रकार के पेड़-पौधे और जीव-जंतु पाए जाते हैं। संसार में पौधों की 2,50,000 ज्ञात प्रजातियाँ में से 15,000 प्रजातियाँ भारत में मिलती हैं। इसी प्रकार संसार के जीव-जंतुओं की कुल 15 लाख प्रजातियों में से 75,000 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। अफ्रीकी, यूरोपीय और द. पू. एशियाई जैव तंत्रों के संगम पर स्थित होने के कारण भारत में इनमें से प्रत्येक जैव तंत्र के अद्भुत और रोचक जीव-जंतु तथा पेड़-पौधे पाए जाते हैं। इनके अलावा अनेक प्रकार के देशी वनस्पति जात और प्राणिजात भी पाए जाते हैं। लकड़बग्घा और चिंकारा अफ्रीकी मूल के हैं। भेड़िया, जंगली बकरी और हंगल यूरोपीय मूल के हैं। हूलक गिबन तथा हाथी,

भारत के विचित्र प्राणी

गांगेय सूंस (डाल्फिन) : यह गंगा नदी में रहता है। यह जन्मांध होता है तथा पूरा जीवन अंधा रहकर ही गुजारता है।
मुश्क बिलाव (सिवेट) : यह एक बिल्ली जैसा प्राणी है और एकाकी रहता है। शिकार के लिए रात को निकलता है। छोटे पक्षी, स्तनपायी और सरीसृप इसका भोजन है। दिन के समय यह छिपा रहता है।

भारतीय साल या वज्रशल्क (पैंगोलिन) : इसका शरीर शल्की होता है। परभक्षियों से अपनी रक्षा के लिए यह अपने शरीर को गेंद की तरह बना कर लुढ़कता रहता है तथा अपने तीखे शल्कों को खड़ा कर लेता है।

भारतीय बड़ी धनचिड़ी या धनेश (हार्नबिल) : यह एक बड़ा पक्षी है। इसका घोंसला बनाने का तरीका अनूठा है। इसकी मादा अपने आपको किसी पेड़ की खोखर में बंद कर लेती है। अंडे सेने की पूरी अवधि में नर पूरी कर्त्तव्यनिष्ठा से मादा के लिए भोजन जुटाता है।

भारतीय बड़ी गिलहरी : यह एक बड़ी रात्रिचर, कृन्तक है, जो पेड़ के ऊपरी भाग में पत्तों से बनी छतरी में रहती है। इसके शरीर के मुख्य भाग और बाहरी अंगों के बीच खाल जैसी पत्ती होती है। यह पैराशूट की तरह फैल और सिकुड़ सकती है। इसी की मदद से यह बड़ा स्तनपायी जीव एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर फिसलता रहता है।

मूषक मृग : इस मृग की ऊँचाई 30 से.मी. होती है । परभक्षियों से बचने के लिए यह छोटी झाड़ियों और वनस्पति में छिप जाता है।

उड़न-लोमड़ी : सारे भारत में पाए जाने वाली यह संसार की सबसे बड़ी चमगादड़ है। इसके पंखों का विस्तार 1.5 मी. का होता है। यह 220 कि.मी. तक उड़ान भर सकती है।

दक्षिण-पूर्व एशियाई प्राणिजात का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत के देशी प्राणिजात में रीछ, कृष्णसार (काला मृग) तथा चौसिंगा प्रमुख हैं।

भारत में पक्षियों की 1,200 प्रजातियाँ और 900 उप-प्रजातियाँ पाई जाती हैं। लैटिन अमेरीका को छोड़कर भारत के पक्षियों की विविधता सारे संसार में बेजोड़ है। भारत के सुविख्यात पक्षियों में बहुरंगी राष्ट्रीय पक्षी मोर उल्लेखनीय है। पाँच फुट की ऊँचाई वाला भव्य सारस तथा संसार का दूसरा सबसे भारी पक्षी हुकना (सोहनचिड़िया) महत्त्वपूर्ण पक्षी हैं। 5 लाख हंसावर पक्षी कच्छ के रण में घोंसले बनाकर अंडे देते हैं। संसार प्रसिद्ध केवलादेव (भरतपुर) के राष्ट्रीय उद्यान में ढाई लाख पक्षियों का घर है। ये पक्षी जहाँ रहते हैं, वहाँ के पारितंत्र में ये अहम् भूमिका निभाते हैं।

वन्य जीवों का संरक्षण

भारतीय इतिहास में वन्य जीवों की सुरक्षा एक दीर्घकालिक परंपरा रही है। ईसा से 6000 वर्ष पूर्व आखेट-संग्राहक समाज में प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मानव समाज की प्रारंभिक अवस्थाओं में लोग कुछ जीवों को विनाश से बचाने का प्रयास करते रहे हैं। हिन्दू महाकाव्यों, बौद्ध जातकों, पंचतंत्र और जैन धर्मशास्त्रों सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में छोटे-छोटे जीवों के प्रति हिंसा के लिए दंड का प्रावधान था। यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि भारत की प्राचीन संस्कृति में वन्य जीवों को कितना सम्मान दिया जाता था। आज भी कुछ समुदाय वन्य जीवों के संरक्षण के लिए पूरी तरह समर्पित हैं। राजस्थान के बिश्नोई पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के संरक्षण के लिए 19 सिद्धांतों का पालन करते हैं। महाराष्ट्र का मोरे समुदाय मोरों (मयूरों) और चूहों की सुरक्षा में अब भी विश्वास करता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुछ पक्षियों की हत्या पर महाराज अशोक द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का वर्णन मिलता है।

क्रीड़ा प्रेमियों और प्रकृति वैज्ञानिकों के प्रयासों से आधुनिक प्रकृति संरक्षण आंदोलन का प्रारंभ हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके बाद जब शिकार योग्य जीवों की संख्या घटने लगी, तो अनेक संगठन वन्य जीवों के लंबी अवधि के संरक्षण में दिलचस्पी लेने लगे। उनके प्रयास वन्य जीव सरंक्षण बोर्ड और अमयारण्यों तथा राष्ट्रीय उद्यानों के जाल के रूप में सामने हैं। विश्व वन्य जीव निधि की एक शाखा की स्थापना भारत में हुई है। भारतीय वन्य-जीव बोर्ड की सिफारिशों के आधार पर 1972 में भारत सरकार ने वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम पारित किया था। जंगली बाघों की संख्या में तेजी से कमी आने से चिंतित होकर देश में सन् 1973 में बाघ विकास कार्यक्रम परियोजना शुरू की गई थी। संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन के सहयोग से 1975 में मगर प्रजनन और प्रबंधन परियोजना प्रारंभ की गई।

राष्ट्रीय उद्यान, एक या अनेक पारितंत्रों वाला बृहत् क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र मानव के शोषण और अधिग्रहण के द्वारा परिवर्तित नहीं हुआ है। विशिष्ट वैज्ञानिक शिक्षा और मनोरंजन के लिए इसके पेड़-पौधों और जीव जंतुओं की प्रजातियों, भू-आकृतिक स्थलों और आवासों को संरक्षित किया गया है। राष्ट्रीय उद्यान के समान, वन्यजीव अभ्यारण्य भी वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए स्थापित किए गए हैं।

राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों में भ्रमण के समय कुछ करणीय और अकरणीय व्यवहार

- जहाँ तक संभव हो चुप रहें। ट्रांजिस्टर, संगीत और ऊँची आवाज में बातचीत का परित्याग कीजिए।
- भूदृश्यों के अनुरूप, खाकी, किशमिशी या जैतून-हरित रंग के कपड़े पहनिए।
- वायु, मृदा, और जल प्रदूषण मत फैलाइए। वनस्पतिजात और प्राणिजात को हानि मत पहुँचाइए।
- सदैव बड़े जंतुओं और बड़े पक्षियों को देखने की ही आशा मत कीजिए। छोटे जंतु और पक्षी भी रोचक और आकर्षक होते हैं ।
- सदैव एक अच्छे और अनुभवी गाइड की सेवाएँ लीजिए । वही आपको अच्छी तरह से घुमा सकता है।
- अपना कैमरा अपने साथ अवश्य रखिए। एक दूरबीन भी साथ रखिए।

वन्य जीवों के विलोपन की आशंका

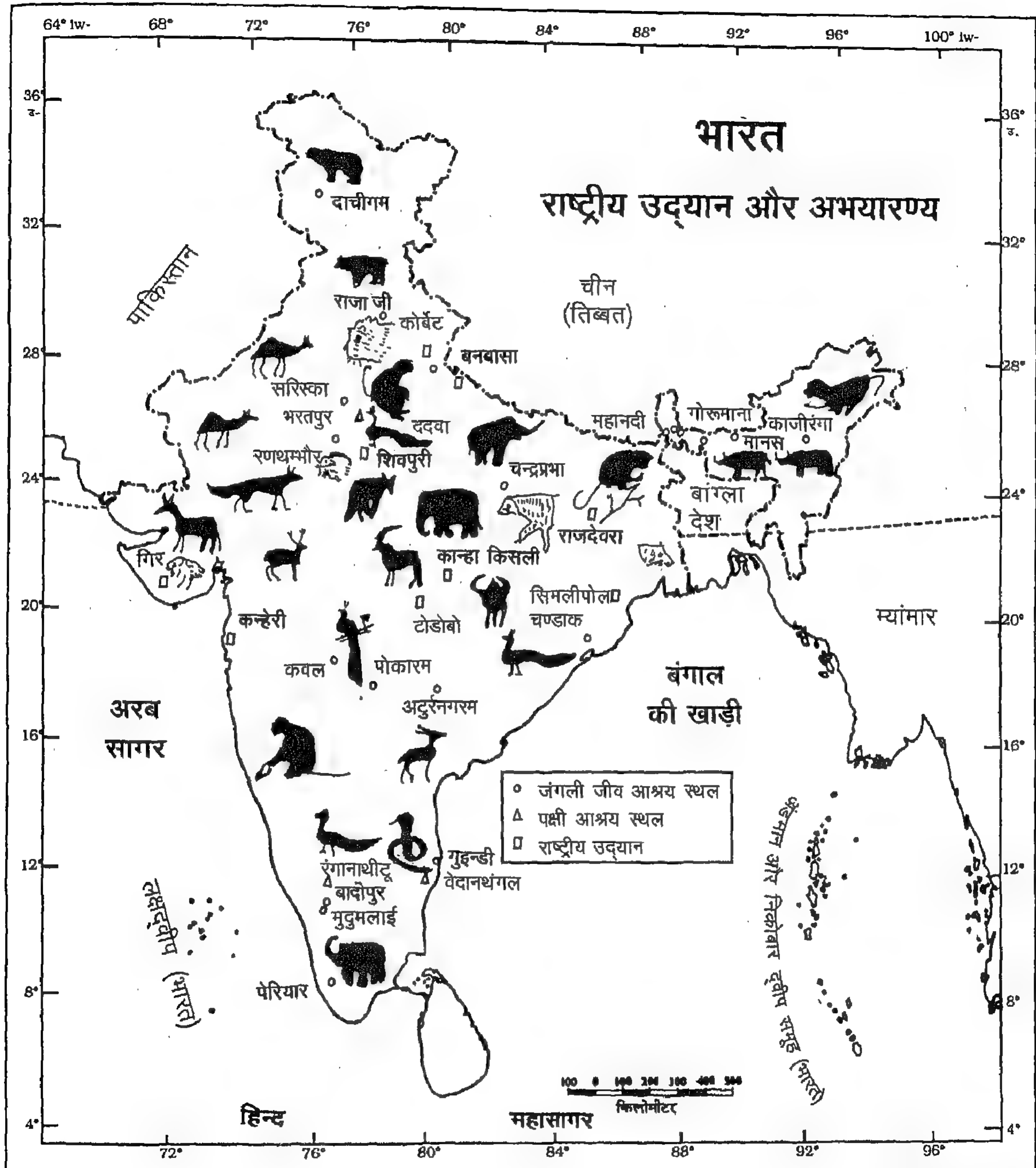
- भारत का भू-क्षेत्रफल संसार के कुल भू-क्षेत्र का केवल दो प्रतिशत ही है, किंतु यहाँ पृथ्वी के ज्ञात संपूर्ण जीवों में से लगभग 5 प्रतिशत का निवास है।
- भारत में पौधों की 15,000 प्रजातियाँ तथा जीवों की 75,000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भूमि और वनों में मानवीय क्रियाकलापों के दबाव से इनमें से बहुत सी प्रजातियों के विलोपन की आशंका पैदा हो गई है।
- भारत के 10 प्रतिशत से कुछ अधिक ही प्राणिजात के विलोपन का खतरा मंडरा रहा है। जब तक समाज को उनकी सभावित उपयोगिता का ज्ञान होगा, उससे पहले ही अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो सकती हैं।
- पौधों की 134 प्रजातियों के विलोपन की प्रबल आशंका है। इनमें से 99 प्रजातियों का निवास हिमालय और उत्तर-पूर्वी भारत में है।
- हाथी कभी सारे भारत में पाए जाते थे, लेकिन अब वे महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, और आंध्र प्रदेश से विलुप्त हो चुके हैं।
- उत्तर-पूर्वी भारत में आर्किड की 600 विभिन्न प्रजातियाँ मिलती हैं। जो संसार की कुल प्रजातियों का 3 प्रतिशत है। इनमें से अधिकतर शीघ्र ही लुप्त हो जाएँगी।

अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यान में बहुत सूक्ष्म अंतर है। अभ्यारण्य में अनुमति के बिना शिकार करना मना है। लेकिन चराई और गो-पशुओं का आना-जाना नियमित होता है। राष्ट्रीय उद्यानों में शिकार और चराई पूर्णतया वर्जित होते हैं। अभयारणयों में मानवीय क्रियाकलापों की अनुमति होती है, लेकिन राष्ट्रीय उद्यानों में मानवीय हस्तक्षेप पूर्णतया वर्जित होता है।

जीव आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, जैव विविधता और पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं तथा सूक्ष्म जीवों को समग्र रूप में सुरक्षित करने के लिए की जाती है। जीव आरक्षित क्षेत्र वैज्ञानिक अध्ययन के लिए मानव हस्तक्षेप विहीन प्राकृतिक क्षेत्र हैं।

आज भारत में 89 राष्ट्रीय उद्यान और 482 वन्य जीव अभयारण्य हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल क्रमशः 40,60,000 हैक्टेयर तथा 1,15,40,000 हैक्टेयर है। दोनों का कुल क्षेत्रफल 1,56,00,000 हैक्टेयर होता है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 4.74 प्रतिशत है। भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों का विवरण परिशिष्ट 2 में दिया गया है। सन् 1973 में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने कुछ देशों में मनुष्य और जैव मंडल पर एक कार्यक्रम शुरू किया था। इसी के परिणामस्वरूप इनके अतिरिक्त 12 जीव आरक्षित क्षेत्र भी बनाए गए हैं। इनका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 43 लाख हैक्टेयर है। इनका कुछ क्षेत्र सुरक्षित क्षेत्र में भी शामिल हो गया। कुछ आरक्षित क्षेत्र इस प्रकार हैं : नीलगिरि (तमिलनाडु), नोक्रेक (मेघालय), नामदफा (अरुणाचल प्रदेश), नंदा देवी (उत्तरांचल), ग्रेट निकोबार तथा मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु)।

राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों के वन विभागों के एक ही प्रशासनिक संगठन द्वारा वन्य जीवों और वनों के प्रबंध की परंपरा रही है। केंद्र सरकार इसमें सलाहकार की भूमिका निभाती रही है। अभी कुछ दिन पूर्व इस दिशा में कुछ और प्रगति हुई है। एक है वन्य जीव अधिनियम का पारित होना। इसके अंतर्गत प्रत्येक राज्य में एक मुख्य वन्य जीवरक्षक तथा वन्य जीवरक्षकों के पदों का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम से उन्हें कुछ कानूनी अधिकार मिले हैं। इस अधिनियम के अनुसार राज्यों के लिए वन्य जीव सलाहकार बोर्ड स्थापित करना अनिवार्य कर दिया गया है। दूसरे, वन्य जीव और पक्षियों की सुरक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में शामिल कर लिया गया है। इसके अंतर्गत केंद्र सरकार को राज्यों द्वारा वन्य जीवों के संरक्षण से संबंधित कुछ विधायी अधिकार मिल गए हैं। समवर्ती सूची में केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को कानून बनाने तथा उसका अनुपालन कराने का अधिकार



चित्र 5.2 भारत : राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य

है। इस प्रकार के कानूनों में केंद्र सरकार को महत्ता दी गई है। इसके बाद से स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। राष्ट्रीय उद्यान या अभयारण्य वाले सभी राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों में वन्य जीव खंड स्थापित किए गए हैं।

विगत कुछ वर्षों में सुरक्षित क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सन् 1990 में भारत ने 1977 विश्व दाय (हैरिटेज) समझौते का अनुसमर्थन कर दिया है। इस समझौते के अनुसार श्रेष्ठ सार्वभौम महत्त्व के चार प्राकृतिक स्थलों को चिन्हित किया गया है।

1. काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान : यह असम के नागाँव और गोलाघाट जिलों में मिकिर पहाड़ियों की तलहटी में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट के साथ विस्तृत है। काजीरंगा ब्रह्मपुत्र नदी के बाढ़ क्षेत्र के मैदानों में स्थित है। इस नदीय आवास में ऊँची व सघन घास वाली घास भूमियाँ हैं। इनके बीच-बीच में खुले वन है। यहाँ एक-दूसरे से जुड़ी नदियाँ तथा छोटी-छोटी अनेक झीले हैं। इसका तीन चौथाई या इससे भी अधिक क्षेत्र प्रतिवर्ष ब्रह्मपुत्र नदी के बाढ़ के पानी में डूब जाता है। लैंडसैट के 1986 के आंकड़ों के अनुसार इस के 41 प्रतिशत भाग में ऊँची घास, 11 प्रतिशत में छोटी घास, 29 प्रतिशत में खुले वन, 4 प्रतिशत में दल-दल, 8 प्रतिशत में नदियाँ और जलाशय तथा शेष 7 प्रतिशत में अन्य लक्षण हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान के मुख्य जन्तु एक सींग वाला गैंडा तथा हाथी हैं।

2. केवला देव राष्ट्रीय उद्यान : यह राष्ट्रीय उद्यान राजस्थान के भरतपुर में अलवणजल की दल-दल है, जो सिंधु गंगा के मैदान का भाग है। जुलाई से लेकर सितंबर के मानसूनी वर्षा के महीनों में यह क्षेत्र एक से लेकर 2 मीटर की गहराई तक पानी से भर जाता है। अक्तूबर से जनवरी तक यहाँ जलस्तर धीरे-धीरे घटने लगता है तथा फरवरी के महीने में भूमि सूखने लगती है। जून के महीनों में कुछ गड्ढों में ही पानी रह जाता है। यहाँ का पर्यावरण अंशतः मानव-निर्मित है। छोटे-छोटे बांधों से पूरे क्षेत्र को 10 भागों में विभाजित कर लिया गया है। जल स्तर के नियंत्रण के लिए प्रत्येक भाग में जल कपाटों की व्यवस्था है।

3. सुंदर बन जीव आरक्षित क्षेत्र : यह पश्चिम बंगाल में भारत की दो बड़ी नदियाँ गंगा और ब्रह्मपुत्र के दलदली डेल्टाई क्षेत्र में स्थित है। यह मैंग्रोव वनों, दल-दलों और वनाच्छादित द्वीपों के एक विशाल क्षेत्र में फैला है। इसका कुल क्षेत्रफल 1,300 वर्ग कि.मी. है। यहाँ लगभग 200 रॉयल बंगाल टाइगर (बाघ) निवास करते हैं। इस वन का कुछ भाग बांग्लादेश में है। ऐसा अनुमान है कि इस प्रदेश के बाघों की संयुक्त संख्या लगभग 400 हो सकती है। बाघों ने अपने आप को खारी और अलवणजल के अनुकूल बना लिया है। इस जीव आरक्षित क्षेत्र के बाघ अच्छे तैराक हैं।

4. नंदा देवी जीव आरक्षित क्षेत्र : यह जीव आरक्षित क्षेत्र ऋषि गंगा के जल-ग्रहण क्षेत्र में स्थित है। यह धौलीगंगा की पूर्वी सहायक है। धौलीगंगा जोशी मठ के पास अलकनंदा में मिल जाती है। यह हिमनदीय द्रोणी का विस्तृत क्षेत्र है। उत्तर-दक्षिण दिशा में फैली पहाड़ियों की समान्तर शृंखलाओं द्वारा यह क्षेत्र विभाजित है। यहाँ 6,400 मी. से ऊँची लगभग एक दर्जन चोटियाँ हैं। इनमें दूनागिरि (7,066 मी.), चंगबंग (6,864 मी.) तथा नंदा देवी पूर्व (7,434 मी.) उल्लेखनीय हैं। हिमालय की आंतरिक घाटी होने के कारण नंदा देवी द्रोणी में सामान्य शुष्क दशाएँ पाई जाती हैं। मानसून की अवधि को छोड़कर वार्षिक वर्षण का औसत कम रहता है। चारों ओर छाई धुंध और मानसून की ऋतु में कम ऊँचाई वाले बादलों के कारण मृदा आर्द्र बनी रहती है। वर्ष के 6 महीनों तक यह द्रोणी हिम से ढकी रहती है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   - (i) प्राकृतिक वनस्पति किसे कहते हैं ?
   - (ii) प्राकृतिक वनस्पति कहाँ पाई जा सकती है ?

(iii) हिमालयी वनस्पति को कितने प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है? इनके नाम बताइए।
(iv) प्रायद्वीपीय भारत में पर्वतीय वनस्पति कहाँ पाई जाती है?
(v) भारत में राष्ट्रीय वन नीति कब बनाई गई थी?
(vi) 1977 के विश्व दाय समझौते के द्वारा चिह्नित भारत के चार प्राकृतिक स्थलों के नाम बताइए।
(vii) उन चार राज्यों के नाम बताइए, जिनके दो-तिहाई भौगोलिक क्षेत्र वनों से ढके हैं।
(viii) भारत के उन 4 राज्यों के नाम बताइए, जिनके भौगोलिक क्षेत्र के 10 प्रतिशत से कम भाग पर वन हैं।
(ix) मध्य प्रदेश के दो राष्ट्रीय उद्यानों के नाम बताइए।

2. अंतर बताइए :
   (i) वनस्पति जात और वन
   (ii) राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य
   (iii) सदाहरित और पर्णपाती वन।
3. प्राचीन काल में जीवों को विनाश से बचाने के लिए अपनाए गए उपायों का वर्णन कीजिए।
4. भारत में सामाजिक वानिकी के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
5. राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्यों में विचरण करते हुए करणीय और अकरणीय व्यवहारों का उल्लेख कीजिए।
6. भारत में प्राकृतिक वनस्पति किस प्रकार वर्षा के वार्षिक वितरण पर आश्रित है। अपने उत्तर को उचित उदाहरणों से पुष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य

7. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:
   (i) काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान
   (ii) कान्हा राष्ट्रीय उद्यान
   (iii) मैंग्रोव वन का एक क्षेत्र
   (iv) अर्ध-मरुस्थली तथा मरुस्थली वनस्पति।
8. अपने राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की सूची बनाइए। यदि आपके राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में कोई राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य नहीं है, तो अपने पड़ौसी राज्य के ऐसे ही स्थानों की सूची बनाइए।

6
अध्याय

मिट्टियाँ

मिट्टी एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। यह पौधों, जीव-जंतुओं और मानव के जीवन को पोषण देती है। इसीलिए मृदा का प्रकार इसकी उर्वरता, अपक्षरण और संरक्षण हम सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है। गहरी और अंततोगत्वा उर्वर मृदा का आवरण संपन्न और समृद्धि कृषि अर्थ-व्यवस्था का आधार है। ऐसी मृदा ही विशाल जनसंख्या का भरण-पोषण करने में समर्थ होगी। इसके विपरीत कम गहरी और अनुर्वर मृदा कमजोर और निराशाजनक कृषि अर्थव्यवस्था को जन्म देगी। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का घनत्व विरल और जीवन स्तर नीचा रहेगा।

पृथ्वी के धरातल पर मृदा असंघटित पदार्थों की एक परत है, जो अपक्षय और विघटन के कारकों के माध्यम से चट्टानों और जैव पदार्थों से बनी है। मृदाओं के निर्माण में प्रकृति को हजारों वर्ष लगते हैं तथा पर्यावरण के अनेक कारक इसके निर्माण में सहयोग देते हैं। मिट्टियाँ नदियों द्वारा लाए गए अवसादों के निक्षेपण से विकसित होती हैं या चट्टानों के अपक्षय और बृहत क्षरण की प्रक्रियाओं द्वारा बनती हैं। मूल जनक सामग्री, उच्चावच, जलवायु, वनस्पति और अपवाह, मृदा निर्माण के कुछ आधारभूत कारक हैं। इनके अतिरिक्त मानव का भी इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

निर्मित मृदाओं के मामले में मूल पदार्थों की निश्चित भूमिका होती है। प्रायद्वीपीय मृदाओं में मूल चट्टानों का बहुत अधिक प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए लावा से बनी मृदाएँ काले रंग की होती हैं। इसी प्रकार बलुई मृदा बलुआ पत्थर से, और मृत्तिका वाली मृदा नीस से बनती हैं। लेकिन प्रवाहित जल के कार्य द्वारा निक्षेपित मृदा का किसी स्थान पर स्थित शैल पदार्थों से बहुत कम संबंध होता है। गंगा के मैदान की मृदाओं को नदियों ने लाकर जमा किया है। नदियाँ इन्हें हिमालयी और प्रायद्वीपीय चट्टानों से लाई हैं। उच्चावच के लक्षण मृदा निर्माण की प्रक्रिया को कई तरह से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए ढाल, जल के प्रवाह और बृहत क्षरण (mass wasting) को निर्धारित करता है। अतः मंद ढाल वाले क्षेत्रों में मृदा का अच्छा विकास होता है। यही नहीं, मृदा की उर्वरता मुख्यतः ढाल पर निर्भर करती है, क्योंकि ढाल की तीव्रता मृदा अपरदन को बढ़ावा देती है। जलवायु विशेषरूप से वर्षा, मृदा निर्माण की प्रक्रिया में प्रबल भूमिका निभाती है। यह अपक्षय की प्रक्रिया के प्रकार और प्रभाव, जल के रिसाव की मात्रा, ह्यूमस के अंश, तथा सूक्ष्म-जीवों के स्वरूप को नियंत्रित करती है।

वनस्पति की वृद्धि, प्रकार और सघनता मृदा को उर्वर बनाती है और इसमें ह्यूमस के अंश को बढ़ाती है। जहाँ उत्पादक पदार्थ प्रबलता से नीचे जाते हैं वहाँ मृदा ऊर्ध्वाधर परिच्छेदिका में तीन संस्तर स्पष्ट पहचाने जाते हैं। वे हैं: सबसे ऊपर का जलोढ़ (alluvial) 'क' संस्तर - अत्यधिक निक्षालित स्तर, अनूढ़ (elluvial) 'ख' संस्तर - अपेक्षाकृत कम निक्षालित तथा समपोढ़ (illuvial) 'ग' संस्तर जहाँ उपरी निक्षालित संस्तरों के पदार्थ जमा होते हैं। समपोढ़ स्तर के नीचे मूल चट्टान होती है, जो मृदा निर्माण की प्रक्रिया से अप्रभावित रहती है।

मृदाओं के गुण और उर्वरता

मृदा की उत्पादकता अनेक भौतिक गुणों पर निर्भर करती है। ये गुण हैं : कणों का आकार, आकृति और विन्यास, इसके छिद्रों का परिमाण और रूप तथा मृदा की प्रभावी गहराई। जल का प्रवाह और भंडारण, वायु का संचलन तथा पौधों को पोषक तत्त्व देने की मृदा की क्षमता, इसके भौतिक गुणों पर निर्भर करती है।

मृदा के प्रबंधन की दृष्टि से गठन, रंग, प्रभावी गहराई, संरचना, पारगम्यता, नमीधारण की क्षमता, धरातली अपवाह, ढाल और अपरदन, मृदा के सामान्य भौतिक गुण हैं। बालू, गाद, और मृत्तिका के सापेक्षिक अनुपात का अध्ययन मृदा के गठन के अंतर्गत किया जाता है। हल्की मृदा में बड़ी

मात्रा में बालू होता है। गाद की बड़ी मात्रा वाली मृदा को मध्यम रूप से गठित मृदा कहते हैं। मृत्तिका की बड़ी मात्रा वाली मृदा को भारी मृदा कहते हैं।

ऊपरी मृदा का रंग इसके अपवाह से निर्धारित होता है। सुअपवाहित मृदाएँ सामान्यतः किशमिशी रंग की होती हैं। इसके विपरीत कुअपवाहित मृदाएँ सलेटी होती हैं। काला रंग मृदा में प्रचुर जैव पदार्थ की उपस्थिति का संकेतक है। यदि मृदा 90 से.मी. से अधिक गहरी है, तो यह फसलों के लिए बहुत उपयोगी होती है। 50 से.मी. गहराई वाली मृदा को उथली (shallow) मृदा कहते हैं।

मृदा की संरचना से तात्पर्य है कि प्रत्येक कण मृदा में किस तरह से विद्यमान है। मृदा की मुख्य संरचनाएँ हैं : दानेदार (granular), खंडी (blocky) और चपटी (platy)। मृदा की पारगम्यता इसकी संरचना पर निर्भर करती है। बलुई मृदा में तीव्र पारगम्यता होती है, जबकि मृत्तिका और गाद की पारगम्यता धीमी होती है। स्थूल मृदा की जल-धारण क्षमता कम होती है, जबकि काली मृदा में यह क्षमता अधिक होती है। सुअपवाहित मृदा कुअपवाहित मृदा की तुलना में अधिक उत्पादक होती है। भूमि का 5 प्रतिशत का ढाल मंद कहा जाता है। 5 और 10 प्रतिशत के बीच का ढाल मध्यम तथा 10 प्रतिशत से अधिक का ढाल तीव्र कहलाता है। मंद ढालों की तुलना में तीव्र ढालों पर अपरदन क्रिया का प्रभाव अधिक तेजी से होता है। अपरदन एक व्यापक परिघटना है। यदि अपरदन धरातलीय मृदा का 25 प्रतिशत से कम है, तो इसे सामान्य माना जाता है, 25 से 75 प्रतिशत के बीच के अपरदन को मध्यम तथा 75 प्रतिशत से अधिक को प्रबल माना जाता है।

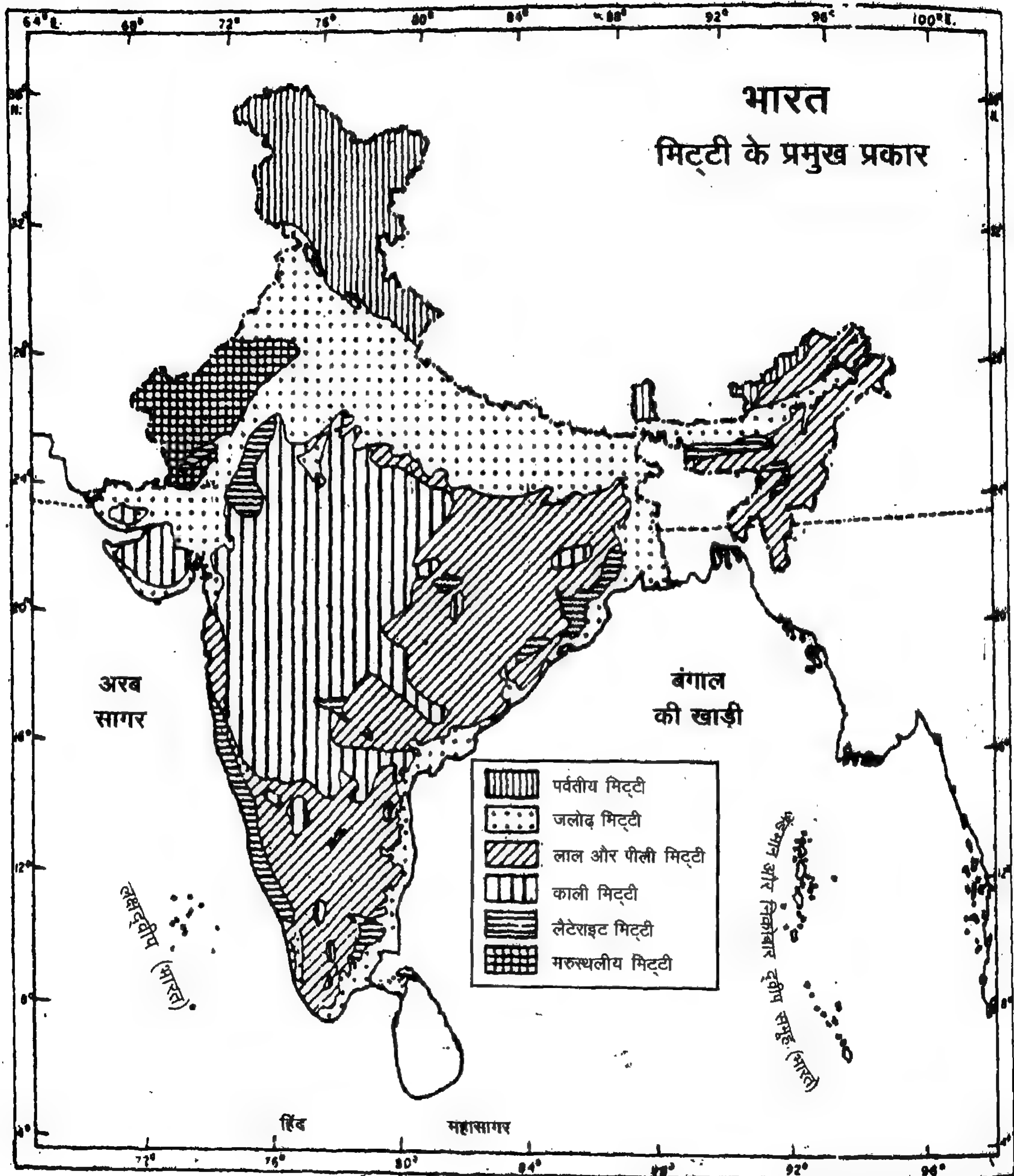
मृदा की उर्वरता पोषक तत्त्वों की विद्यमानता पर निर्भर करती है। पौधे को अनेक तत्त्वों को आवश्यकता होती है। ये तत्त्व हैं : कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, गंधक, मैग्नीशियम, चूना, लोहा, मैंगनीज, जस्ता, ताँबा, बोरान और मौलिब्डिनम। प्रथम तीन की आपूर्ति पौधे को वायु और जल से होती है, तथा अंतिम नौ की अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है। ये नौ सामान्यतः मृदा में ही विद्यमान होते हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम की मात्रा और इनका अनुपात प्रत्येक मृदा में भिन्न-भिन्न होता है। प्रचुर उत्पादन के लिए मृदा में काफी मात्रा में इन तत्त्वों को उर्वरकों के रूप में दी जाती है। इनके अलावा मृदा के जीव, मृदा की उर्वरता में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। मृदा के जीव ये हैं : जीवाणु, कवक, केंचुए, चींटियाँ तथा अन्य कीट और जीव-जंतु। अनुकूल दशाओं में ये बड़ी तेजी से बढ़ते हैं तथा मृदा के पोषक तत्त्वों में वृद्धि करते हैं।

भारत में उच्चावच के विविध और जटिल लक्षण, भू-आकृतियाँ, जलवायु विविध प्रकार की और वनस्पति के प्रकार पाए जाते हैं। जलवायु, वनस्पति, ढाल और आवरण-प्रस्तर की प्रादेशिक जटिलताएँ मृदा के प्रकार और इसकी प्रादेशिक विशेषताओं को प्रभावित करती हैं। गरम, शुष्क और आर्द्र जलवायु में भारत की मृदाओं का जटिल चट्टानों पर विकास हुआ है। यही नहीं, भारत की सभ्यता का इतिहास भी बड़ा लंबा है। भारतीय किसान के खेती के तरीके भी भारत की मृदाओं की वर्तमान दशा से संबधित हैं।

मृदाओं का वर्गीकरण

प्राचीन काल में मृदाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता था : उर्वर जो उपजाऊ थीं तथा ऊसर, जो अनुपजाऊ या बंजर थीं। उगाई गई फसलों के आधार पर उर्वर मृदाओं को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जाता था, जैसे जौ वाली मृदा, धानभूमि आदि। इसी प्रकार ऊसर मिट्टियों को लवणीय भूमि, मरुस्थली भूमि आदि में बाँटा जाता था। 16वीं शताब्दी में मृदाएँ अपनी अंतर्निहित विशेषताओं और बाह्य लक्षणों जैसे : गठन और मृदाओं के रंग, भूमि के ढाल तथा पानी की सुलभता के आधार पर वर्गीकृत की गई थीं। सबसे अधिक उपजाऊ मिट्टियों को 16 आने वाली मिट्टी कहा जाता था (उस समय एक रुपए में 16 आने या 64 पैसे होते थे। आज एक रुपए में सौ पैसे होते हैं)। जिन मिट्टियों की उत्पादकता 50 प्रतिशत होती थी, उन्हें अठन्नी वाली मिट्टी कहते थे। दुअन्नी वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ होती थी, जबकि बारह आने वाली मिट्टी बहुत उपजाऊ होती थी। गठन के आधार पर मृदाओं के मुख्य प्रकार थे : बलुई, चिकनी, बलुई-दोमट आदि तथा रंग पर आधारित मृदाओं के प्रकार थे : लाल, पीली, काली आदि। वर्षा के जल पर निर्भर मृदाओं को *बारानी*, कूप सिंचित को *चारी*, नहर-सिंचित को *नहरी* तथा नदी के रिसाव वाली को *सैलाबी* कहा जाता था।

स्वतंत्रता के बाद विभिन्न संस्थाओं के द्वारा मृदाओं के वैज्ञानिक सर्वेक्षण किए गए। 1956 में स्थापित भारत



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 6.1 : मिट्टी के प्रमुख प्रकार

सारणी 6.1 : भारतीय मृदाएँ और उनका कुल क्षेत्रफल (प्रतिशत में)

मृदा के प्रकार	कुल क्षेत्रफल (प्रतिशत में)
जलोढ़ मृदाएँ	22.16
काली मृदाएँ	29.69
लाल और पीली मृदाएँ	28.00
लैटराइट मृदाएँ	2.62
मरुस्थलीय मृदाएँ	6.13
क्षारीय मृदाएँ	1.29
पीटमय और जैव मृदाएँ	2.17
वन-मृदाएँ	7.94

के मृदा सर्वेक्षण विभाग ने कुछ चुने हुए क्षेत्रों जैसे दामोदर घाटी में मृदाओं के व्यापक अध्ययन किए। सन् 1957 में राष्ट्रीय एटलस संगठन ने भारत की मृदाओं का विस्तृत मानचित्र प्रकाशित किया। वर्गीकरण की अंतर्राष्ट्रीय क्रियाविधि पर आधारित देश के अधिकतर भागों के तालुका स्तर के मृदा मानचित्र अब उपलब्ध हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के मृदा सर्वेक्षण तथा भूमि उपयोग नियोजन विभाग ने भारतीय मृदाओं का विस्तृत अध्ययन किया है। स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर भारत की मृदाओं को कई तरीकों से वर्गीकृत किया गया है। उत्पत्ति, रंग, संघटन और स्थिति के आधार पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने भारतीय मृदाओं को निम्नलिखित आठ वर्गों में विभाजित किया है :

1. जलोढ़ मृदाएँ
2. काली मृदाएँ
3. लाल और पीली मृदाएँ
4. लैटराइट मृदाएँ
5. मरूस्थलीय मृदाएँ
6. क्षारीय मृदाएँ
7. पीटमय और जैव मृदाएँ
8. वन मृदाएँ

1. जलोढ़ मृदाएँ : जलोढ़ मृदाएँ, कुल मिलाकर सबसे अधिक उत्पादक हैं। ये पर्याप्त उर्वर हैं। इनमें अनेक फसलें उगाई जा सकती हैं, जिनसे अच्छी उपज भी मिलती है। ये नदियों और पवनों द्वारा लाई गई निक्षेपित मृदाएँ हैं। गठन में ये अधिकतर बलुई दोमट हैं तथा कुछ क्षेत्रों में ये गाद और मृत्तिका के साथ मिली हुई भी पाई जाती हैं। चौरस भूमि के धरातल पर मृदा परिच्छेदिका काफी विकसित है। जलोढ़ मृदाओं का रंग हल्के धूसर से लेकर राख जैसा होता है। इसकी आभाएँ, निक्षेपण की गहराई, पदार्थों के गठन और निर्माण में लगने वाली समयावधि पर निर्भर करती हैं।

जलोढ़ मृदाएँ गंगा के संपूर्ण मैदान में पाई जाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत में ये पूर्वी तट की नदियों के डेल्टाओं और कुछ नदियों की घाटियों में पाई जाती हैं। जलोढ़ मृदाएँ भारत के 22 प्रतिशत क्षेत्रफल पर पाई जाती हैं। गंगा के पश्चिमी मैदान की ये मृदाएँ अपेक्षाकृत अधिक दोमटी और मटियार हैं। मैदान के मध्य भाग में बालू की मात्रा कम होती जाती है। यहाँ निचले संस्तरों में चूनेदार कंकड़ों के निक्षेप मिलते हैं। इनके कारण अत्यधिक सिंचाई होने पर जल भराव और नमक की समस्या पैदा हो जाती है। गंगा के ऊपरी और मध्य मैदान में 'खादर' और 'बांगर' नाम की दो भिन्न मृदाएँ विकसित हो गई हैं। गंगा के मैदान के इस भाग में बहने वाली अनेक सरिताओं के प्राकृतिक तटबंधों के मध्य नई जलोढ़ खादर (मिट्टी) विकसित हो गई है। इसमें बालू की मात्रा अधिक है। यहाँ वार्षिक बाढ़ की अधिक संभावना रहती है। प्रति वर्ष बाढ़ों के द्वारा महीन गाद के जमा होने से इसकी उर्वरता बढ़ जाती है।

बांगर पुरानी जलोढ़ है। यह नदियों के दोनों ओर अपेक्षाकृत ऊँचे भागों तथा सामान्यतः बाढ़ से अप्रभावित क्षेत्रों पर पाई जाती है। परिणामस्वरूप ये शुष्क होती हैं। खादर और बांगर, दोनों ही प्रकार की मृदाओं में चूनेदार कंकड़ मिलते हैं। मैदानी गाँवों के घरों में इनका उपयोग पुताई (सफेदी) करने में होता रहा है। आजकल ये सीमेंट के कारखानों के लिए कच्चे-माल का अच्छा स्रोत बन गई हैं। जलोढ़ मृदाओं में गहन कृषि होती है। ये अनेक प्रकार की फसलों, विशेषरूप से अनाज और दालों की खेती के लिए उपयुक्त हैं। इनके अलावा कपास, गन्ना और जूट जैसी व्यापारिक फसलें भी उगाई जाती हैं।

2. काली मृदाएँ : इनका लोकप्रिय नाम कपास वाली काली मिट्टी भी है। अर्ध-मरुस्थलीय जलवायु की दशाओं वाले दक्कन के पठार की बसाल्ट की चट्टानों पर विकसित ये विशिष्ट मृदाएँ हैं। ये मृदाएँ देश के कुल क्षेत्रफल के लगभग 30 प्रतिशत भाग पर पाई जाती हैं। इन्हें 'रेगड़' भी कहते हैं। इनका निर्माण चट्टानों के दो वर्गों से हुआ है। ये वर्ग हैं : दक्कन ट्रैप तथा लौहमय नीस और शिस्ट चट्टानें। तमिलनाडु की काली मृदाएँ अधिकतर लौहमय चट्टानों से बनी हैं। मृदा का रंग गाढ़े काले और सलेटी रंग के बीच की विभिन्न आभाओं का होता है। मृदा में काले रंग के मृत्तिका खनिज होते हैं। गीले होने पर ये फूल जाते हैं तथा सूखने पर सिकुड़ जाते हैं। इस प्रकार शुष्क ऋतु में मृदा में चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इनमें मृदा के कण इकट्ठे हो सकते हैं। इस समय लगता है कि वहाँ एक प्रकार की 'स्वतः जुताई' हो गई है।

नमी के धीमे अवशोषण और धीमे ह्रास की इस विशेषता के कारण काली मृदा में एक लंबी अवधि तक नमी बनी रहती है। इस विशेषता के कारण फसलों को, विशेषरूप से वर्षाधीन फसलों को शुष्क ऋतु में भी नमी मिलती रहती है और वे फलती-फूलती रहती हैं। काली मृदाओं में लोहे, चूने और अल्यूमिनियम के तत्त्व काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इन तत्त्वों से युक्त तथा नमी धारण करने की उच्च क्षमता के कारण ये बहुत उपजाऊ हैं और इनमें फसलों की बहुत अच्छी वृद्धि होती है, लेकिन इनमें जैव पदार्थों की कमी होती है। काली मृदाओं में अधिकतर कपास की खेती होती है। इसीलिए इनका नाम कपास वाली काली मिट्टी पड़ गया है। दक्कन का पठार और कोयम्बतूर उच्च भूमि कपास की खेती के लिए विख्यात हैं। काली मृदाएँ, महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात और तमिलनाडु में सुविकसित है। नर्मदा और तापी नदियों के निचले भागों में, गोदावरी और कृष्णा के ऊपरी भागों में तथा दक्कन के पठार के उत्तरी भाग में काली मृदाएँ काफी गहरी हैं।

3. लाल और पीली मृदाएँ : ये मृदाएँ अपेक्षाकृत बलुई और लाल-पीले रंग की हैं। लोहे के ऑक्साइड के मिले होने के कारण ही इनका रंग लाल होता है, लेकिन जल-योजित रूप में ये पीली दिखाई पड़ती हैं। प्रायः इनकी ऊपरी सतह लाल और निचला संस्तर पीला होता है। इनका गठन बलुई से लेकर मटियार तक होता है, लेकिन प्रायः दोमट गठन पाया जाता है। इनका निर्माण पुरानी रवेदार और कायांतरित चट्टानों पर अपक्षय की प्रक्रियाओं के द्वारा हुआ है। लाल और काली मृदाएँ प्रायः साथ-साथ पाई जाती हैं। लाल मृदाएँ प्रायः उच्च भूमियों पर, जबकि काली मृदाएँ निम्न भूमियों पर पाई जाती हैं। महीन कणों वाली लाल और पीली मृदाएँ सामान्यतः उपजाऊ होती हैं। इसके विपरीत मोटे कणों की उच्च भूमियों की मृदाएँ अनुपजाऊ होती हैं। इनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस और ह्यूमस की कमी होती है। ये अधिकतर प्रायद्वीपीय भारत में पाई जाती हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा की अधिकतर भूमि पर लाल बलुई मृदाएँ मिलती हैं। पश्चिम घाट के गिरिपद क्षेत्र की एक लंबी पट्टी में लाल दोमटी मृदाएँ पाई जाती हैं। उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के भागों में तथा गंगा के मध्य मैदान के दक्षिण भाग में पीली और लाल मृदाएँ पाई जाती हैं। गेहूँ, ज्वार, बाजरा, कपास, आलू तथा अन्य मोटे अनाज इन मृदाओं में खूब पैदा किए जाते हैं। इनके अलावा मिर्च और मूंगफली की खेती इन मृदाओं में की जाती है।

4. लैटराइट मृदाएँ : लैटराइट मृदाएँ विशेषरूप से उन उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाई जाती है, जहाँ ऋतुनिष्ठ भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के कारण मृदाओं में निक्षालन क्रिया तेज हो जाती है। वर्षा के जल के साथ चूना और सिलिका तो निक्षालित हो जाते हैं, तथा लोहे के ऑक्साइड और अल्यूमिनियम के यौगिक से भरपूर मृदाएँ शेष रह जाते हैं। उच्च तापमानों में आसानी से पनपने वाले जीवाणुओं के द्वारा मृदा का ह्यूमस तत्त्व तेजी से नष्ट कर दिया

जाता है। इन मृदाओं में नाइट्रोजन, फास्फेट और चूने की कमी होती है तथा लौह-ऑक्साइड और पोटाश की अधिकता होती है। परिणामस्वरूप लैटराइट मृदाएँ फसलों की कृषि के लिए पर्याप्त उपजाऊ नहीं हैं। फसलें पैदा करने के लिए इन मृदाओं में खाद और उर्वरकों की भारी मात्रा देनी पड़ती है। मकान बनाने के लिए लैटराइट मृदाओं को प्रायः ईंटों के रूप में काट लिया है। इन मृदाओं का विकास मुख्य रूप से प्रायद्वीपीय पठार के ऊँचे क्षेत्रों में हुआ है। लैटराइट मृदाएँ सामान्यतः कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और असम के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इन मृदाओं में कपास, चावल, गेहूँ, दाल, चाय और कहवे की खेती होती है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल में काजू जैसे वृक्षों वाली फसलों की खेती के लिए ये मृदाएँ अधिक उपयुक्त हैं।

5. मरूस्थलीय मृदाएँ : मरूस्थली मृदाओं का रंग लाल से लेकर किशमिशी तक होता है। ये सामान्यतः बलुई और क्षारीय होती हैं। कुछ क्षेत्रों की मृदाओं में नमक की मात्रा इतनी अधिक होती है, कि इनके पानी को वाष्पीकृत करके नमक प्राप्त किया जाता है। शुष्क जलवायु, उच्च तापमान और तीव्रगति से वाष्पीकरण के कारण इन मृदाओं में नमी और ह्यूमस कम होते हैं। नाइट्रोजन अपर्याप्त और फास्फेट सामान्य मात्रा में होती हैं। और नीचे की ओर चूने की मात्रा के बढ़ते जाने के कारण निचले संस्तरों मे बहुत कंकड़ पाए जाते हैं। मृदा की तली में कंकड़ों की परत के बनने के कारण पानी का रिसाव सीमित हो जाता है। इसीलिए सिंचाई किए जाने पर इन मृदाओं में पौधों की टिकाऊ वृद्धि के लिए नमी सदा सुलभ रहती है। विशिष्ट मरूस्थलीय स्थलाकृति वाले पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थली मृदाएँ विशेषरूप से विकसित हुई हैं। ये मृदाएँ अनुर्वर हैं तथा इनमें ह्यूमस और जैव पदार्थ कम मात्रा में पाए जाते हैं। इन मृदाओं वाले क्षेत्र में सामान्यतः मोटे अनाज, जैसे ज्वार-बाजरा, रागी आदि तथा तिलहन पैदा किए जाते हैं।

6. क्षारीय मृदाएँ : ऐसी मृदाओं को ऊसर मृदाएँ भी कहते हैं। क्षारीय मृदाओं में सोडियम, पोटैशियम और मैग्नीशियम का अनुपात अधिक होता है। अतः ये अनुपजाऊ होती हैं। यहाँ तक कि इनमें किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती। मुख्य रूप से शुष्क जलवायु और खराब अपवाह के कारण इनमें लवणों की मात्रा बढ़ती जाती है। ये शुष्क और अर्ध-शुष्क तथा जल भराव वाले क्षेत्रों और दल-दलों में पाई जाती है। इनकी संरचना बलुई से लेकर दुमटी तक होती है। इनमें नाइट्रोजन और चूने की कमी होती है। पश्चिमी-गुजरात, पूर्वी तट के डेल्टाओं और पश्चिम-बंगाल के सुंदरबन क्षेत्रों में क्षारीय मृदाओं का अधिकतर प्रसार है। कच्छ के रन में नमक के कण दक्षिण-पश्चिम मानसून के साथ आते हैं और एक पपड़ी के रूप में जमा हो जाते हैं। डेल्टा प्रदेश में समुद्री जल के भर जाने से क्षारीय मृदाओं के विकास को बढ़ावा मिलता है। अत्यधिक सिंचाई वाले गहन कृषि के क्षेत्रों में विशेषरूप से हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में, उपजाऊ जलोढ़ मृदाएँ भी अनुपजाऊ होती जा रही हैं। शुष्क जलवायु की दशाओं वाले क्षेत्रों में केशिका-क्रिया को बढ़ावा मिलता है। इसके परिणामस्वरूप मृदा की सबसे ऊपरी परत पर नमक की परत जम जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में, विशेषरूप से पंजाब और हरियाणा में, मृदा की क्षारीयता की समस्या से निबटने के लिए जिप्सम डालने की सलाह दी जाती है।

7. पीटमय तथा जैव मृदाएँ : वनस्पति की अच्छी बढ़वार वाले तथा भारी वर्षा और उच्च आर्द्रता से युक्त क्षेत्रों में ये मृदाएँ पाई जाती हैं। वनस्पति की तीव्र वृद्धि के कारण इन क्षेत्रों में जैव पदार्थ भारी मात्रा में इकट्ठे हो जाते हैं। इससे मृदाओं में पर्याप्त मात्रा में जैव तत्त्व और ह्यूमस होता है। इसीलिए ये पीटमय और जैव मृदाएँ हैं। इन मृदाओं में जैव पदार्थों की मात्रा 40 से 50 प्रतिशत तक हो सकती है। ये मृदाएँ सामान्यतः भारी और काले रंग की होती हैं। अनेक स्थानों पर ये क्षारीय भी हैं। बिहार के उत्तरी भाग, उत्तरांचल के दक्षिणी भाग, बंगाल के तटीय क्षेत्रों, उड़ीसा और तमिलनाडु में ये मृदाएँ अधिकतर पाई जाती हैं। ये मृदाएँ हल्की और कम उर्वरता का उपभोग करने वाली फसलों की खेती के लिए उपयुक्त हैं।

8. वन मृदाएँ : नाम के अनुरूप ये मृदाएँ पर्याप्त वर्षा वाले वन-क्षेत्रों में ही बनती हैं। इन मृदाओं का निर्माण पर्वतीय पर्यावरण में होता है। इस पर्यावरण में परिवर्तन के अनुसार इन मृदाओं का गठन और संरचना बदलती रहती है। घाटियों में ये दुमटी और गादयुक्त होती है तथा ऊपरी ढालों पर ये मोटे कणों वाली होती है। हिमालय के हिम से

ढ़के क्षेत्रों में इन मृदाओं में अनाच्छादन होता रहता है तथा ये अम्लीय और कम ह्यूमस वाली होती हैं। निचली घाटियों में पाई जाने वाली मृदाएँ उपजाऊ होती हैं और इनमें चावल तथा गेहूँ की खेती की जाती है।

मृदा अपरदन

जब तक मृदा निर्माण की प्रक्रियाओं और मृदा अपरदन में संतुलन बना रहता है, तब तक कोई समस्या नहीं पैदा होती। इस संतुलन के बिगड़ते ही, मृदा अपरदन एक खतरा बन जाता है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, चरागाहों में बेफिक्री से अति चराई, अवैज्ञानिक अपवाह प्रक्रियाएँ तथा भूमि का अनुचित उपयोग इस संतुलन को बिगाड़ने के महत्त्वपूर्ण कारणों में से कुछ हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, दिल्ली, राजस्थान और देश के अन्य अनेक भागों में मृदा अपरदन एक समस्या रही है। पहाड़ी ढालों पर गो-पशुओं द्वारा अति चराई से मृदा अपरदन की गति तेज हो जाती है। मेघालय ओर नीलगिरि की पहड़ियों पर आलू की खेती और हिमालय और पश्चिमी घाट पर वनों के विनाश तथा देश के विभिन्न भागों में जन-जातीय लोगों द्वारा की जाने वाली झूम कृषि के कारण मृदाओं का उल्लेखनीय क्षरण हुआ है।

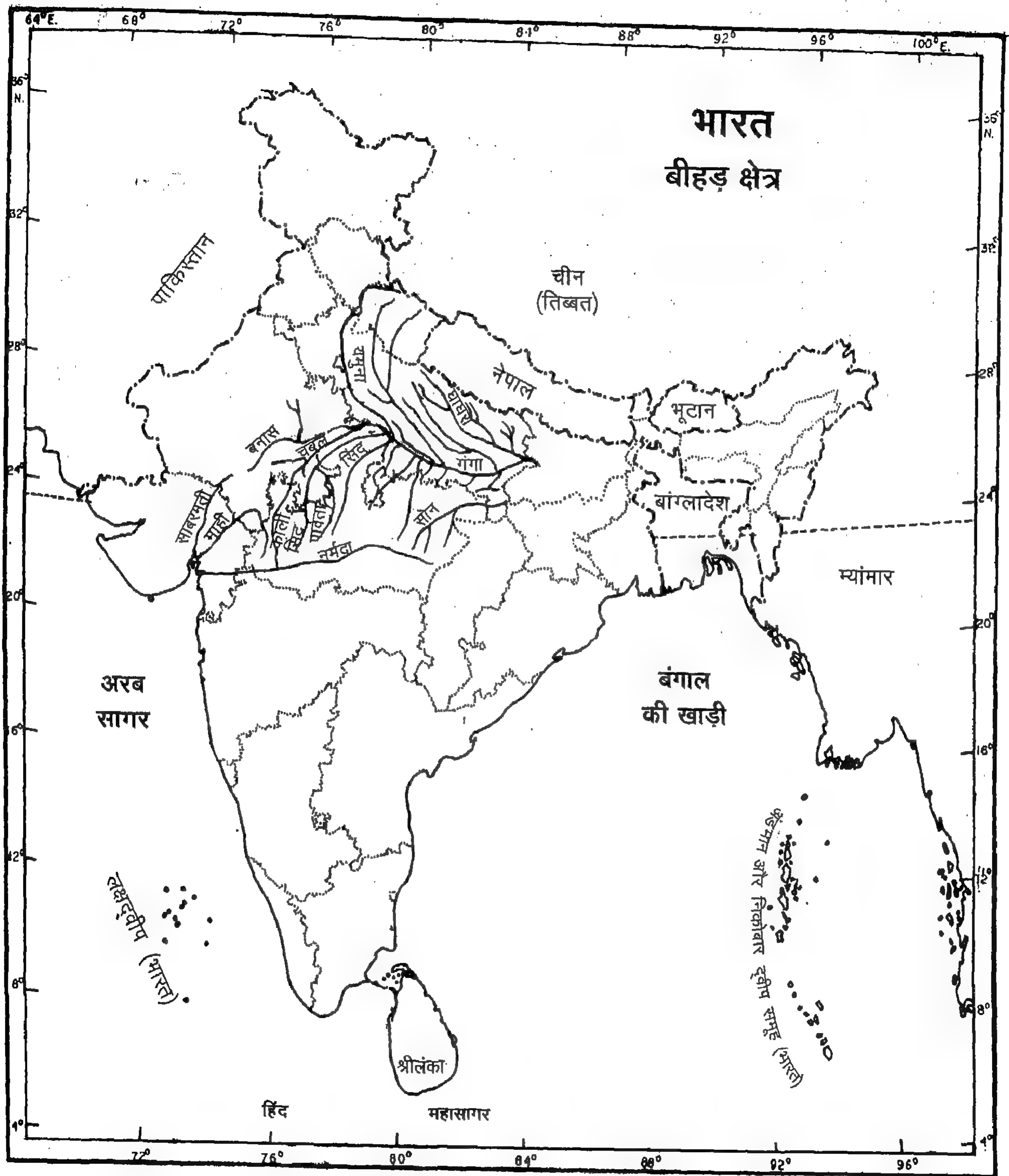
चंबल नदी की द्रोणी में बीहड़ (Ravines) बहुत विस्तृत हैं। मध्य प्रदेश के ग्वालियर, मोरैना और भिंड जिलों में तथा उत्तर प्रदेश के आगरा, इटावा और जालौन जिलों में बीहड़ 6 लाख हैक्टेयर भूमि में फैले हैं (चित्र 6.2)। तमिलनाडु के दक्षिणी व उत्तरी अर्काट, कन्याकुमारी, तिरूचिरापल्ली, चिंगलीपुत, सेलम और कोयंबतूर जिलों में भी बीहड़ खूब हैं। पश्चिमी बंगाल के पुरूलिया जिले की कंगसाबती नदी के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में अनेक अवनालिकाएँ (gullies) और बीहड़ हैं। देश की लगभग 8,000 हैक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष बीहड़ बन जाती है।

भारत की कृषि भूमि में से 80,000 हैक्टेयर भूमि अब तक बेकार हो गई है तथा इससे भी बड़ा क्षेत्र प्रतिवर्ष मृदा अपरदन के कारण कम उत्पादक हो जाता है। मृदा अपरदन भारतीय कृषि के लिए एक राष्ट्रीय संकट बन गया है। इसके दुष्प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ते हैं। नदी की घाटियों में अपरदित पदार्थों के जमा होने से उनकी जल-प्रवाह क्षमता घट जाती है, इससे प्रायः बाढ़ें आती हैं तथा कृषि-भूमि को क्षति पहुँचती है। उदाहरण के लिए तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली में कावेरी नदी का तल क्रमशः उपर उठ गया है। इसके परिणामस्वरूप सिंचाई के पुराने जल-कपाट और अपवाह धाराएँ अवरूद्ध हो गई हैं। बह्मपुत्र नदी के उथले होने से प्रतिवर्ष बाढ़ें आती हैं। तालाबों में गाद जमा होना, मृदा अपरदन का अन्य गंभीर परिणाम है। देश के विभिन्न भागों में अनेक तालाबों में प्रतिवर्ष गाद जमा हो जाती है।

भारत में मृदा अपरदन के दो सबसे अधिक सक्रिय कारक हैं : पवन और प्रवाहित जल। पवन द्वारा अपरदन : गुजरात, राजस्थान और हरियाणा के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में सामान्य रूप से होता है। भारी मृदाओं की तुलना में हल्की मृदाओं पर पवन-अपरदन का अधिक प्रभाव पड़ता है। पवन द्वारा उड़ाकर लाया गया बालू समीप की कृषि भूमि पर फैलकर जमा हो जाता है और उसकी

चंबल घाटी के बीहड़ों का विस्तार तथा बीसवीं शती में उजड़े गाँवों की संख्या

जिले	*बीहड़ (हैक्टेयर)*	*कुल भूमि में बीहड़ों का प्रतिशत*	*गाँव*	*उजड़े गाँव*
भिंड	1,19,000	26	956	57
मोरैना	1,92,000	16	1,429	172
ग्वालियर	1,08,000	20	855	90
जालौन	79,000	17	1,155	201
इटावा	93,000	21	1,533	83
आगरा	1,06,000	22	1,230	53



चित्र 6.2 भारत : बीहड़ क्षेत्र

उर्वरता को नष्ट कर देता है। जल-अपरदन अपेक्षाकृत अधिक गंभीर है। इससे भारत के विभिन्न भाग विस्तृत रूप से प्रभावित हैं। जल-अपरदन के मुख्यतः दो रूप हैं : परतदार अपरदन और अवनालिका अपरदन। समतल भूमि पर मूसलाधार वर्षा के बाद परतदार अपरदन होता है। इसमें मृदा के हटने का आसानी से पता ही नहीं चलता है। तीव्र ढालों पर सामान्यतः अवनालिका अपरदन होता है। वर्षा के द्वारा अवनालिकाएँ गहरी होती जाती हैं। ये कृषि भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देती है। इससे भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त हो जाती है।

मृदा के गुण ह्रास में अनेक कारकों का योगदान रहता है। उदाहरणार्थ, जब जंगल काट दिए जाते हैं, तब मृदा में ह्यूमस की आपूर्ति ठप्प हो जाती है। यही नहीं, मृदा की ऊपरी परत को हटाने में प्रवाहित जल की क्षमता बढ़ जाती है। यदि अपवाह तंत्र गड़बड़ा जाता है, तो जल भराव या मृदा की नमी का ह्रास होने लगता है। मृदा के अत्यधिक उपयोग से इसकी उर्वरता समाप्त हो जाती है। आर्द्र क्षेत्रों में प्रवाहित जल और शुष्क क्षेत्रों में पवन द्वारा मृदा के हटाए जाने को मृदा अपरदन कहते हैं। इसके विपरीत इसके जैव और खनिज तत्त्वों के हटाए जाने को मृदाक्षय कहते हैं। मृदा के दुरूपयोग से इसका अपक्षरण होता है।

मृदा अपरदन, क्षय और अपक्षरण में लिप्त कारक हैं : प्रवाहित जल, पवन, हिम, जीव-जंतु और मानव। मानव वनोन्मूलन अति चराई और कृषि के अवैज्ञानिक तरीकों से मृदा के पारितंत्र को अस्त-व्यस्त कर देता है। विरल वनस्पति वाले क्षेत्रों और तीव्र ढालों पर विशेषरूप से ऊबड़-खाबड़ भूमि पर तथा नदी भागों के साथ-साथ प्रायः बीहड़ दिखाई पड़ जाते हैं। कोसी नदी के द्वारा किया गया अपरदन कुख्यात हो गया है। राजस्थान के शुष्क प्रदेश पवन-अपरदन की चपेट में हैं। गहन कृषि और अतिचराई अपरदन और मरूस्थलीकरण की प्रक्रियाओं को तेज़ कर देते हैं।

वनोन्मूलन मृदा अपरदन के प्रमुख कारकों में से एक है। पौधों की जड़ें मृदा को बांधे रखकर अपरदन को रोकती है। पत्तियाँ और टहनियाँ गिरा कर वे मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि करते हैं। वास्तव में संपूर्ण भारत में वनों का विनाश हुआ है। लेकिन देश के पहाड़ी भागों, विशेषरूप से हिमाचल प्रदेश और पश्चिमी घाट पर मृदा अपरदन में इसका बड़ा हाथ है।

भारत के सिंचित क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का काफी बड़ा भाग अति सिंचाई के प्रभाव से क्षारीय होता जा रहा है। मृदा के निचले संस्तरों में जमा हुआ नमक धरातल के ऊपर आकर उर्वरता को नष्ट कर देता है। रासायनिक उर्वरक भी मृदा के लिए हानिकारक है। जब तक मृदा को पर्याप्त ह्यूमस नहीं मिलता, रसायन इसे कठोर बना देते हैं तथा अंततोगत्वा इसकी उर्वरता घट जाती है। हरित-क्रांति के पहले लाभ भोगी, नदी घाटी योजनाओं के कमान के क्षेत्रों में यह समस्या बहुत अधिक है। कुछ अनुमानों के अनुसार भारत की कुल भूमि का लगभग आधा भाग एक सीमा तक अपक्षरण से प्रभावित है। राजस्थान और उसके आस-पास के क्षेत्रों में पवन-अपरदन और परिणामी मरूस्थलीकरण का विस्तृत प्रभाव है। हिमालयी क्षेत्र, पश्चिमी घाट, असम की पहाड़ियाँ और छोटा नागपुर के पठार पर प्रवाहित जल के द्वारा हुआ अपरदन अत्यधिक व्यापक है।

मृदा के अपरदन के अनेक दुष्प्रभाव हैं। इनमें से कुछ हैं : उर्वर मृदा का हटाया जाना, अचानक विनाशकारी बाढ़ों का आना, नदी के तलों में गाद भर जाना, मृदा की नमी में कमी आना।

भारत में बीहड़ों का क्षेत्रफल (लाख हैक्टेयर में)

राज्य	क्षेत्रफल	राज्य	क्षेत्रफल
उत्तर प्रदेश	12.30	पंजाब	1.20
मध्य प्रदेश	6.83	बिहार	6.00
राजस्थान	4.52	तमिलनाडु	0.60
गुजरात	4.00	पश्चिम बंगाल	1.04
महाराष्ट्र	0.20		

मृदा संरक्षण

यदि मृदा अपरदन और मृदाक्षय मानव द्वारा किया जाता है, तो स्पष्टतः मानवों द्वारा ही इसे रोका भी जा सकता है। संतुलन बनाए रखने के प्रकृति के अपने नियम हैं। मनुष्य इन नियमों का उल्लंघन करता है और मृदा अपरदन तथा क्षय जैसी समस्याओं को जन्म देता है। संतुलन बिना बिगाड़े भी प्रकृति मानवों को अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। मृदा संरक्षण एक विधि है, जिसमें मिट्टी की उर्वरता बनाए रखी जाती है, मिट्टी के अपरदन और क्षय को रोका जाता है और मिट्टी की अपक्षरित दशाओं को सुधारा जाता है।

मृदा अपरदन वास्तव में मनुष्यकृत समस्या है। किसी भी तर्कसंगत समाधान में पहला काम ढालों की कृषि योग्य खुली भूमि पर खेती को रोकना है। 15 से 25 प्रतिशत ढाल वाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए नहीं होना चाहिएं। यदि ऐसी भूमि पर खेती करना जरूरी हो जाए, तो इस पर सावधानी से सीढ़ीदार खेत बना लेने चाहिए। भारत के विभिन्न भागों में, अति चराई और झूम कृषि ने भूमि के प्राकृतिक आवरण को दुष्प्रभावित किया है। इसी कारण विस्तृत क्षेत्र अपरदन की चपेट में आ गए हैं। ग्रामवासियों को इनके दुष्परिणामों से अवगत करवा कर इन्हें (अति चराई और झूम कृषि) नियमित और नियंत्रित करना चाहिए। समोच्च रेखा के अनुसार मेड़बंदी, समोच्च रेखीय सीढ़ी दार खेती बनाना, नियमित वानिकी, नियंत्रित चराई, वरणात्मक खरपतवार नाशन, आवरण फसलें उगाना, मिश्रित खेती तथा शस्यावर्तन, उपचार के कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनका उपयोग मृदा अपरदन को कम काने के लिए प्रायः किया जाता है।

अवनालिका अपरदन को रोकने तथा उनके बनने पर नियंत्रण के प्रयत्न किए जाने चाहिए। अंगुल्याकार अवनालिकाओं को सीढ़ीदार खेत बनाकर खत्म किया जा सकता है। अवनालिकाओं के शीर्ष की ओर के विकास को नियंत्रित करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस कार्य को अवनालिकाओं को बंद करके, सीढ़ीदार खेत बनाकर या आवरण वनस्पति का रोपण करके किया जा सकता है।

मरूस्थलीय और अर्ध-मरूस्थलीय क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि पर बालू के टीलों के प्रसार को वनों की रक्षक मेखला बनाकर रोकना चाहिए। कृषि के अयोग्य भूमि को चराई के लिए चरागाहों में बदल देना चाहिए। बालू के टीलों को स्थिर करने के उपाय भी अपनाए जाने चाहिए।

भारत सरकार द्वारा स्थापित केंद्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड ने देश के विभिन्न भागों में मृदा संरक्षण के लिए अनेक योजनाएँ बनाई हैं। ये योजनाएँ जलवायु की दशाओं, उच्चावच के लक्षणों तथा लोगों के सामाजिक व्यवहार पर आधारित हैं। ये योजनाएँ भी एक दूसरी से तालमेल बिना बनाए ही चलाई गई हैं। अतः मृदा संरक्षण का सर्वोत्तम उपाय भूमि उपयोग की समन्वित योजनाएँ ही हो सकती हैं। भूमि का उनकी क्षमता के अनुसार वर्गीकरण होना चाहिए, भूमि उपयोग के मानचित्र बनाए जाने चाहिए और भूमि का सर्वथा सही उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा संक्षरण का निर्णायक दायित्व उन लोगों पर है, जो उसका उपयोग करते हैं और उससे लाभ कमाते हैं। लेकिन किसानों को इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि वे अपने खेतों की सीमाएँ समोच्च रेखीय समतलन के अनुसार बना लें। देश के पहाड़ी क्षेत्रों में समोच्च रेखीय मेड़ बंदी तथा समोच्च रेखीय सीढ़ीदार खेत निर्माण के द्वारा खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की बहुत बड़ी संभावना है।

मृदा संरक्षण के कुछ महत्त्वपूर्ण और सुविज्ञात उपाय नीचे दिए गए हैं :

- वैज्ञानिक भूमि उपयोग अर्थात् भूमि का केवल उसी उद्देश्य के लिए उपयोग, जिसके लिए यह सबसे अधिक उपयुक्त है।
- वैज्ञानिक शस्यावर्तन।
- समोच्चरेखीय जुताई और मेड़बंदी।
- वनरोपण, विशेषरूप से नदी द्रोणियों के ऊपरी भागों में।
- आर्द्र प्रदेशों में अवनालिका अपरदन और मरूस्थलीय और अर्ध-मरूस्थलीय प्रदेशों में पवन-अपरदन रोकने के लिए अवरोधों का निर्माण।
- जैव खादों का अधिकाधिक उपयोग।
- बाढ़ सिंचाई के स्थान पर सिंचाई की फुहारा और टपकन विधियों का उपयोग।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   (i) मृदा किसे कहते हैं ?
   (ii) यह कैसे बनती है ?
   (iii) मृदा निर्माण के प्रमुख कारकों के नाम बताइए।
   (iv) मृदा के तीन संस्तरों के नामों का उल्लेख कीजिए।
   (v) मृदाओं के भौतिक गुणों के नाम बताइए।
   (vi) मृदा अपरदन किसे कहते हैं ?
   (vii) बीहड़ किसे कहते हैं ?
   (viii) मृदा संरक्षण के तीन उपाय बताइए।

2. अंतर बताइए:
   (i) हल्की और भारी मृदाएँ
   (ii) गहरी और उथली मृदाएँ
   (iii) मंद और तीव्र ढाल
   (iv) मृदा अपरदन और मृदा संरक्षण।

3. काली मृदाएँ किन्हें कहते हैं ? उनके निर्माण और विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

4. मृदा अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों का वर्णन कीजिए। इसके लिए उत्तरदायी कारकों का उल्लेख करते हुए मृदाओं के संरक्षण के उपाय सुझाइए।

5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (i) लैटराइट मृदाएँ
   (ii) काली मृदाएँ
   (iii) मरूस्थलीय मृदाएँ
   (iv) क्षारीय मृदाएँ।

परियोजना कार्य

6. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:
   (i) लाल मृदाएँ
   (ii) पवन-अपरदन के क्षेत्र
   (iii) अवनालिका अपरदन का एक क्षेत्र
   (iv) झूम कृषि का एक क्षेत्र।

7

अध्याय प्राकृतिक आपदाएँ और संकट

अपने निर्माण काल से ही पृथ्वी पर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। इनमें से कुछ धीमे तथा कुछ भयंकर और विध्वंसक होते हैं। मानव पर दुष्प्रभाव डालने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों को प्राकृतिक आपदाएँ कहते हैं। इनमें से कुछ हैंः ज्वालामुखी विस्फोट, भूकंप, सागरकंप, सूखा, बाढ़, चक्रवात, मृदा अपरदन, अपवाहन (deflation), पंकप्रवाह, हिमधाव (snow avalanche) तथा ऐसी ही अन्य परिघटनाएँ। मानवीय क्रियाकलापों से निरपेक्ष, पर्यावरण में होने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाएँ ही इनका मूल कारण हैं। यह सही है कि प्राकृतिक आपदाओं का मूल कारण प्राकृतिक प्रक्रियाओं से जुड़ा है, लेकिन आपदा की तीव्रता पर्यावरण में मानवकृत परिवर्तनों पर निर्भर करती है।

अंग्रेजी भाषा में प्राकृतिक आपदाओं (hazards) को प्राकृतिक संकट (disaster) भी कहा जाता है। फ्रैंच भाषा में डेस (des) का अर्थ बुरा (bad) तथा (aster) का अर्थ सितारे (stars) से है। प्राचीन काल में इन विनाशकारी और भयंकर प्राकृतिक परिवर्तनों को प्रकृति के साथ की गई छेड़-छाड़ के लिए प्रकृति द्वारा दिया गया दंड माना जाता था। आपदाओं और संकटों का एक-दूसरे के साथ निकट का संबंध है। कभी-कभी ये एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं। आपदा एक आशंका है, तो संकट एक घटना है। संकट दुःखद घटना, त्रासदी या आपदा का परिणाम है। मानव जीवन और अर्थव्यवस्था को भारी हानि पहुँचाने वाली प्राकृतिक आपदाओं को संकट और महाविपत्ति (catastrophes) कहते हैं। विश्व बैंक ने संकट (disaster) को इस प्रकार परिभाषित किया हैं। संकट, अल्पावधि की एक असाधारण घटना है,जो देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से बिगाड़ देती है।उत्पत्ति के आधार पर संकटों का वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे : मौसमी संकट (प्रभंजन, चक्रवात,बाढ़,सूखा); स्थलाकृतिक संकट (भू-स्खलन, हिमधाव); विवर्तनिक संकट (भूकंप,ज्वालामुखी); उत्पीड़क संकट (फसलों पर टिड्डी दल का आक्रमण, महामारियाँ) और मानवकृत संकट (औद्योगिक दुर्घटनाएँ, अणुबम)। कुछ संकट तीव्र होते हैं और बिना चेतावनी के आते हैं। ये थोड़े से ही समय में विनाशलीला के चिह्न छोड़ जाते हैं। ऐसे संकटों में जन-जीवन और संपात्ति के बचाव के बहुत कम पूर्वोपाय किए जा सकते हैं। कुछ संकट धीमी गति से आते हैं। ऐसे में जन-जीवन और संपात्ति को बचाने या हानि को कुछ कम करने के लिए कुछ पूर्वोपाय किए जा सकते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के दो पक्षों पर ध्यान देना जरूरी है – इनके द्वारा संकट की संभावनाएँ तथा इनके वास्तविक विध्वंसात्मक परिणाम। सभी संभावित खतरनाक आपदाएँ संकटपूर्ण नहीं होती हैं।

संकटों की तीव्रता जिन कारकों से नियंत्रित होती हैं, वे हैं : (i) ऐतिहासिक और सामाजिक दशाएँ तथा किसी देश या प्रदेश के आर्थिक विकास का स्तर उनकी छेद्यता को प्रभावित करता है। विकासशील देशों में संभावित सामान्य-आपदा संकट पूर्ण हो सकती है। निर्धन देश की तुलना में अमीर देश सकंटों को आसानी से झेल जाते हैं। (ii) भूमि के उपयोग के प्रकार पर प्राकृतिक आपदाओं से हो सकने वाली हानि की मात्रा निर्भर करती है। 'क्या अरक्षित है, 'कैसे अरक्षित है', इनसे ही हानि की मात्रा निर्धारित होती है। सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र की तुलना में मरूस्थल में भूकम्प द्वारा कम हानि होती है। (iii) किसी देश या प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पर संकट के क्षेत्र का विस्तार निर्भर करता है। देश के मध्य भाग में स्थित मध्य प्रदेश की तुलना में आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्र में चक्रवातों के आने की अधिक आशंका रहती है। (iv) यदि अलग-अलग करके विचार किया जाए, तो प्राकृतिक आपदाएँ इतनी खतरनाक नहीं प्रतीत होती हैं। खाद्यानों, चारे, जल और परिवहन के साधनों की कमी से युक्त क्षेत्र का सूखा बहुत संकट वाला होता है। आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति तथा पर्यावरण पर मानवीय क्रियाकलापों के बढ़ते प्रभाव को ध्यान में रखकर ही किसी भी प्राकृतिक आपदा की समस्या का अध्ययन करना उचित है। प्राचीन काल में प्राकृतिक आपदाओं के सामने मानव असहाय था।

आजकल इनमें से कुछ की भविष्यवाणी संभव है। इनके क्षण-क्षण बदलते रूप की जानकारी और उसका प्रसारण भी संभव है। उचित योजनाएँ बनाकर धन-जन की हानि को कम किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदा, महाविनाशकारी, अप्रत्याशित और अनियंत्रणीय परिघटना है। लोगों, भवनों और आर्थिक संपदाओं के आस-पास आने वाली आपदाएँ बहुत खतरनाक होती हैं। ये आपदाएँ जैव, भू-वैज्ञानिक, भूकंपीय, जलविज्ञान संबंधी या मौसमी दशाएँ या प्राकृतिक पर्यावरण की प्रक्रियाएँ होती हैं। ये आकस्मिक और शक्तिशाली होती हैं। भूकंप, चक्रवाती तूफान, आकस्मिक बाढ़, बादलों का फटना, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाएँ हैं। नाभिकीय विस्फोट, आग, औद्योगिक या वाहनों से होने वाली दुर्घटनाएँ आदि, मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न मानव प्रेरित आपदाएँ कही जाती हैं। इनसे भी धन-जन को भारी हानि होती है तथा मानवीय क्रियाकलाप गंभीर रूप से अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।

भूकंप

भूकंप को महाविनाशकारी आपदा माना जाता है। इनसे प्रायः संकट की स्थिति पैदा होती है तथा इनके कारण अनेक लोग मौत के मुंह में चले जाते हैं और संपत्ति को व्यापक क्षति पहुँचती है। सबसे अधिक विनाशक भूकंप, विवर्तनिक हलचलों से पैदा होते हैं। इनका संबंध भूपर्पटी के बड़े पैमाने के तनावों से होता है। अविवर्तनिक उत्पत्ति के भी कुछ भूकंप हो सकते हैं। ज्वालामुखी विस्फोटों, चट्टानों के फटने, खानों के धंसने, जलाशय में जल के इकट्ठा होने से उत्पन्न भूकंप अविवर्तनिक भूकंपों के उदाहरण हैं। ऐसे भूकंपों से छोटे से क्षेत्र को ही हानि होती है।

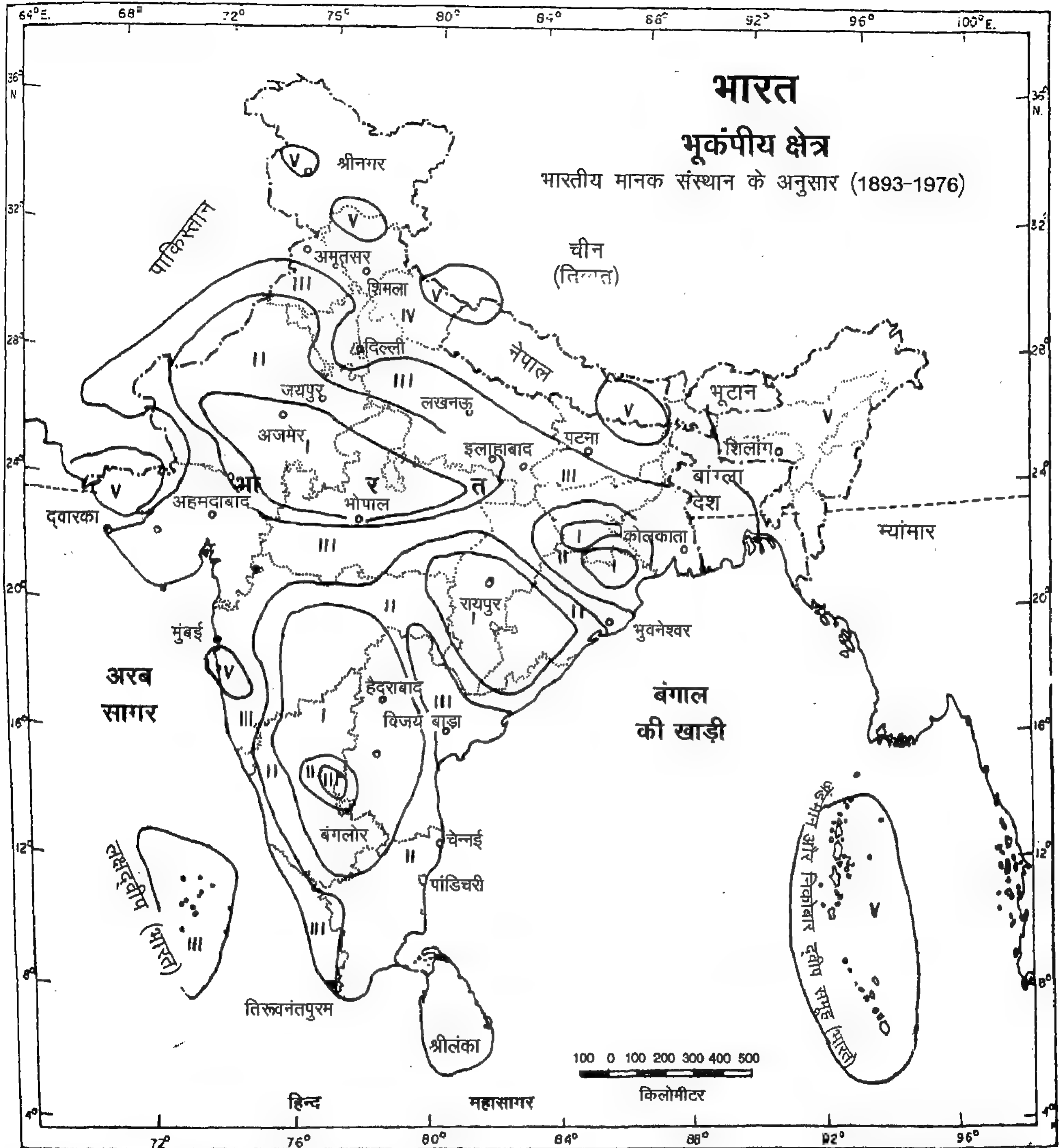
किसी भूकंप की शक्ति को मापने की दो विधियाँ हैं: परिमाण और तीव्रता। रिक्टर पैमाने पर मापा गया परिमाण, किसी भूकंप द्वारा विकसित भूकंपीय ऊर्जा की माप होती है। भूकंप द्वारा होने वाली हानि की माप को तीव्रता कहते हैं। विभिन्न वर्षों में आए भारत के लगभग 1,200 भूकंपों के अध्ययन के आधार पर भारतीय मौसम विभाग ने देश को पाँच क्षेत्रों में विभाजित किया हैं – क्षेत्र I : खतरा-विहीन, क्षेत्र II कम खतरा, क्षेत्र III : मध्यम खतरा, क्षेत्र IV : अधिक खतरा और क्षेत्र V : अत्यधिक खतरा (चित्र 7.1)। देश के लगभग 55 प्रतिशत भाग में भूकंप के आने की आशंका रहती है। लेकिन देश के विभिन्न भागों में आने वाले भूकंपों की तीव्रता एक समान नहीं होती है। नवीन अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत का कोई भी भाग भूकंप से अप्रभावित नहीं है।

भूकंप की दृष्टि से भारत के अत्यधिक खतरे वाले क्षेत्र हैं : हिमालय पर्वत, उत्तर-पूर्वी भारत, कच्छ, रत्नागिरि के आस-पास का पश्चिमी तटीय तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। अधिक खतरे वाले क्षेत्र हैं : गंगा का मैदान और पश्चिमी राजस्थान। यह सही है कि भूकंपों को न तो रोका जा सकता है और न ही उनकी सही-सही भविष्यवाणी की जा सकती है,लेकिन भवनों को भूकंप रोधी बनाकर भूकंप द्वारा धरातल में होने वाली हलचलों का मुकाबला किया जा सकता है। भूकंपरोधी भवनों का अध्ययन अब अभियांत्रिकी (इंजीनियरी) का बहु-विषयी क्षेत्र बन गया है।

भूकंप के परिणाम : केवल बसे हुए क्षेत्रों में आने वाला भूकंप ही आपदा या संकट बनता है। भूकंप का प्रभाव सदैव विध्वंसक होता है। भूकंप के कारण प्राकृतिक पर्यावरण में कई तरह से परिवर्तन हो जाते हैं। भूकंपीय तरंगों से धरातल में दरारें पड़ जाती हैं, जिनसे कभी-कभी पानी के फव्वारे छूटने लगते हैं। इसके साथ बड़ी भारी मात्रा में रेत बाहर आ जाता है तथा इससे रेत के बांध बन जाते हैं। क्षेत्र के अपवाह तंत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। नदियों के मार्ग बदल जाने से बाढ़ आ जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में भू-स्खलन हो जाते हैं तथा इनके साथ भारी मात्रा में चट्टानी मलबा नीचे आ जाता है। इससे बृहतक्षरण होता है। हिमानियाँ फट जाती हैं तथा इनके हिमधाव सुदूर स्थित स्थानों पर बिखर जाते हैं।

नए जलप्रपातों और सरिताओं की उत्पत्ति भी हो जाती है। भूकंपीय आपदाओं से मनुष्य निर्मित भवन बच नहीं पाते हैं। सड़कें, रेलमार्ग, पुल और टेलीफोन की लाइनें टूट जाती हैं। गगनचुंबी भवनों और सघन जनसंख्या वाले कस्बों और नगरों पर भूकंपों का सबसे बुरा असर होता है।

भूकंप के प्रभाव को कम करना : भूकंप के प्रभाव को कम करने का सबसे अच्छा तरीका है: इसकी निरंतर खोज-खबर रखना तथा लोगों को इसके आने की संभावना की सूचना देना। इससे आशंकित क्षेत्रों से लोगों को



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 7.1 भारत : भूकंपीय क्षेत्र

हटाया जा सकता है। भूकंप से अत्यधिक खतरे वाले क्षेत्र में भूकंप रोधी भवन बनाने की आवश्यकता है। भूकंप की आशंका वाले क्षेत्रों में लोगों को भूकंप रोधी भवन और मकान बनाने की सलाह दी जा सकती है।

चक्रवात

600 कि.मी. या इससे अधिक व्यास वाले चक्रवात, पृथ्वी के वायुमंडलीय तूफानों में सबसे अधिक विनाशक और भयंकर होते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप, संसार में चक्रवातों द्वारा सबसे अधिक दुष्प्रभावित क्षेत्र हैं। संसार में आने वाले चक्रवातों में से 6 प्रतिशत यहीं आते हैं।

आज तक भी उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति के विषय में कोई भी सर्वमान्य सिद्धांत नहीं बना है। जब कमजोर रूप से विकसित कम दबाव के क्षेत्र के चारों ओर तापमान की क्षैतिज प्रवणता बहुत अधिक होती है, तब उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बन सकता है। चक्रवात ऊष्मा का इंजिन है तथा इसे सागरीय तल से ऊष्मा मिलती है। संघनन के बाद मुक्त ऊष्मा, चक्रवात के लिए गतिज ऊर्जा (kinetic energy) में बदल जाती है।

चक्रवात की उत्पत्ति की निम्नलिखित अवस्थाएँ हैं :

1. महासागरीय तल का तापमान 26^0 से. से अधिक।
2. बंद समदाब रेखाओं का आविर्भाव।
3. निम्न वायु दाब, 1,000 मि.बा. से कम होना।
4. चक्रीय गति के क्षेत्र, प्रारंभ में इनके अर्धव्यास 30 से 50 कि.मी.,फिर क्रमशः 100-200 कि.मी. और 1,000 कि.मी. तक भी बढ जाते हैं ।
5. ऊर्ध्वाधर रूप में पवन की गति का प्रारंभ में 6 कि.मी. की ऊँचाई तक बढ़ना तथा इसके बाद और भी ऊँचा उठना।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना : उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में बहुत अधिक दाब प्रवणता (14-17 मि.बा./100 कि.मी.) होती है। कुछ चक्रवातों में यह इससे भी अधिक ऊँची अर्थात् 60 मि.बा./100 कि.मी. होती है। पवन पट्टी केंद्र से 10 से 150 कि.मी. या कभी-कभी इससे भी अधिक दूरी में फैली होती है। धरातल पर पवन का चक्रवातीय परिसंचरण होता है तथा ऊँचाई पर यह प्रति चक्रवातीय बन जाता है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की क्रोड कोष्ण होती है। चक्रवात का केंद्र सामान्यतः मेघ विहीन होता है। इसे चक्रवात की आँख कहते हैं। चक्रवात की आँख बहुत ऊँचाई तक फैले ऊर्ध्वाधर बादलों से घिरी होती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात से सामान्यतः 50 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। कभी-कभी वर्षा 100 से.मी. से भी अधिक हो जाती है।

चक्रवात अपने पूरे तंत्र के साथ लगभग 20 कि.मी. प्रति घंटा औसत गति से आगे बढ़ता है। जैसे-जैसे चक्रवात स्थल पर बढ़ता जाता है, समुद्री जल के अभाव में इसकी ऊर्जा घटती जाती है। इससे चक्रवात समाप्त हो जाता है। चक्रवात की जीवन अवधि 5 से 7 दिनों की होती है।

प्रभंजन की गतिवाली पवनों, प्रभंजन की लहरों तथा मूसलाधार वर्षा से उत्पन्न बाढ़ों के कारण उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। अधिकतर तूफान अत्यंत तेज पवनों और तूफानी लहरों के द्वारा भारी क्षति पहुँचाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में ढाल पर अत्यंततीव्रता से बहने वाला वर्षाजल अपने सामने आने वाली हर वस्तु को अपनी चपेट में लेकर भारी नुकसान करता है। तूफानी लहरों की तीव्रता, पवन की गति, दाब प्रवणता, समुद्र की तली की स्थलाकृतियों तथा तटरेखा की बनावट पर निर्भर करती है। अनेक क्षेत्रों में चक्रवातों की चेतावनी व्यवस्था के बावजूद, उष्ण कटिबंधीय चक्रवात धन-जन को अपार क्षति पहुँचाते हैं।

सारणी 7.1 बंगाल की खाड़ी और अरब सागर की चक्रवातीय तूफानों की आवृत्ति को प्रकट करती है। सारणी से पता चलता है कि अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी में तूफानों की संख्या कहीं अधिक है। बगांल की खाड़ी और अरब सागर में अधिकतर तूफान अक्तूबर और नवंबर के महीनों में आते हैं। मानसून ऋतु का प्रारंभिक भाग भी बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उष्ण कटिबंधीय तूफानों की उत्पत्ति के अनुकूल है। मानसून-ऋतु में अधिकतर चक्रवात 10^0 उ. तथा 15^0 उ. अक्षांशों के मध्य ही उत्पन्न होते हैं। जून में बंगाल की खाड़ी के लगभग सभी तूफान 92^0 पू. देशांतर के पश्चिम में 16^0 उ. और 21^0 उ. अक्षांश के मध्य जन्म लेते हैं। जुलाई में खाड़ी के तूफानों का जन्म 18^0 उ. अक्षांश के उत्तर में तथा 90^0 पू. देशांतर के पश्चिम में होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जुलाई के सभी तूफान पश्चिमी पथ का अनुसरण करते हैं। ये सामान्यत 20^0 उ. तथा 25^0 उ. अक्षांशों के मध्य तक ही सीमित रहते हैं तथा हिमालय की

सारणी 7.1 : भारत में चक्रवातीय तूफानों की आवृत्ति

महीना	*बंगाल की खाड़ी*	*अरब सागर*
जनवरी	4 (1.3)	2 (2)
फरवरी	1 (0.3)	0 (0.0)
मार्च	4 (1.3)	0 (0.0)
अप्रैल	18 (5.7)	5 (6.1)
मई	28 (8.9)	13 (15.9)
जून	34 (10.8)	13 (15.9)
जुलाई	38 (12.1)	3 (3.7)
अगस्त	25 (8.0)	1 (1.2)
सितंबर	27 (8.6)	4 (4.8)
अक्तूबर	53 (16.9)	17 (20.7)
नवबंर	56 (17.8)	21 (25.6)
दिसबंर	26 (8.3)	3 (3.7)
योग	**314 (100.0)**	**82 (100.0)**

विशेष : कोष्ठकों में दी गई संख्याएँ तूफानों की आंवृत्ति को प्रतिशत में व्यक्त करती हैं।

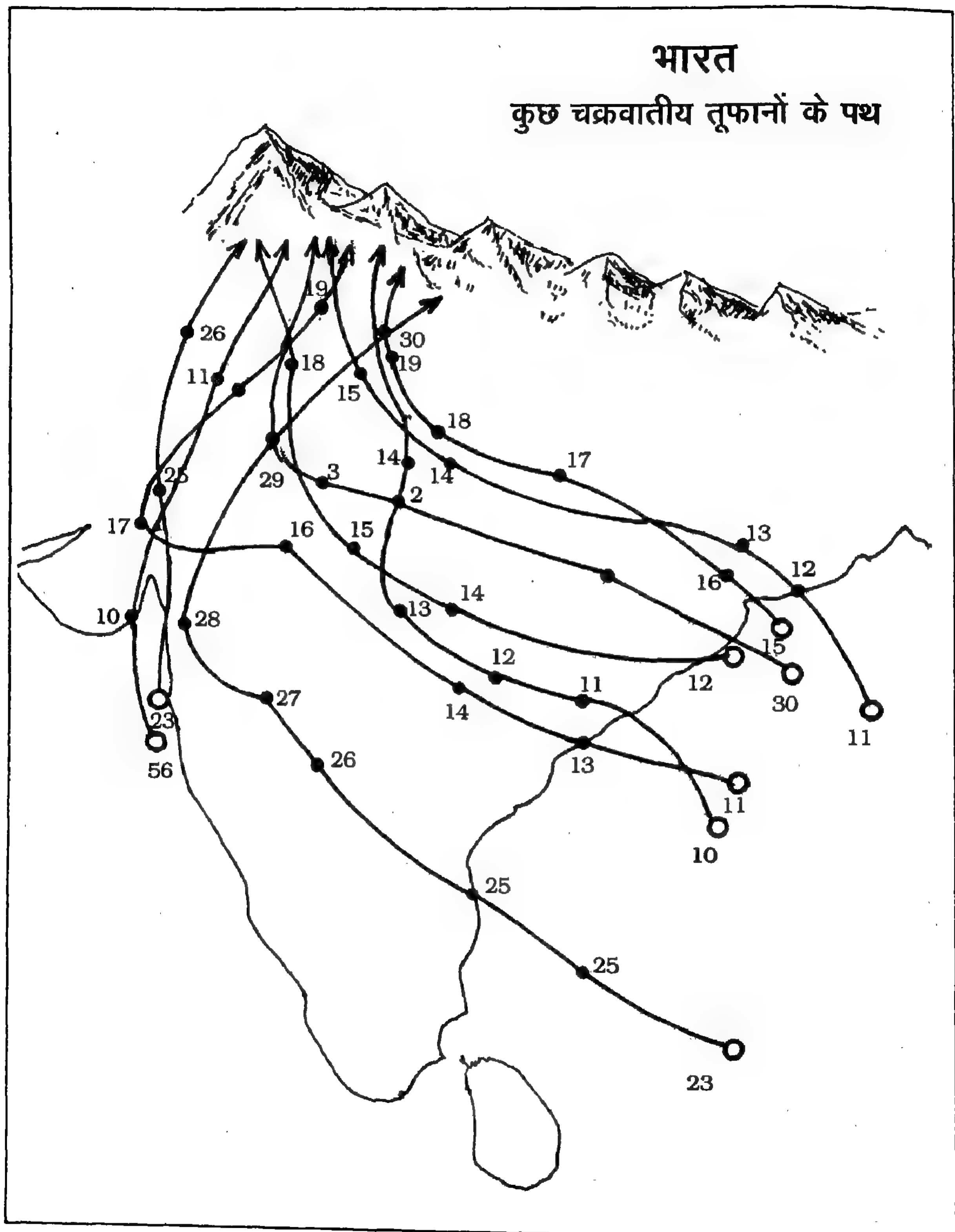
गिरिपद पहाड़ियों की ओर अपेक्षाकृत बहुत कम मुड़ते हैं (चित्र 7.2)।

क्षति का प्रभाव कम करना : अधिकतर चक्रवातीय क्षति, तेज पवनों, मूसलाधार वर्षा और समुद्र में उठने वाली ऊँची तूफानी, ज्वारीय लहरों के द्‌वारा होती है। पवनों की तुलना में चक्रवातीय वर्षा के कारण आई बाढ़ अधिक विनाशकारी होती है। आज चक्रवातों की चेतावनी व्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार होने से तथा पर्याप्त और सामायिक कार्यवाही से चक्रवात से मरने वालों की संख्या में कमी आई है। अन्य उपाय जैसे : चक्रवातों के आने के समय सुरक्षा के लिए आश्रय स्थलों के तटबंधों, बांधों, जलाशयों के निर्माण से और तट पर वन रोपण से भी बहुत सहायता मिलती है। फसलों और गो-पशुओं के बीमे से भी लोगों को क्षति पूर्ति में काफी मदद मिलती है। उपग्रहों से प्राप्त चित्रों के द्‌वारा चक्रवात के पथ के बारे में चेतावनी देना अब संभव हो गया है। कम्प्यूटर द्‌वारा बनाए गए मॉडलों की सहायता से चक्रवात की पवनों की दिशा और तीव्रता तथा इसके पथ की दिशा की काफी हद तक सही भविष्यवाणी की जा सकती है।

बाढ़

भारत में प्रति वर्ष आने वाली बाढ़ें मानवीय दुर्दशा का मुख्य कारण है। जिन कई प्राकृतिक संकटों का देश अनुभव करता है, बाढ़ उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है। बांग्लादेश के बाद संसार में बाढ़ प्रकोप से पीड़ित देशों में भारत का दूसरा स्थान है। सारे संसार में बाढ़ से होने वाली मौतों में से, 20 प्रतिशत मौतें भारत में तथा 50 प्रतिशत मौतें बांग्लादेश में होती हैं। इस तथ्य के बावजूद कि बाढ़ें प्राकृतिक संकट हैं, ये एक सामाजिक संकट बन जाती हैं, क्योंकि बाढ़ की भीषणता के प्रकोप को झेलने वाले लोग गरीब होते हैं। गरीब लोग ही प्रायः मानव बस्तियों की बाह्‌य सीमाओं पर बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में रहते हैं। भारत की जनसंख्या की वृद्‌धि की तुलना में प्रतिवर्ष बाढ़ से पीड़ित होने वाले लोगों की संख्या अधिक तेजी से बढ़ी है। विगत कुछ वर्षों में बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों और क्षति में भी वृद्‌धि हुई है। लोगों द्‌वारा बाढ़ के मैदानों में अनधिकृत कब्जा ही इस वृद्‌धि का कारण है।

उत्तर प्रदेश, बिहार, और पश्चिम बंगाल में गंगा की द्रोणी, असम में ब्रह्‌मपुत्र की द्रोणी, तथा उड़ीसा में **बैतरणी,**



चित्र 7.2 भारत : कुछ चक्रवातीय तूफानों के पथ

उष्ण कटिबंधीय सागरों के अनियंत्रित हत्यारे : चक्रवात

सन् 1971 में 29-30 अक्तूबर की रात में उड़ीसा के उत्तरी तट पर एक भीषण चक्रवात आया था। इसने उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के द्वारा पूर्वी तट पर होने वाली क्षति की ओर ध्यान आकर्षित किया था। इस चक्रवात के प्रभाव से 10,000 लोग मर गए थे। फसलों और संपात्ति को अपार क्षति पहुँची थी।

इसी तरह सन् 1977 में 19 नवंबर को एक भीषण चक्रवात आंध्र प्रदेश के तट पर आया था। इसके द्वारा रचे गए मौत के तांडव में 30,000 से अधिक लोग काल-कवलित हो गए थे। तेज गति वाले इस उष्ण कटिबंधीय चक्रवात से इतनी ऊर्जा मुक्त हुई थी, जितनी ऊर्जा 200 हाइड्रोजन बमों के विस्फोट से मुक्त होती है। पेड़ों की पत्तियाँ और शाखाएँ चाकलेटी या काले रंग की हो गई थीं। तटीय क्षेत्रों में 10 मी. ऊँची समुद्री लहरें उठ रही थीं। इन्होंने हजारों वर्ग कि.मी. कृषि-भूमि को खारे पानी में डुबो दिया था।

29 अक्तूबर 1999 को उड़ीसा तट पर आया चक्रवात, बंगाल की खाड़ी के मध्य 25 अक्तूबर को जन्मा था। इसके प्रभाव से तट पर स्थित पाराद्वीप बंदरगाह से 15 कि.मी.दूर तक की भूमि 1.5 मी. गहरे पानी में डूब गई थी। समुद्र में ज्वारीय लहरें 4.5 मी. की ऊँचाई तक उठ रही थीं। चक्रवात ने पेड़ उखाड़ दिए, बिजली, टेलीफोन आदि के खंभे गिरा दिए तथा तट के बहुत बड़े क्षेत्र में बाढ़ का पानी भर दिया। यह 30,000 लोगो को निगल गया। इससे लाखों परिवार और बच्चे बेधर और बेसहारा हो गए। यह एक महा (सुपर) चक्रवात था।

ब्राह्मणी और सुवर्ण रेखा नदियों की द्रोणियाँ भारत में सबसे अधिक बाढ़ प्रवण द्रोणियाँ हैं। कभी-कभी आंध्र प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और गुजरात में भी बाढ़ें आती हैं।

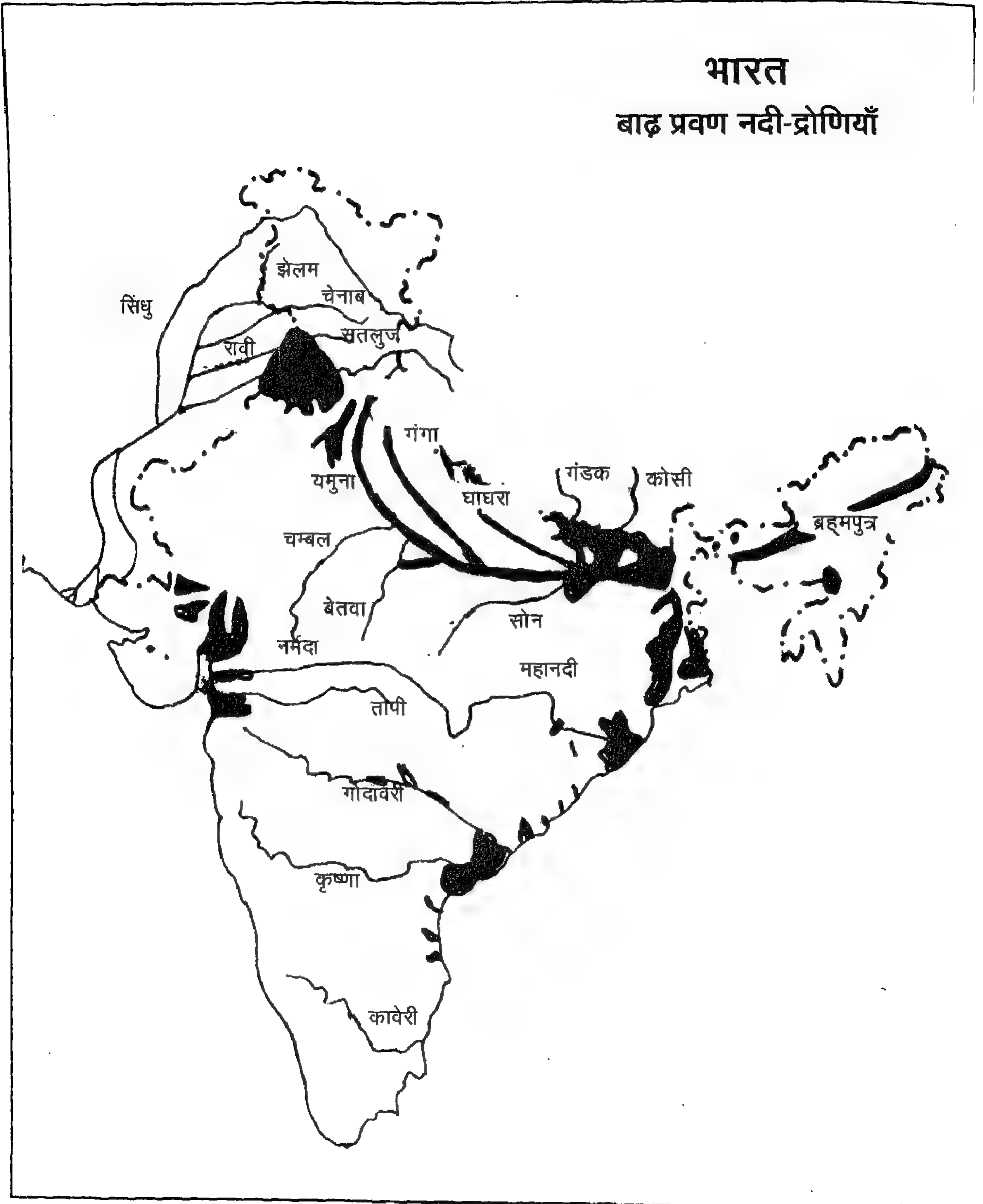
बाढ़ तब आती है जब नदी का पानी तटों के बाहर बहने लगता है और नदी के साथ-साथ फैले बाढ़ के मैदानों में फैल जाता है। भारत में ऐसी नदियों की बहुत बड़ी संख्या है, जो वर्षा ऋतु में उफन जाती है अन्य ऋतुओं में सूख जाती हैं। मानसून की ऋतु में उत्तर भारत और मध्य भारत की नदियों में प्रायः बाढ़ आ जाती है। अधिक धरातलीय जल-प्रवाह, भू-स्खलनों द्वारा जल-प्रवाह के अवरूद्ध होने से तथा नदियों के तल में अत्यधिक गाद के जमा हो जाने पर ही बाढ़ें आती हैं। शुष्क क्षेत्रों में आकस्मिक बाढ़ों का संबंध चक्रवाती तूफानों से है। चक्रवातों के आने से भारत का तटीय क्षेत्र बाढ़ग्रस्त हो जाता है। समुद्र के तल के ऊँचा उठने से या नदियों में ज्वारभित्ति के प्रवेश कर जाने से ज्वार नदमुख बाढ़ग्रस्त हो जाते हैं। नगरीय क्षेत्र के वर्षाजल को बहाकर ले जाने वाली नदियों में अत्यधिक जल-प्रवाह के कारण निम्न क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है।

1976 में स्थापित राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के विचार से विगत कुछ वर्षो में बाढ़ों में वृद्धि हुई है। बाढ़ों में वृद्धि के मानवीय कारक ये हैं : वननाशन, अपवाह में अवरोध (पुलों, सड़कों, रेलमार्गों तथा विकास कार्यक्रमों की गलत योजनाओं से उत्पन्न), रिसाव में कमी (बहुत अधिक भूमि पर उद्योगों की स्थापना, तथा बड़े पैमाने पर गंदगी) और नदियों पर तटबंधों का निर्माण। देश का 4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रवण है। यह भारत के कुल क्षेत्रफल का आठवाँ भाग है (चित्र 7.3 और 7.4)।

बाढ़ नियंत्रण : बाढ़ें भारत के लिए कोई नई घटना नहीं हैं। प्राचीन काल से ही बाढ़ नियंत्रण के लिए नदियों



***चित्र 7.3** भारत : बाढ़ प्रवण क्षेत्र*



चित्र 7.4 भारत : बाढ़ प्रवण नदी-द्रोणियाँ

भारत में बाढ़ों से होने वाली क्षति : औसत वार्षिक आंकड़े

मानव मृत्यु	:	1,500
बाढ़ग्रस्त क्षेत्र	:	76.6 लाख हेक्टेयर
क्षतिग्रस्त फसलें	:	35.1 लाख हैक्टेयर
बाढ़ प्रभावित लोग	:	3.184 करोड़
क्षतिग्रस्त मकान	:	12 लाख
मृत गो-पशु	:	2 लाख
क्षतिग्रस्त संपात्ति	:	768 करोड़ रूपए

पर तटबंधों के निर्माण की परंपरा चली आ रही है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टाओं तथा सिंधु-गंगा के मैदान में बाढ़ो को रोकने के लिए तटबंध बनाए गए थे। लेकिन बाढ़ से सुरक्षा के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम स्वतंत्रता के बाद ही प्रारंभ हुए हैं। 1947 में आजादी के समय भारत की विभिन्न नदियों पर 5,280 कि.मी. लंबे तटबंध थे। इनमें 3,500 कि.मी. लंबे तटबंध पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में तथा 1,209 कि.मी.उड़ीसा में महानदी पर थे। इनसे 30 लाख हैक्टेयर भूमि को बाढ़ों से सुरक्षा मिलती थी।

सन 1954 में बाढ़ों का भीषण प्रकोप हुआ। इनसे उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में भारी विनाश हुआ। बाढ़ों से सुरक्षा के लिए बाँध और तटबंधों के निर्माण के दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाए गए। केंद्र और राज्य स्तर पर बाढ़ नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए गए। बाढ़ के प्रकोप को कम करने के लिए विविध उपायों के बावजूद, गंगा और ब्रह्मपुत्र की द्रोणियों में नियमित रूप से हर साल बाढ़ें आती हैं।

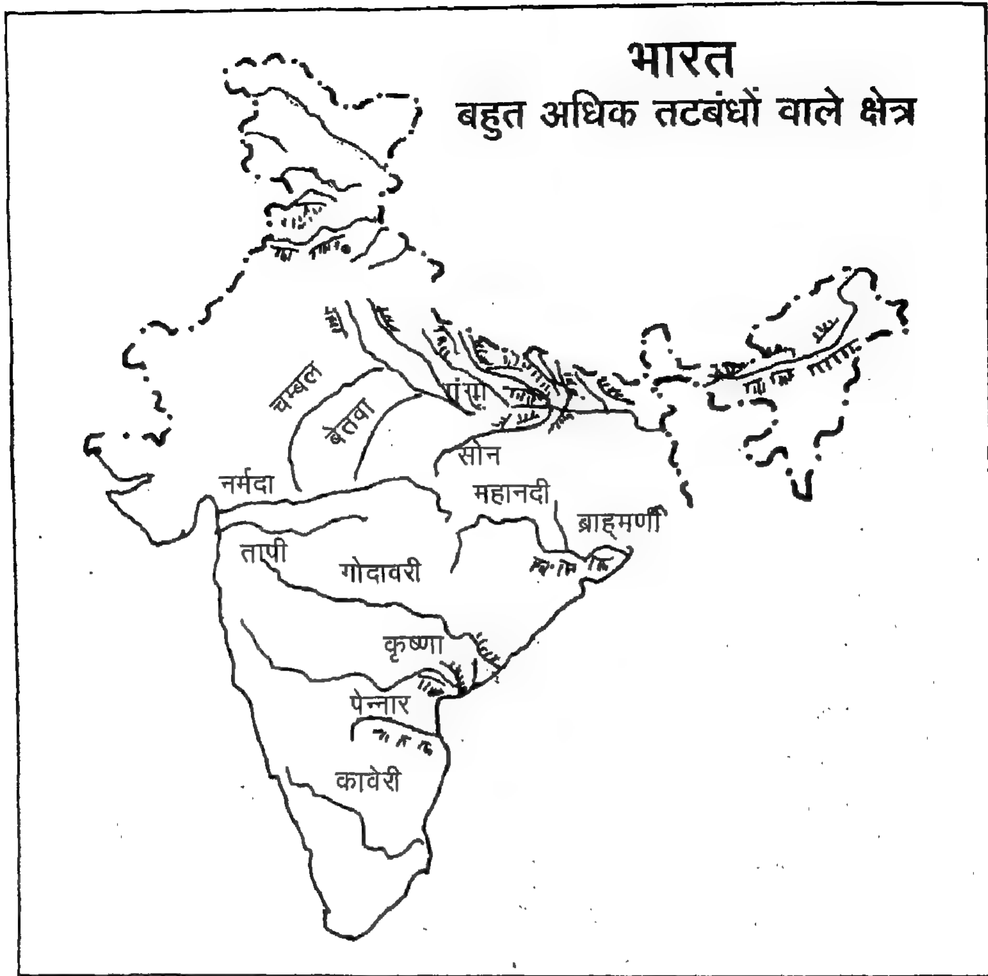
बाढ़ों का प्रभाव कम करना : उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में बाढ़ नियंत्रण का एकमात्र उपाय तटबंधों का निर्माण ही था (चित्र 7.5 और 7.6)। बांधों और जलाशयों को जल-प्रवाह के नियंत्रण और बाढ़ों को घटाने के लिए उपयोगी समझा जाता था। अब बाढ़ की भीषणता को कम करने के लिए अन्य अनेक उपाय हैं। नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों और पहाड़ी ढालों पर वृक्षों की कटाई और वननाशन को रोकना जरूरी है। मौसम के पूर्वानुमानों का प्रसारण और बाढ़ चेतावनी व्यवस्था को नियमित किया जाना चाहिए।

सूखा

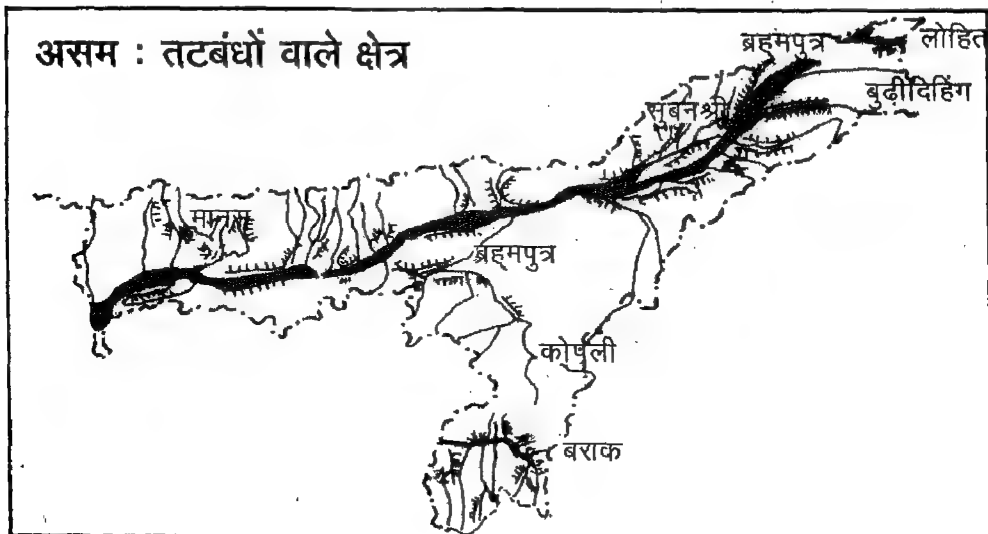
किसी क्षेत्र में होने वाली वर्षा की मात्रा तथा उस क्षेत्र की वैज्ञानिक और सामाजिक प्रगति के बावजूद उस क्षेत्र में सूखा पड़ सकता है। यह छोटे-छोटे क्षेत्रों या किसी बड़े क्षेत्र में भी पड़ सकता है। सूखा किसी भी समय पड़ सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पीने के लिए, सिंचाई के लिए, उद्योगों और शहरी आवश्यकताओं के लिए जल का अभाव हो सकता है। सूखे के कारण मृदा में नमी की कमी हो जाती है तथा भूमि अनुत्पादक बन जाती है। इससे फसलें भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। मानसून की विफलता या इसके निर्धारित समय पर न आने से या जल्दी आने से या

ब्रह्मपुत्र नदी में बाढ़

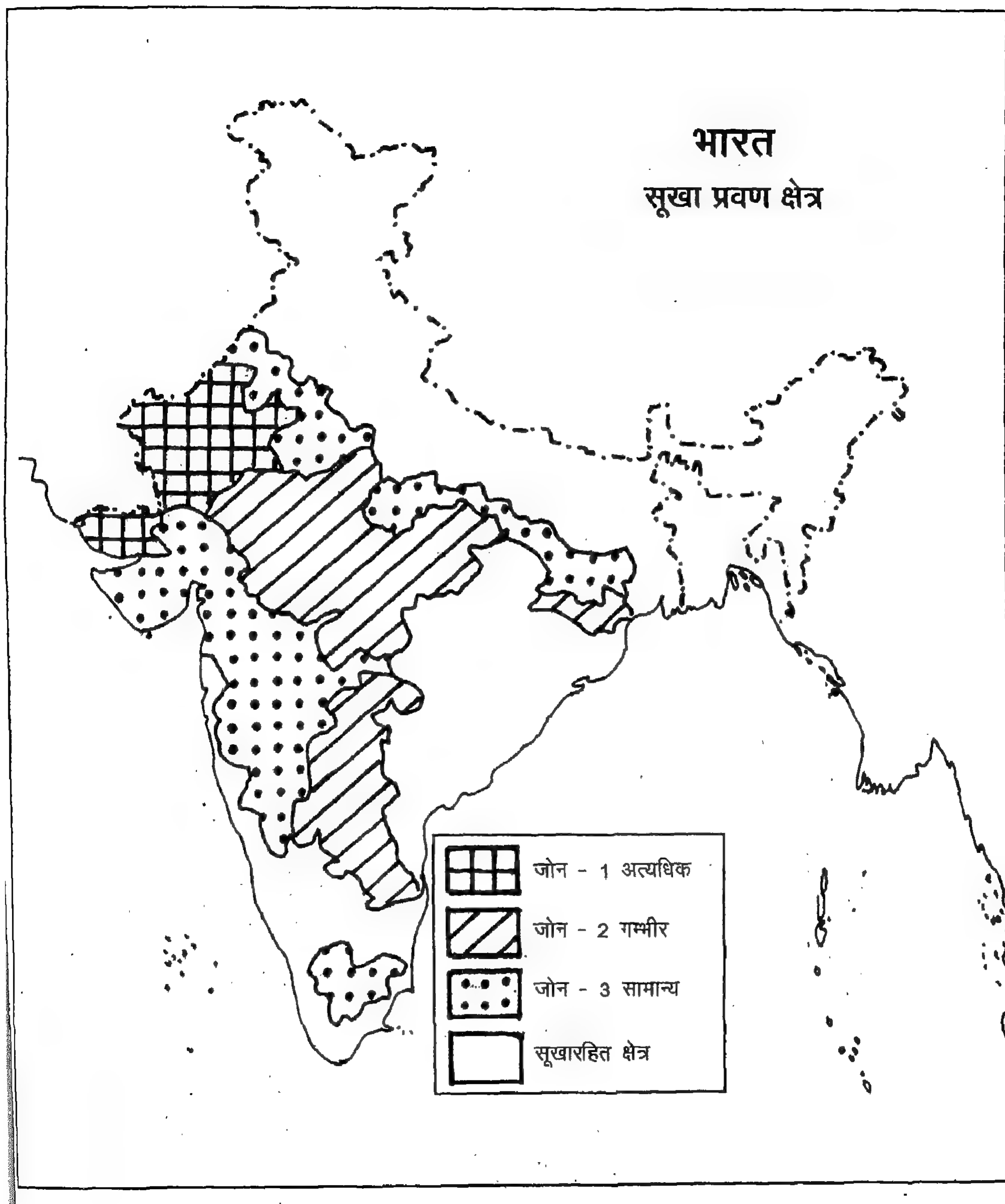
संसार की सबसे अधिक अवसादों को ढोने वाली नदियों में ब्रह्मपुत्र का पहला स्थान है । मानसून ऋतु में नदी प्रतिदिन औसतन 21.2 लाख टन अवसाद बहा कर ले जाती है । अनेक विशेषज्ञों ने आरोप लगाया है कि नदी में गाद की भारी मात्रा के लिए आस-पास की पहाड़ियों पर वननाशन और स्थानान्तरी कृषि जिम्मेदार है । ब्रह्मपुत्र की दक्षिण तट की सहायक नदियों की अपेक्षा उत्तरी तट की सहायक नदियों के ढाल तीव्र तथा धाराएँ उथली और गुंफित है, इनके तल में मोटा रेत भरा है । ये भारी मात्रा में गाद बहा कर ले जाती है तथा इनमें आकस्मिक बाढ़ आने की प्रवृत्ति है। दक्षिण तट की सहायक नदियों में ढाल की प्रवणता कम है। गिरिपद पहाड़ियों से लेकर ब्रह्मपुत्र में मिलने तक ये धाराएँ गहरी हैं। इनके तल में चाक मिट्टी है। इसीलिए इनके तट और तल अधिक स्थिर हैं।



चित्र 7.5 भारत : बहुत अधिक तटबंधों वाले क्षेत्र



चित्र 7.6 असम : तटबंधों वाले क्षेत्र



चित्र 7.7 भारत : सूखा प्रवण क्षेत्र

तटबंधों के दोष

तटबंधों के निर्माण से समय के साथ बाढ़ों की समस्या और अधिक भीषण होती जा रही है। सामान्य बुरे प्रभाव ये हैं :

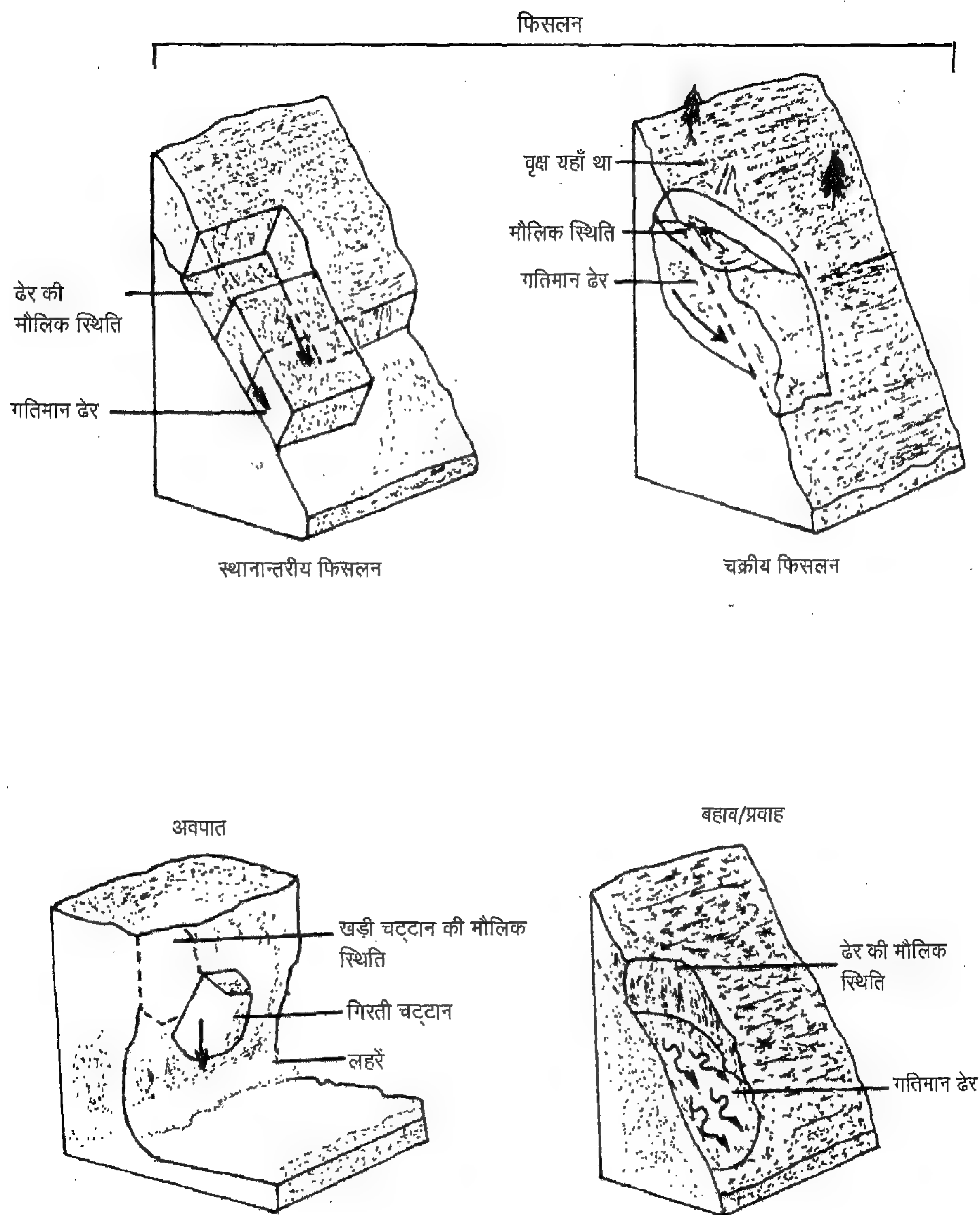
- प्रवाह मार्ग में कमी से बाढ़ के मैदान में भारी मात्रा में गाद और अवसाद भर जाते हैं। अंततोगत्वा तटबंध टूट जाते हैं।
- उपजाऊ गाद के निक्षेपों में कमी से प्राकृतिक उर्वरता घट जाती है। बाढ़ के पानी के एकत्र होने से आस-पास के बाढ़ के मैदानों में सुरक्षा की झूठी भावना पैदा हो जाती है।
- तटबंधों के निर्माण से अपवाह की संकुलता बढ़ जाती है। घोर बाढ़ के समय तटबंध के पीछे रहने वाले लोगों के लिए भयावह स्थिति पैदा हो जाती है।
- आस-पास के क्षेत्र में जल भराव एक आम लक्षण है।
- मार्ग में परिवर्तन से नदियाँ तटबंधों को तोड़ देती हैं।

बिना वर्षा किए वापस लौट जाने से सूखा पड़ता है। इन परिस्थितियों ने भारत के सूखा प्रवण क्षेत्रों का निरंतर विस्तार किया है। सूखा अब एक प्राकृतिक आपदा नहीं रह गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से मानवीय क्रियाकलापों का प्रतिफल है। इससे उत्पन्न मानवीय पीड़ा की मात्रा बहुत अधिक है और निरंतर बढ़ रही है।

सूखे और शुष्कता में निकट का संबंध है और दोनों ही पानी की कमी का संकेत करते हैं। शुष्कता एक स्थायी दशा है, जबकि सूखा एक अस्थायी स्थिति है। शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्र सूखा प्रवण होते हैं। कारण, स्वरूप और विशेषता के आधार पर सूखे चार प्रकार के होते हैं : मौसमविज्ञान सूखा, जलविज्ञान सूखा, कृषीय सूखा और पारिस्थितिकीय सूखा। मौसम विज्ञान संबंधी सूखा तब पड़ता है जब वार्षिक वर्षा अपने सामान्य औसत से 25 प्रतिशत से कम होती है। जल विज्ञान संबंधी सूखा वह है जब पृष्ठीय जल तथा भूमिगत जल का स्तर गिर जाता है। कृषीय सूखा तब पड़ता है, जब पौधों की टिकाऊ वृद्धि के लिए आवश्यक मृदा के नमी के स्तर में कमी हो जाती है। पारिस्थितिकीय सूखा तब पड़ता है, जब प्राकृतिक पारितंत्र की उत्पादकता घट जाती है तथा प्राकृतिक पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो जाता है। पर्यावरण की क्षति, बड़ी संख्या में गोपशुओं और वन्य जीवों की मृत्यु तथा वन के वृक्षों के सूखने में दिखाई पड़ती है।

सूखे का मुख्य कारण अपर्याप्त वर्षा तथा इसका असमान वितरण है। पश्चिमी और मध्य भारत को मानसून की ऋतु में होने वाली वर्षा की अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, यहाँ वर्षा न केवल अनिश्चित बल्कि अपर्याप्त भी है। वर्षा की कमी जल विज्ञान संबंधी और कृषीय सूखे को प्रेरित करती है। भारत के कुल क्षेत्रफल के 19 प्रतिशत भाग को सूखे की मार झेलनी पड़ती है। इस क्षेत्र में देश की 12 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। भारत के कुछ राज्यों में सूखा एक स्थायी लक्षण है। देश का लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र सूखाप्रवण है। इससे प्रतिवर्ष 5 करोड़ लोग पीड़ित होते हैं तथा कुल बोए गए क्षेत्र का 68 प्रतिशत भाग प्रभावित होता है (चित्र 7.7)। चित्र में तीन प्रकार के सूखा प्रवण क्षेत्र प्रदर्शित हैं : अत्यधिक, गंभीर और सामान्य।

सूखे के कारण खाद्यानों, जल और चारे की कमी हो जाती है, इन्हें क्रमशः अकाल, जलकाल और तिनकाल कहते हैं। कमी-कमी तीनों की कमी एक साथ हो जाती है और तब इसे त्रिकाल कहते हैं। सूखे के बाद होने वाले अकाल के कारण मानवों और पशु-धन का बड़े पैमाने पर पलायन शुरू हो जाता है। 1868-69 के अकाल के दौरान थार मरूस्थल में जोधपुर और पाली (एक नगर) के बीच 65 वर्ग कि.मी.भूमि के सभी गाँव उजड़ गए थे। 1812 और 1940 के अकाल के वर्षों में 30 से लेकर 80 प्रतिशत पशु मरे थे। सन् 1987 में निम्नलिखित 13 राज्यों में भयंकर सूखा पड़ा था। ये राज्य हैं : आंध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैंड, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान,



चित्र 7.8 भू-स्खलन के विभिन्न प्रकार

तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा दिल्ली के केंद्रशासित प्रदेश भी इस भयंकर सूखे की चपेट में थे। इस सूखे से 2.6 लाख गाँव पीड़ित हुए थे, 4.54 करोड़ हैक्टेयर भूमि की फसलें नष्ट हो गई थीं तथा 28.5 करोड़ लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ा था। सन् 2002 में मानसूनी वर्षा के न होने से भारत के मध्यवर्ती, पश्चिमी और दक्षिणी राज्यों में भयंकर सूखा पड़ा।

सूखे का प्रभाव कम करना : सूखे से राहत के लिए युद्ध स्तर पर योजनाएँ चलाई जानी चाहिए। भू-जल के भंडारों की खोज के लिए सुदूर संवेदन, उपग्रह मानचित्रण तथा भौगोलिक सूचना तंत्र (G.I.S.) जैसी विविध युक्तियों का उपयोग किया जाना चाहिए। लोगों के सक्रिय सहयोग से वर्षा के जल संग्रहण के समन्वित कार्यक्रम भी उपयोगी रहते हैं। अधिशेष से कमी वाले क्षेत्रों के लिए नदी जल का अंतर्द्रोणी स्थानान्तरण भी एक हद तक जल संकट को कम कर सकता है। कुछ अन्य उपाय ये हो सकते हैं : जल संग्रह के लिए छोटे बांधों का निर्माण, वनरोपण तथा सूखा रोधी फसलें उगाना। महाराष्ट्र की 'पानी पंचायत' और हरियाणा में सुखोमाजरी प्रयोग सूखे का मुकाबला करने के लिए लोगों द्वारा किए गए सुविज्ञात प्रयत्न हैं।

भू-स्खलन

आधार शैलों या आवरण प्रस्तर (regolith) का भारी मात्रा में तेजी से खिसकना ही भू-स्खलन है। जब पर्वतीय ढाल तीव्र होते हैं, तब बड़े अनर्थकारी भू-स्खलन की संभावना होती है। भू-स्खलन भूकंपों या अचानक शैलों के खिसकने के कारण होते हैं। खुदाई या नदी-अपरदन के परिणामस्वरूप ढाल के आधार के और अधिक तेज हो जाने पर भी भू-स्खलन हो जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में आने वाले घोर-भूकंप, भू-स्खलनों का प्रमुख करण है। चित्र 7.8 में भू-स्खलन के विभिन्न प्रकार प्रदर्शित हैं।

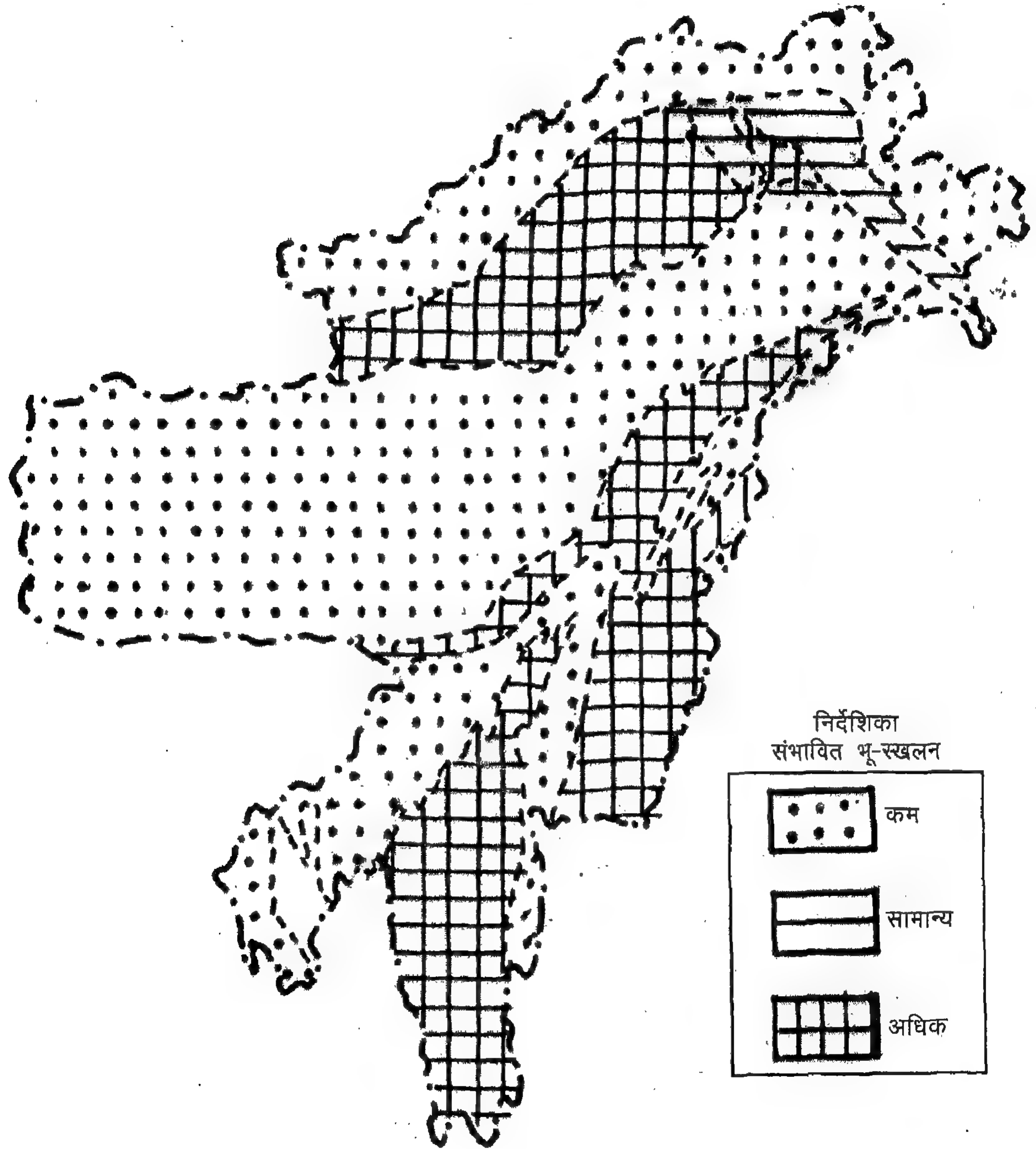
हिमालय, पश्चिमी घाट और नदी-घाटियों में प्रायः भू-स्खलन होते रहते हैं। चित्र 7.9 में उत्तर-पूर्व भारत के भू-स्खलन क्षेत्र प्रदर्शित हैं। ढालों पर से मृदा और चट्टानों का प्राकृतिक रूप से हट जाना बृहत् क्षरण कहलाता है। पर्वतवासी प्राचीन काल से ही भू-स्खलन को आपदा के रूप में जानते-पहचानते रहे हैं। भारी वर्षा या हिमपात के दौरान तीव्र पर्वतीय ढालों पर चट्टानों का खिसकना या टूटना विशेष रूप से खतरनाक हो जाता है।

भू-स्खलन का परिमाण, ढाल की तीव्रता, चट्टानों के संस्तरण तल, वनस्पति आवरण की मात्रा तथा चट्टानों में वलन और भ्रंशन के परिमाण पर निर्भर करता है। भू-स्खलन के दौरान चट्टानें ही टूट कर अपने साथ मृदा और मलबे को ले जाती हैं। भू-स्खलन को प्रेरित करने का मुख्य कारण ढाल के ऊपर स्थित 'बोझ' तथा जल जैसे स्नेहक की उपस्थिति ही है। इसे 'मृदा सर्पण' कहते हैं। पर्वतीय ढालों पर चट्टानों के बीच में भरे जल के जमने और पिघलने से चट्टानें टूट जाती हैं और ढालों पर नीचे की ओर खिसक जाती हैं। मुलायम पारगम्य, चट्टानों में रिसकर जमा हुए हिम या बर्फ या जल का बोझ भी पर्वतीय ढालों पर चट्टानों के टूटने और खिसकने का कारण है।

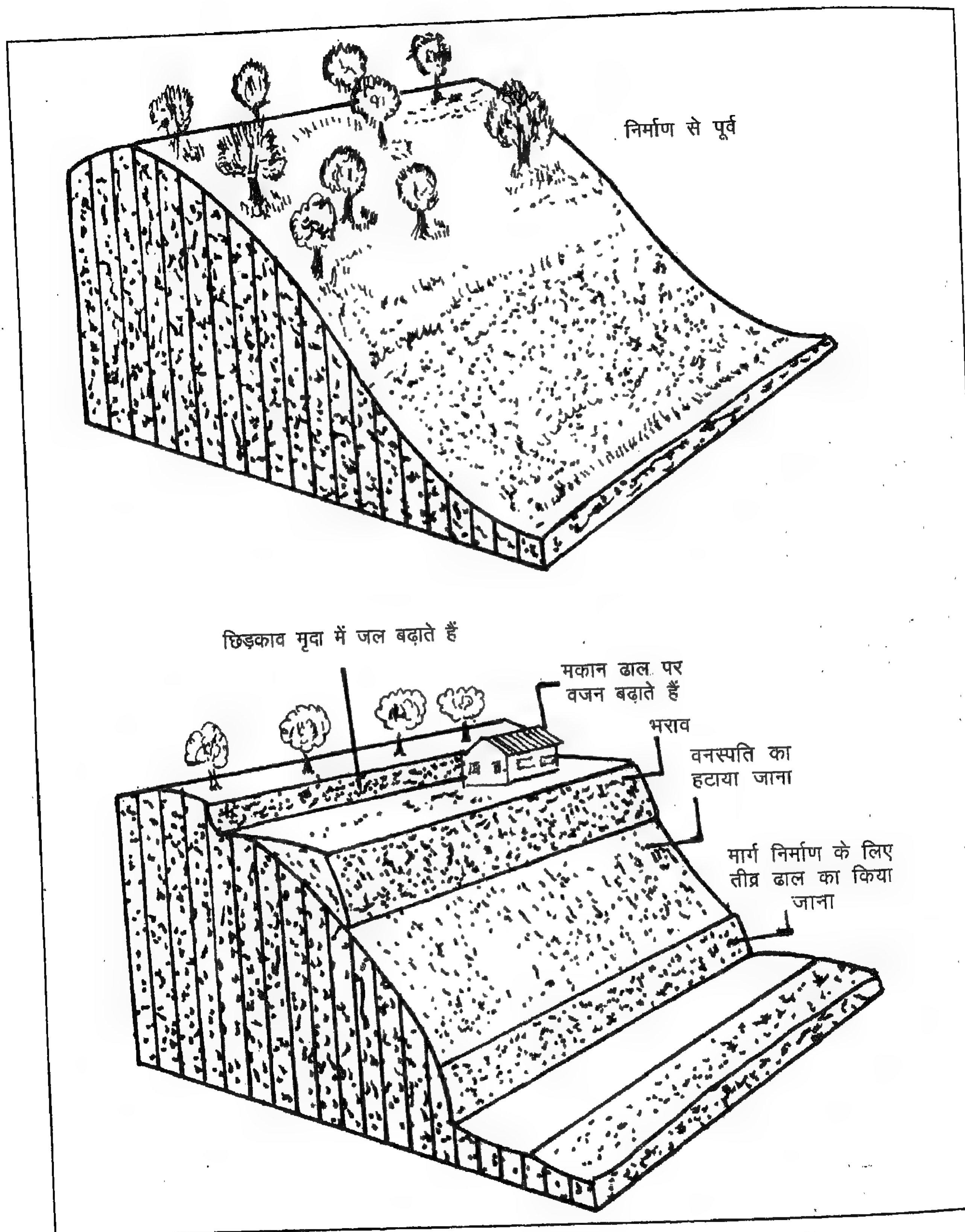
भू-स्खलन के अन्य कारक हैं : ज्वालामुखी और भूकंप। अवसादी चट्टानों तथा तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में भूकंप के झटके, शैल संरचनाओं को विस्थापित करके गिरा देते हैं। समुद्र तट के निकट प्रायः समुद्री लहरें भृगुओं के आधार को काट देती हैं। इस प्रकार आधार पर कटे भृगु आगे की ओर निकले हुए झूलते रहते हैं और एक दिन टूटकर गिर जाते हैं। कन्नड़ तट पर ऐसे उदाहरण खूब देखे जा सकते हैं। भू-स्खलन वर्षा के दौरान अक्सर होते ही रहते हैं। इमारती लकड़ी के लिए वृक्षों को काटने से वन नष्ट हो जाते हैं तथा विकास कार्यों के लिए वनस्पति का आवरण हटा दिया जाता है। परिणामस्वरूप मृदा अपरदन होता है और ढाल अस्थिर हो जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि पर्वतीय क्षेत्रों में एक कि.मी. लंबी सड़क बनाने के लिए 40 से लेकर 80 हजार घन मी. मलबा हटाना पड़ता है। यही मलबा ढालों पर खिसककर कर नीचे चला जाता है, वनस्पति नष्ट हो जाती है तथा पर्वतीय सरिताओं के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

सड़कें और भवन बनाने के लिए लोग प्राकृतिक ढलानों को सपाट स्थिति में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पहाड़ी ढालों पर बृहतक्षरण और भू-स्खलन होने लगते हैं (चित्र 7.10)।

भू-स्खलनों का प्रभाव : भू-स्खलन मानव पर कहर ढा देते हैं, लेकिन वृक्षों और घास की जड़ों के जमने में बाधक मलबे से छुटकारा पाने का प्रकृति का तरीका भू-स्खलन



चित्र 7.9 उत्तर-पूर्वी भारत में भू-स्खलन प्रवण क्षेत्र



चित्र 7.10 ढलानों पर मानवकृत परिवर्तन। क्या ये भू-स्खलन रोक पाएँगे ?

हिमालय में भू-स्खलन से बने बाँधों का फटना

- 1893 में घोना भू-स्खलन बांध
  1968 में रेनी भू-स्खलन बांध
  1970 में बेलाकुची भू-स्खलन बांध
  1975 में पराचु भू-स्खलन बांध
  1978 में उत्तरकाशी भू-स्खलन बांध
  1993 में झाकड़ी भू-स्खलन बांध
  1998 में गोविंदघाट भू-स्खलन बांध
- गढ़वाल हिमालय की अलकनंदा की घाटी में स्थित ताँगरी सर्पण, पातालगंगा सर्पण और हेलौंग सर्पण, 1970 में मिट्टी के बांध के फटने से आई बाढ़ के कारण पुनः सक्रिय हो गए हैं।

ही है। भू-स्खलन और बृहत क्षरण के परिणामस्वरूप ही प्रायः नए ढालों का निर्माण होता है। भू-स्खलनों द्वारा गिराए गए मलबे से नदियों के मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो जाते हैं। सन् 1893 में गढ़वाल में 500 करोड़ टन चूर्णित पाइराइट युक्त शेल चट्टानें तथा डोलोमाइट वाला चूनापत्थर 45^0 के ढाल पर से सरकता हुआ बिरहीगंगा में जा गिरा। इस मलबे से एक अस्थायी बांध बन गया, नदी का मार्ग रूक गया तथा बांध के पीछे एक झील बन गई बिरही ताल। कुछ समय पश्चात ऐसे बांध टूट जाते हैं और झील का पानी बह जाता है। सारणी 7.3 में विगत 30 वर्षों के दौरान महाविनाशक भू-स्खलनों का ब्यौरा दिया गया है।

आपदा प्रबंधन

आपदा प्रबंधन में निवारक और संरक्षी उपाय, तैयारी तथा मानवों पर आपदा के प्रभाव को कम करने के लिए राहत कार्यों की व्यवस्था, तथा आपदा प्रवण क्षेत्रों के सामाजिक आर्थिक पक्ष शामिल किए जाते हैं। आपदा प्रबंधन की संपूर्ण प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रभाव चरण, पुनर्वास और पुनर्निर्माण चरण तथा समन्वित दीर्घकालीन विकास और तैयारी चरण।

प्रभाव चरण के तीन अंग हैं : आपदा की भविष्यवाणी करना, आपदा के प्रेरक कारकों की बारीकी से खोजबीन, तथा आपदा आने के बाद प्रबंधन के कार्य। जलग्रहण क्षेत्र में हुई वर्षा का अध्ययन करके बाढ़ की भविष्यवाणी की जा सकती है। उपग्रहों के द्वारा चक्रवातों के मार्ग, गति आदि की खोज-खबर ली जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त सूचनाओं के आधार पर पूर्व चेतावनी तथा लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के प्रयत्न शुरू किए जा सकते हैं। आपदा के लिए जिम्मेदार कारकों की बारीकी से की गई खोजबीन

सारणी 7.3 : विशाल भू-स्खलन

वर्ष	*स्थिति*	*प्रभाव*
1971	अलकनंदा (उत्तरांचल)	भारी वर्षा और ढालों पर अपरदन से नदी के आस-पार अस्थायी बांध बन गया। पानी नदी के किनारे तोड़ फूट पड़ा। इससे धन-जन की अपार क्षति हुई। संचार के मार्ग अवरुद्ध हो गए। बेलाकुची गाँव पूरा का पूरा पानी में बह गया। इसे अलकनंदा त्रासदी के नाम से जाना जाता है।
1993	रतिघाट (उत्तरांचल)	नैनीताल के पर्वतीय क्षेत्र लगभग एक सप्ताह तक बाहरी दुनिया से कटे रहे थे। मलबा हटाने के काम में पाँच बुलडोजर रात-दिन जुटे रहे। मूसलाधार वर्षा के बाद भू-स्खलन हुआ था।
1993	नीलगिरी की पहाड़ियाँ (तमिलनाडु)	भू-स्खलनों में 40 लोग मर गए। 600 परिवारों को हटा कर सुरक्षित स्थानों पर भेजना पड़ा। सड़कें टूट गईं और मकान ढह गए। मूसलाधार वर्षा के बाद भू-स्खलन हुआ।

उत्तरांचल में फूलों की घाटी के मार्ग का यात्रा वृत्तांत

पहला भू-स्खलन देखते ही हमारे सारे अक्खड़पन का भुरता बन गया। ऐसा लगता था मानों पूरा पहाड़ ही प्रतिशोध के लिए पुकारता हुआ नीचे आ गिरा है। मानव द्वारा मार्ग पर जो कुछ भी बनाया या खड़ा किया गया था, उस सबको यह भू-स्खलन निगल गया है। डरते-सहमते रास्ता पार किया। निरंतर ऊपर देखते रहे, कहीं और चट्टानें तो नीचे नहीं आ रहीं। यह 9 कि.मी. लंबा रास्ता था, जिस पर भू-स्खलन का मलबा छोटी-बड़ी चट्टानों, कंकड़ों, पत्थरों के रूप में बिखरा पड़ा था। इसे पार करके ही अपने गंतव्य हेलौंग तक पहुँच पाए।

लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने, भोजन, वस्त्र और पेय जल की आपूर्ति के लिए कार्यदल नियुक्त किए जा सकते हैं। आपदाएँ मृत्यु और विनाश के चिह्न छोड़ जाती हैं। प्रभावित लोगों को चिकित्सा सुविधा और अन्य विभिन्न प्रकार की सहायता की जरूरत होती है। दीर्घकालीन विकास के चरण के अंतर्गत विविध प्रकार के निवारक और सुरक्षात्मक उपायों की योजना बना लेनी चाहिए।

संसार के लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए यूनेस्को ने 1990-2000 के दौरान प्राकृतिक आपदा राहत दशक मनाया था। संसार के अन्य देशों के साथ भारत ने भी दशक के दौरान अक्तूबर में विश्व आपदा राहत दिवस मनाया था। इस अवसर पर भूकंप, बाढ़ और चक्रवात प्रवण क्षेत्रों के लोगों के लिए भारत सरकार ने जो करणीय और अकरणीय कर्म प्रचारित किए थे, वे बहुत उपयोगी हैं।

भूकंप

तत्काल कार्यवाही

घर के अंदर

- बाहर मत भागिए, अपने परिवार को दरवाजों और मेजों के नीचे, पलंगों पर लेटे व्यक्ति को पलंगों के नीचे ले आइए, खिड़कियों और चिमनियों से दूर रहिए।

घर के बाहर

- भवनों, ऊँची दीवारों, बिजली के झूलते तारों से दूर रहिए। क्षतिग्रस्त भवनों में दुबारा मत जाइए।

वाहन-चलाते समय

- अगर कार या बस में यात्रा करते समय भूकंप के झटके महसूस होने लगें तो, ड्राइवर को वाहन के रोकने के लिए कहिए। वाहन में ही बैठे रहिए।

तत्काल करने योग्य कार्य

- घर की सभी आग बुझा दीजिए तथा हीटर बंद कर दीजिए।
- यदि घर क्षतिग्रस्त हो गया है, तो बिजली, गैस और पानी बंद कर दीजिए।
- यदि घर में लगी आग को तत्काल न बुझाया जा सके, तो तुरंत घर छोड़ दीजिए।
- गैस जलाने के बाद यदि गैस के रिसाव का पता चले तो घर से निकल जाइए।
- पानी बचाइए तथा सभी आपातकालीन बरतन भर लीजिए।
- पालतू और घरेलू जीव-जंतुओं (कुत्ता, बिल्ली और गोपशु) को बंधन मुक्त कर दीजिए।

बाढ़

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनिए।
- बिजली के सभी उपकरण बंद कर दीजिए। घर के सभी कीमती सामान और कपड़े बाढ़ के पानी की पहुँच से दूर रखिए। ऐसा तभी कीजिए जब बाढ़ की चेतावनी मिली हो या आपको आशंका हो कि बाढ़ का पानी आपके घर में घुस जाएगा।
- वाहनों, फार्म के पशुओं तथा आसानी से उठाई जा सकने वाली वस्तुओं को निकट की ऊँची भूमि पर पहुँचा दीजिए।
- खतरनाक प्रदूषण को रोकिए।
- सभी कीटनाशकों को पानी की पहुँच से दूर रखिए।
- यदि आपको घर छोड़ना पड़े, तो बिजली और गैस बंद कर दीजिए।
- घर छोड़ने की मजबूरी में सभी बाहरी खिड़कियों और दरवाजों पर ताले लगा दीजिए।

- यदि आप बच सकते हैं, तो बाढ़ के पानी में पैदल या कार में बैठकर प्रवेश मत कीजिए।
- अपने आप बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र में इधर-उधर मत घूमिए।

चक्रवात

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनते रहिए। बचाव के लिए पर्याप्त समय दीजिए। चक्रवात कुछ घंटों में मार्ग की दिशा, गति तथा तीव्रता बदल सकता है। अतः नवीनतम सूचना के लिए रेडियो को निरंतर चलाए रखिए।

यदि आपके क्षेत्र के लिए तूफानी पवनों या प्रबल झंझा की भविष्यवाणी की गई हो तो :

- खुले तख्ते, नालीदार टीन, खाली डिब्बे या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ, जो पवन के साथ उड़कर खतरा बन सके, बांध दीजिए या स्टोर में रख दीजिए।
- खिड़कियों को टूटने से बचाने के लिए उन्हें बंद रखिए।
- निकट के सुरक्षित स्थान में चले जाइए या किसी अधिकार प्राप्त सरकारी संस्था के आदेश पर क्षेत्र को छोड़ दीजिए।
- जब तूफान आ ही जाए, तो घर के अंदर रहिए। अपने घर के सबसे मजबूत भाग में शरण लीजिए।
- रेडियो सुनिए और निर्देशों का पालन कीजिए।
- यदि छत उड़ने लगे, तो मकान के सुरक्षित भाग की खिड़की को खोल दीजिए।
- यदि आप खुले में फंस गए हैं, तो शरण खोजिए।
- तूफान के दौरान पवनों के शांत होने पर घर से बाहर या पुलिन (beach) पर मत जाइए। चक्रवातों के साथ प्रायः समुद्र या झील में ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

(i) प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते हैं ?
(ii) कुछ सामान्य आपदाओं के नाम बताइए।
(iii) संकट किसे कहते हैं ?
(iv) भूकंप का परिमाण क्या होता है ?
(v) भूकंप की तीव्रता किसे कहते हैं ?
(vi) भारत के अधिक और अत्यधिक भूकंपीय खतरे वाले क्षेत्रों के नाम बताइए।
(vii) चक्रवात की उत्पत्ति के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ कौनसी हैं ?
(viii) चक्रवात की गति और सामान्य अवधि कितनी होती है ?
(ix) भारत के बाढ़ प्रवण क्षेत्रों के नाम बताइए।
(x) उन दो मानवीय कारकों के नाम बताइए जिनके कारण भारत में बाढ़ के प्रकोप में वृद्धि हुई है।
(xi) तटबंधों ने बाढ़ की समस्या को और अधिक भीषण कैसे बना दिया है?
(xii) भू-स्खलन किसे कहते हैं ?
(xiii) भू-स्खलन के मानव पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
(xiv) आपदा प्रबंधन किसे कहते हैं ?

2. निम्नलिखित में अंतर बताइएः

(i) आपदाएँ और संकट
(ii) शुष्कता और सूखा
(iii) प्राकृतिक नदी तटबंध और तटबंध

(iv) भू-स्खलन और बृहत क्षरण
(v) भूकंप का परिमाण और तीव्रता।

3. उन कारकों का वर्णन कीजिए जो कि किसी देश में आपदा (संकट) की तीव्रता को प्रभावित करते हैं।
4. बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र में लोगों के लिए क्या करणीय और क्या अकरणीय है ?
5. मानव भूकंपों के साथ कैसे रह सकता है ? कुछ उपाय सुझाइए।
6. भू-स्खलनों की आवृत्ति कम करने के लिए कुछ उपाय सुझाइए।

परियोजना कार्य

भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए :

(i) अधिक खतरे वाले भूकंपीय क्षेत्र
(ii) उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों से पीड़ित क्षेत्र
(iii) ऐसे क्षेत्र जहाँ प्रायः भू-स्खलन आते हैं
(iv) उत्तर प्रदेश के बाढ़ प्रवण क्षेत्र
(v) एक सूखा प्रवण क्षेत्र।

8. आपने जितनी आपदाओं के विषय में पढ़ा है, उनमें से किसी एक पर स्क्रेप बुक (कतरन पुस्तिका) बनाइए।

परिशिष्ट 1 : भारत में वन क्षेत्रों का वितरण

(सभी क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. में दिए गए हैं)

राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	*भौगोलिक क्षेत्रफल*	*आरक्षित वन*	*सुरक्षित वन*	*कुल वन क्षेत्र*	*भौगोलिक क्षेत्रफल का प्रतिशत*	*वास्तविक वन*	*भौगोलिक क्षेत्रफल का प्रतिशत*
आंध्र प्रदेश	275,045	50,479	12,365	63,814	23.20	44,229	16.07
अरुणाचल प्रदेश	83,743	15,321	8	51,540	61.54	68,847	82.21
असम	78,438	18,242	3,934	30,708	39.15	23,668	30.17
बिहार व झारखंड	173,877	5,051	24,168	29,226	16.81	26,474	15.22
दिल्ली	1,483	78	7	85	2.83	88	5.93
गोआ	3,702	165	0	1,424	38.46	1,251	33.79
गुजरात	196,024	13,819	997	19,393	9.89	12,965	6.61
हरियाणा	44,212	247	1,104	1,673	3.78	964	2.18
हिमाचल प्रदेश	55,673	1,896	31,473	35,407	63.6	13,082	23.49
जम्मू और कश्मीर	222,236	20,182	0	20,182	9.08	2,441	1.09
कर्नाटक	191,791	28,611	3,932	38,724	20.19	32,467	16.92
केरल	38,863	11,038	183	11,221	28.87	10,323	26.56
मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़	443,446	82,700	66,678	154,497	34.84	1,31,830	29.72
महाराष्ट्र	307,713	48,373	9,350	63,842	20.75	46,672	15.16
मणिपुर	22,327	1,463	4,171	15,154	67.87	17,384	77.86
मेघालय	22,429	981	12	9,496	42.34	15,633	69.69
मिजोरम	21,081	7,127	3,568	15,935	75.59	18,336	86.97
नागालैंड	16,579	86	507	8,629	52.04	14,164	85.43
उड़ीसा	155,707	27,087	30,080	57,184	36.73	47,023	30.19
पंजाब	50,362	44	1,107	2,901	5.76	1,412	2.80
राजस्थान	342,239	11,585	16,837	31,700	9.26	13,871	4.05
सिक्किम	7,096	2,261	285	2,650	37.34	3,118	43.94
तमिलनाडु	130,058	19,486	2,528	22,628	17.4	1,76,078	13.13
त्रिपुरा	10,486	3,588	509	6,293	60.01	5,745	54.78
उत्तर प्रदेश व उत्तरांचल	294,411	36,425	1,499	51,663	17.54	34,016	11.55
पश्चिम बंगाल	88,752	7,054	3,772	11,879	13.38	8,362	9.42
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	8,249	2,929	4,242	7,171	86.93	7,605	92.19
चंडीगढ़	114	31	0	31	27.19	7	6.14
दादरा और नगर हवेली	491	198	5	203	41.34	202	41.14
दमण और दीव	112	0	0.7	0.7	0.62	3	2.67
लक्षद्वीप	32	0	0	0	0	0	0
पांडिचेरी	492	0	0	0	0	0	0
योग	**3,287,263**	**4,16,547**	**2,23,321**	**7,65,253**	**23.28**	**6,19,260**	**18.84**

स्रोत : राज्य और केंद्रशासित प्रदेश के वन विभाग: वन की दशाओं की एक रिपोर्ट (1999)

परिशिष्ट 2 : भारत के राष्ट्रीय उद्यान

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

1. कैम्पबेल खाड़ी
2. गलाथिया
3. महात्मा गांधी मेरीन
4. मिडल बटन द्वीप
5. माउंट हैरियेट
6. नॉर्थ बटन द्वीप
7. रानी झाँसी मेरीन
8. सैडल पीक
9. साउथ बटन द्वीप

अरुणाचल प्रदेश

1. मावलिंग
2. नामदफा

असम

1.. डिब्रू-सैखोवा
2. काजीरंगा
3. मानस
4. नमेरी
5. औरांग

आंध्र प्रदेश

2. कासु ब्रहमानन्द रेड्डी
3. महावर हरीना वनस्थली
4. मरुगवाणी
5. श्री वेंकटेश्वर

उड़ीसा

1. भीतरकणिका
2. सिमलीपाल

उत्तर प्रदेश

1. दुधवा

उत्तरांचल

1. कॉरबेट
2. गंगोत्री
3. गोविन्द
4. नन्दा देवी
5. राजाजी
6. वैली ऑफ फ्लावर्स (फूलों की घाटी)

कर्नाटक

1. अंशी
2. बांदीपुर
3. बनेरघट्टा
4. कुद्रेमुख
5. नागरहोल

केरल

1. एराविकुलम्
2. पेरियार
3. साइलैंट वैली

गोआ

1. मोल्लेम

गुजरात

1. बांसदा
2. गिर
3. मेरीन (कच्छ की खाड़ी)
4. ब्लैकबक

छत्तीसगढ़

1. इन्द्रावती
2. कंगेर घाटी
3. संजय

जम्मू और कश्मीर

1. सिटी फारेस्ट (सलीम अली)
2. डचीगाम
3. हेमिस
4. किस्तवार

झारखंड

1. बेतला

तमिलनाडु

1. गुइन्डी
2. गल्फ ऑफ मन्नार मैरीन (मन्नार की खाड़ी)
3. इन्दिरा गाँधी (अनैमलाई)
4. मुदुमलाई
5. मुकुर्थी

नागालैंड

1. इंटांकी

पश्चिम बंगाल

1. बुक्सा
2. गोरू मारा
3. नेवरा वैली
4. सिंहलीला
5. सुंदरबन

बिहार

1. वाल्मीकि

मध्य प्रदेश

1. बांधवगढ़
2. फॉसिल
3. कान्हा
4. माधव
5. पन्ना
6. पेंच (प्रियदर्शिनी)
7. संजय
8. सतपुर
9. वन विहार

मणिपुर

1. कैबुल-लामजाओ

महाराष्ट्र

1. गूगामल
2. नवेगाँव
3. पेंच
4. संजय गांधी (बोरिविली)
5. तदोबा

मिजोरम

1. मुरलेन
2. फवंगपुई ब्लू माउंटेन

मेघालय

1. बालफक्रम
2. नोक्रेक रिज

राजस्थान

1. डैजर्ट
2. केवलादेव घाना
3. रणथम्भौर
4. सरिस्का

सिक्किम

1. कांचनजुंगा

हरियाणा

1. सुल्तानपुर

हिमाचल प्रदेश

1. ग्रेट हिमालयन
2. पिन वैली

परिशिष्ट 3 : भारत की प्रमुख भूकंपीय आपदाएँ

तिथि और समय	स्थिति	रिक्टर पैमाने पर परिमाण	अधिकेंद्र	मरने वालों की संख्या	क्षति
15 जुलाई 1720, 06:20 घंटे	दिल्ली	6.5	लाल किले के निकट, दिल्ली	12	भवनों को क्षति
1 सितबंर 1803, 00:30 घंटे	कुमाऊँ प्रदेश, उत्तरांचल	7.5	कुमाऊँ प्रदेश	200	अधिकतर गाँव नष्ट हो गए
16 जून 1819, 19:00 घंटे	अहमदाबाद (गुजरात)	8.0	निरुना से 9.5 कि.मी. पूर्व-दक्षिण पूर्व दिशा में	1,500-3,000	उपलब्ध नहीं
10 जनवरी 1869, 17:15 घंटे	कछार (असम)	7.5	कुंभीर से 9.4 कि.मी.	5	सिल्चर,सिल्हट, चेरापूंजी और शिलांग नगरों में भारी क्षति
12 जून 1897, 17:00 घंटे	शिलांग (मेघालय)	8.7	शिलांग के निकट	1,600	शिलांग,गोलपाड़ा, गुवाहाटी और नौगॉव में भवन नष्ट
4 अप्रैल 1905, 6:20 घंटे	कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)	8.0	कांगड़ा	19,000	1,600 गॉव धूल में मिल गए
2 जुलाई 1930, 3:23 घंटे	धुबरी (असम)	7.1	मेघालय के रंगरांग से 1.43 कि. मी.	उपलब्ध नहीं	धूबरी के अधिकतर भवन नष्ट हो गए
15 जनवरी 1934, 14:21 घंटे	बिहार-नेपाल	8.3	बिहार के डुग्मा से 7 7 कि.मी. दक्षिण-दक्षिण पश्चिम दिशा में	10,000	बिहार में मुंगेर और काठमांडू घाटी मे भटगॉव में भारी विनाश
15 अगस्त 1950, 19:39 घंटे	भारत-चीन सीमा	8.6	सीमा-भारत-चीन-सीमा	1,538	25 गॉवों में 3,000 मकान ढह गए
20 अक्तूबर 1991	उत्तरकाशी (उत्तरांचल)	6.6	गढ़वाल	1,000	1,000 गॉवों में संपत्ति का बड़े पैमाने पर विनाश
30 सितम्बर 1993, 3:36 घंटे	लातूर, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)	6.3	मटोला बुजुर्ग के पूर्व-दक्षिण पूर्व दिशा में	10,000	30,000 मकान ढह गए
22 मई 1997, 4:22 घंटे	जबलपुर (मध्य प्रदेश)	6.3	बरेला के दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम दिशा में	39	8,267 मकान या तो ढह गए या उनमें दरारें पड़ गईं
29 मार्च 1999, 00.35 घंटे	चमोली (उत्तरांचल)	6.8	अल्मोड़ा, भटवाड़ी	87	भारी विनाश, 1,000 मकान ढह गए
26 जनवरी 2001 8:46 घंटे	भुज (गुजरात)	7.9	कच्छ में भचाऊ के उत्तर-पश्चिम में	1,00,000	भारी विनाश, 3,48,000 मकान ढह गए

29. How should I take my departure at the end of the interview?

Do not linger on and waste the prospective employer's time. When the interview has come to its logical conclusion, get up and take your departure briskly as if you had other places to go. Even if you have not succeeded in getting the job, you should leave behind the best impression possible because you may want to follow up this employer as one of your future job prospects.

First impressions are important—so are last impressions.

CHAPTER VII

HOW CAN I OVERCOME COMMON DIFFICULTIES IN THE INTERVIEW?

1. How can I get by subordinates in order to see the right man?

If you have made proper preparation for the interview you will know the name of the right person to see and talk to about a job. Therefore, when you step in and are met by an information clerk, the doorman, or some other subordinate, your chances of seeing this man are enhanced by being able to say, "I have a matter to discuss with Mr. Jones. Would you please tell him that Mr. Smith is here to see him."

If you come in with some degree of self-assurance and can impress the information clerk with the idea that Mr. Jones will undoubtedly want to see you, it will improve your likelihood of getting to him without further interruption.

If the information clerk asks you what you want to see Mr. Jones about, you might reply: "I have a personal matter to discuss with him. I'm sure that Mr. Jones will see me if he knows I am here."

In this manner you may give the impression that Mr. Jones knows you and has some interest in you.

If the information clerk still persists and asks you, "Do you want to see Mr. Jones about a job?" it is not proper for you to misrepresent yourself. In doing so you are likely to hurt your chances of getting a job if you do get to see Mr. Jones. You might reply to such a question as follows:

"I would like to discuss with Mr. Jones a line of work which I know will interest him because of the opportunity it will afford him to make a good investment for the company in retaining my services."

Under any circumstance be courteous and respectful to any subordinate who may stand between you and the person you desire to see.

Good personal appearance will help you to properly impress subordinates. This is another reason for looking your best when you go out seeking a job.

It helps to have a letter of introduction to the man you want to see. If you approach the information clerk with such a letter this is practically a sure means of getting to the right man.

If you have an acquaintance who knows the right man, and if he is willing to call and arrange an appointment for you, the statement that you have an appointment with Mr. Jones will get you by the information clerk.

Use your ingenuity to avoid the necessity of walking in "cold" on a prospective employer, because, with many men applying for work, he may have given instructions to the information clerk that he has no time

to see job-seekers. Devising a way to get to see the right man is part of your job of preparing for the interview.

2. How can I make the best use of my time while waiting for my interview?

If you have to wait a few minutes before you can see the man you have come to interview, you can make very profitable use of those few minutes. The information clerk, or other employees who may be present, may drop some worth-while information if you engage them in conversation. Keep your ears and eyes open and observe anything which you may use to advantage in the interview.

If you happen to be waiting at some point where you can see the man whom you are going to interview through an open door, through a glass partition, or across the room, study him. Observe his mannerisms. If he is interviewing some one else, observe whether he does most of the talking or gives the applicant the chance to have his say without interruption. Watching him in action will give you a little more confidence, and helps you to make up your mind just how to meet him and deal with him.

3. If I am kept waiting for a long time before being interviewed, how should I react?

Maintain a cheerful attitude. Do not let the situation roil your disposition. If you lose patience you will be

handicapping yourself when the time comes for you to make your good impression on the interviewer.

It may be exasperating to have to sit around for an hour or two before the prospective employer calls you in. You must not, however, allow your exasperation to affect your pleasantness. If you do, you alone are the loser.

4. If I have been a "rolling stone," how can I avoid my having changed jobs frequently create the wrong impression on the prospective employer?

Whether he says anything about it or not, you should take it for granted that he will wonder just why you have moved about from job to job so often. Therefore, it is best to anticipate his thoughts in this matter and make some statement about it yourself. You might say something like this:

"You will notice, Mr. Jones, that I have had experience on a good number of jobs. Sometimes an employer considers this a disadvantage because he thinks a man may not stay on the job if he hires him. In my case, however, I feel that I have been able to obtain a well-rounded-out experience in this manner and that I can prove myself a much more valuable employee for you as the result of this varied experience. Now, I have come to the point where I am determined to settle down and I'm anxious to get a job where I can stay permanently and make my background of experience a real asset to you as well as to myself."

5. If the interviewer steers the discussion onto general conversation and away from immediate consideration of the job in question, what precautions should I take to avoid making mistakes?

A good interviewer will always, at some time during the interview, attempt to get the applicant to talking on general questions because he knows the applicant will inadvertently reveal a great many things about himself under such circumstances. An interviewer uses this device in order to draw out the applicant and to learn his viewpoints on questions which may not appear to have direct bearing upon the job. An applicant is very likely to "let down the bars" and talk too freely at such a time. Do not give the impression that you cannot express yourself, or that you are "dumb," but do choose your conversation cautiously.

If such a situation arises in an interview you should be careful to make your general conversation a credit to yourself. By the things you say during such general conversation, the prospective employer will judge your character, how you spend your spare time, your standards of honesty, your thoroughness, your attitude towards many things which have a bearing upon your value as an employee.

If you are skillful you can turn this part of the interview to distinct advantage to yourself. Seize upon this general conversation as the opportunity to get across to the interviewer the impression that you are a wholesome, healthy-minded, progressive, open-minded indi-

vidual. At the same time, be on your guard that you do not give him the wrong impression and let him conclude that you are careless, irresponsible, or indifferent.

6. If there is a lull in the interview, how should I take advantage of it?

Use the opening without delay. Say that if you are selected for a job you will work hard to make sure that the employer will realize a profit on your services.

This is a point which you should make certain to establish very definitely at some time during the interview.

The prospective employer will appreciate the attitude of an applicant who realizes that the employer's interests are just as important as his own. It will help to convince him that you realize the responsibility of an employee to earn his pay and to perform a sufficient quantity of good work to make your wages a profitable investment. Too many applicants give the impression that all they are interested in is the job with which to support themselves, and they overlook the fact that any business man can only remain in business if he does so at a profit.

7. If the interviewer seems to have difficulty thinking of questions to ask me, beyond the regular questions as to age, past jobs, and education, what may this indicate?

It probably indicates that he is having a difficult

time to form any definite impression of you. This should be your cue to volunteer information which may stimulate further questions—questions the answers to which will help you to make a favorable impression.

Perhaps you should use such an opportunity to ask the interviewer one or two questions which will steer the discussion onto some part of your own experience or training wherein your qualifications are particularly strong.

8. Should I try to take control of the interview away from the prospective employer?

If the interviewer seems to have a definite line of questions, or a well-defined plan for going through with the interview, the thing for you to do is to follow along with him. If you feel that the interviewer is travelling in a direction which is somewhat unfavorable to you, you can, by your answers, introduce ideas that will be to your advantage and which will tend to steer the interview in the direction of your strong points.

In using these tactics, however, be careful not to create the impression that you are evading your weak points. If the interviewer gets this impression he will become all the more persistent in putting questions to you to bring out your weak points. Remember, it is your weak points that the interviewer is trying to discover. He wants to avoid the mistake of putting a man on his payroll who may not make good.

9. What are some of the questions to which the interviewer will seek an answer, but which he will not ask me outright?

As you sit before the prospective employer, his mind will be full of questions, the correct answers to which he wants, but knows he cannot expect to have answered by you in so many words. Following are some of the typical questions which the interviewer will not ask you directly, but upon which your chances of getting a job largely depend:

1. I wonder if this is an industrious man?
2. Will he make a loyal employee?
3. Is he alert?
4. Is he an open-minded sort of person?
5. Is he observing?
6. Does he have initiative?
7. Is he the kind who will talk too much?
8. Has he capacity to learn?
9. Will he be able to grow and advance in our organization?
10. Is he enthusiastic?
11. Has he got good common sense?
12. Does he really know his own mind?
13. Will he be a good team worker?
14. How will he fit in with our people?
15. Is he honest and trustworthy?
16. Will he be a safe worker?

17. Did he really leave that last job of his own accord, as he states, or was he fired?
18. Is he stubborn?
19. Will he stick if I give him a job?
20. Will he do his work thoroughly?
21. Will he take pride in good workmanship?
22. Will he take a real interest in our work?
23. Has he physical defects that are not apparent to the eye?

These are the kinds of questions the interviewer will be trying to settle in his own mind. They are questions which you certainly will want answered to his satisfaction. Since he does not ask you these questions directly, you cannot answer them directly. Therefore, you must, in your conversation and in your answers to questions he does ask, say things which will enable him to decide how you will measure up to such questions.

In preparing for your interview you should run over such questions as these and have them well in mind so that you will not overlook answering them indirectly in the course of the interview.

10. If the interviewer seems unnecessarily inquisitive, or appears to doubt my statements, what should be my reaction?

Avoid all appearance of annoyance. Maintain a strictly courteous and pleasant attitude. If he appears to doubt you, it is probably your own fault. Evidently

you have not given him the right impression. Something about your statements fails to ring true.

If he appears to be inquisitive, remember that he has a right to be inquisitive about you, your experience, your qualifications, and other points which have a bearing upon your value as an employee. Your statements must be clear, complete, concise, and consistent so that you do not excite the suspicions of the interviewer.

11. What should be my attitude when I am treated gruffly and discourteously?

Provided this treatment does not make you decide that you do not want a job where people are treated in this fashion, you should remain unruffled and respectful. If gentlemanly conduct on your part does not bring from the interviewer a similar attitude, then you should perhaps be thankful that you do not get the job.

Sometimes an interviewer acts gruffly with a purpose. It may be his way of trying out the applicant's self-control. He may want to see how flexible you can be in the face of trying situations.

You have everything to gain and nothing to lose by courteous and gentlemanly conduct, no matter what may be the treatment accorded you by the interviewer.

12. How shall I answer the question, "Why don't you go back to the place you worked before and get a job?"

Tell the truth.

The interviewer may know the reason before he asks you and is just curious to see how you will answer the question. He may know that the company where you worked previously is operating on a much reduced basis.

If there is some good reason why you do not want to go back to work for your previous employer, state your reasons but be very careful not to speak with bitterness or harshness about your previous employer, even though you may feel justified in doing so. Do not knock, complain, or criticize past employers, because to do so may give the impression that you are a chronic kicker.

13. What may happen if I become argumentative in the interview?

You will probably lose any chance you may have had of getting a job. The interviewer will immediately set you down as a "back-talker."

Even though the interviewer may make a statement which you know is incorrect, and even though you know that you can prove that he is wrong, there is little to be gained by proceeding to do so. You might win the argument, but you are almost certain to lose the job.

The interviewer may deliberately try to lead you into an argument, or he may make a misstatement purposely just to see if you know better, and if you do know better, how you will handle yourself. Therefore, you should make your replies tactfully. Avoid flat contradiction. You might make some such statement as, "I am a little

rised, Mr. Jones, at what you have just said, because in my own particular experience it has appeared to me that such and such was the case."

14. What are the dangers of talking too much?

If you talk too much you will place yourself at a distinct disadvantage. You will give the prospective employer too many opportunities to judge your weak points. You are almost certain to show up certain shortcomings. You will make a much better impression if you make your statements concise and to the point. Say enough to indicate that you are well qualified and that you know what you are talking about.

The skillful interviewer will sit back and let a too-talkative person talk himself right out of a job. There is a temptation, sometimes, to talk too much, particularly if one is over-anxious to impress his knowledge upon the listener. Talkative people seldom make a good impression in an employment interview.

15. How should I handle myself in a situation where more than one man interviews me at a time?

In such a situation you will be at a psychological disadvantage. Subconsciously you will feel that disadvantage which one man feels when pitted against two. Just realize that the disadvantage is more imaginary than real.

When being interviewed by two persons at the same time, try to divide your attention evenly between them.

This is particularly true if you are not certain which one of the two is going to have most authority in deciding whether you will get a job. You are likely to impress your personality on the one to whom you direct most of your conversation. The person whom you leave out of your consideration may, consequently, rate you much lower than the person to whom you direct your attention. You cannot afford to take such a chance.

If you are being interviewed by two men, make sure what position each holds as early as you can in the interview. This will help you to decide how you should distribute your attention between them. If you conclude that one of the men is the person who will eventually decide on your case, concentrate on him. Do not concentrate, however, to the complete exclusion of the other. Both of them need to be sold. Otherwise they would not both be interviewing you.

16. If, after being interviewed by one man, I am passed along to interview a second man, how should I conduct myself in this second interview?

Be careful that you do not "let down" when you come to your second interview. Proceed, just as aggressively as in the first interview, to present your case completely, convincingly, and favorably. You should take courage when you come to the second interview, because it is evident by that time that you are being seriously considered for a job. Apparently you have made a good impression on the first interviewer or he

would not have sent you to the second. This should stimulate you to do your best.

Do not let it over-stimulate you, however. Do not become too talkative in the second interview. Play your cards just as you did in the first interview, because it is evident that your tactics there were successful.

In the second interview adjust yourself, your statements, and your tactics to the position and personality of the second person. Give consideration to his function in the organization. Consider what particular part of your experience may impress him most, by reason of his position, and state your case accordingly.

17. Why should I avoid, if possible, facing a strong light during an interview?

Facing a strong light will put you at a psychological disadvantage. If the interviewing place is so arranged that the interviewer has his back to the light and you face the light, it is difficult for you to see his eyes. Subconsciously you are made uneasy by this situation, and perhaps you do not realize just why.

Some interviewers deliberately arrange their offices in order to put the applicant at a slight disadvantage.

A boxer does not watch his opponent's fists—he watches his eyes. A strong light shining full in your face will make you uncomfortable and fidgety. This is particularly true in an interview situation when you are making a special effort to be calm and natural.

18. If I have some impediment in speech, physical handicap, or look older or younger than my age, how can I prevent this from causing the prospective employer to misjudge me for the job for which I am applying?

Instead of sitting through the interview and wondering what the interviewer thinks about your impediment, it is better for you to bring the subject up yourself, particularly if the impediment has little bearing upon your ability to do the job you are seeking.

I recall the instance of a slightly tongue-tied applicant for a copy-writing job in an advertising agency who, at the outset of the interview, humorously passed the remark, "Fortunately, Mr. Jones, I don't write my advertisements with my tongue, so my impediment in speech won't cramp my style."

If you realize that you look older than your age, and if it is to your advantage in the situation to establish the fact that you are not so old as you look, do not hesitate to remark that while you may appear to be older, your age is actually a certain number of years. Even then the interviewer may suspect that you are trying to establish your age as being less than it really is. I have known applicants who carry a copy of their birth certificate with them.

The point is that it is better for you to bring up the subject of an impediment or physical handicap and have that factor cleared up early in the discussion rather than to let it hang over you throughout the entire in-

terview and handicap you in your best efforts to sell your services.

19. How should I answer the question "how much pay do you expect?"

In answering this question you will not want to hamper yourself by asking too much or too little. If you ask too much you may be no longer considered for the job. If you ask too little, the prospective employer may under-estimate your actual worth and ability.

Perhaps it would be better to reply as follows:

"I am more interested in the opportunity to prove my ability and value to you, Mr. Jones, than I am in the question of my starting pay. Because I am confident that I can prove my worth to you, I am willing to start at whatever pay you feel is fair, with the understanding that you will pay me what I am actually worth as soon as you have had the opportunity to judge my value to you."

However you feel you should answer the question, under the circumstances, be sure that you make your statement in such a way as to indicate that you are confident that you will prove a good investment for the employer at any rate of pay he deems fair.

20. What can I do to enhance my chances of getting a favorable decision at the end of the first interview?

The test of good salesmanship is to "get the cus-

tomer's name on the dotted line." You, too, should attempt to reach the point in the first interview where the prospective employer is ready to offer you the job. In the case of selling your services, however, it will not do to try to put quite the same high-pressure salesmanship on "closing the deal" as the salesman of commodities may exert.

If there is definitely a job open for which you are being considered, it is proper, as you reach the close of the interview, to state that you hope you have demonstrated your ability to fill the job successfully and that you are ready to start work whenever the employer desires. Show by your attitude that you are highly desirous of "getting into the harness" and setting out to get results. Show some enthusiasm for the work. Make the interviewer realize that you are sincerely interested in the job, and that it will absorb your full attention and best efforts.

If the prospective employer states that he has other applicants to consider, there is nothing for you to do but accede to his desires in that respect. Before leaving, however, try to make some appointment to see him again before he really decides on a man. In the meantime you will have an opportunity to prepare yourself for a second interview, at which time you can be ready to bring forth additional reasons why you are the man for the job.

21. What impression will I make if I linger and take up the prospective employer's time unnecessarily?

Such tactics on your part will not make a good impression. When you sense that the interview has accomplished all that it can, the time has come for you to take your departure. The interviewer will rate you as a much more intelligent person if you have the good sense to appreciate that his time is valuable and that you should not waste it.

22. How do you expect me to remember all of these "do" and "don'ts" when I get into the heat of an interview?

If your preparation for the interview has been thorough and if you have thought out the statement of your case carefully in advance, you will do yourself justice.

The writing out of your experience record and qualification sheet should be the key to your conduct of your side of the employment interview. If you present a copy of it to the interviewer, it is very likely that the interview will automatically tend to follow the outline of your qualifications and experience as set forth on your experience record sheet.

Another device sometimes used successfully by job-seekers is to have a few notes written out to which they can refer inconspicuously during the course of the interview to make sure that they cover all points which they want to be sure to present.

Chapter VIII

HOW SHOULD I FOLLOW UP MY JOB PROSPECTS?

1. How can I pave the way to follow up a prospective employer?

Just as you are leaving, at the end of an interview with a prospective employer, inquire tactfully if it will be convenient for him to see you again on a certain day. It will be to your advantage to make a fairly definite appointment, if possible, to call back on him at a specified time.

This suggestion applies, of course, to a situation in which there is a job open for which you are under consideration. The prospective employer has probably informed you that he has other candidates to consider before he will come to a final decision.

If the situation is one in which there is no definite job open, then you should suggest that you would like his permission to get in touch with him from time to time because his company is one in which you are very much interested and with which you would be highly pleased to make a connection.

Suggest that you will be very considerate of his time.

2. Why may it help my chances to get a job to tell the prospective employer when I will call back?

There is the possibility that if a job comes open in the meantime he may not fill it until you call back. Furthermore, there is greater likelihood that he will remember you if at the time of your interview you fix in his mind the idea that he will see you again. If he bids you good-by with the idea that he has seen you for the last time, it is natural that you will pass out of his mind the more quickly and completely.

If you do state when you will see him again, be certain that you keep your word. If something interferes with your calling back at the specified time, take the trouble to call him on the telephone, or drop him a line, stating why you are unable to come at the time you said you would, and suggesting a time at which you will call on him. The fact that you call him and tell him you will be unable to keep the appointment will create the impression that you are certainly a person of your word and one who is not careless about appointments and promises.

3. What should I be sure to do after an interview?

After an interview—not later than some time the same day—make necessary notes on the interview. In fact, it is a good idea to take out your prospect card at the time you tell the prospective employer when you expect to call back, and jot down the date in his pres-

ence. This will give him an opportunity to observe that you are systematic and business-like.

In making notes after an interview, jot down points which you may have overlooked during the interview, so that you will be sure to bring them up the next time you see the man. Include in your notes, also, any points which your observation during the interview has indicated will be helpful in following up the prospect.

Making these brief notes will be helpful to you in your follow-up work, particularly if you are as busy calling on prospective employers as you should be. After calling on fifteen or twenty persons you will find that your recollection of just what transpired in each case will become hazy unless you have some reminder jotted down. Here again I advise you to follow the effective tactics of a successful salesman.

4. If I fail to get the job, what consideration should I give to the possible reasons why the prospective employer turned me down?

Review in your mind the events of the interview. Consider what things you may have said or done which may have influenced the employer unfavorably. If you realize that you created the wrong impression in certain ways, it is up to you to change that impression the next time you call back.

Do not be misled by reasons he may have given you for not employing you. An employer does not like to turn a man down who is applying for a job. It is much

more pleasant to be able to give a man a job. It is the usual thing to try to "let an unchosen applicant down easy." The prospective employer may tell you that he is sorry, but there are no jobs open.

If you accept that reason too readily, you will not be likely to analyze with sufficient care the possible mistakes and shortcomings of your own tactics during the interview. Just assume that there was a job there, but for some shortcoming of your own you failed to impress the prospective employer sufficiently to win the job. If you will look back upon each interview in that frame of mind, you will rapidly improve your interviewing skill.

5. How can I effectively check up the mistakes I may have made during an interview?

Just ask yourself the following questions after the interview:

1. Did I enter the presence of the prospective employer with sufficient poise and self-confidence?
2. Was my personal appearance at its best?
3. Was my attitude thoroughly respectful throughout the entire interview?
4. Did I evade, or appear to evade, any of his questions?
5. Did I make sure to get my complete story across to the interviewer?
6. Did I make certain to clear up any doubts which

he may have appeared to have regarding any of my qualifications?

7. Did I fail to state what specific jobs I was qualified to do well?
8. Was I thoughtful and considerate in not taking up more of the interviewer's time than necessary?
9. Did I give him definite reasons why I was particularly interested in a connection with his company?
10. Did I tell a consistent story?
11. Did I put major emphasis upon my strong points?
12. Did I maintain the aggressive attitude of a salesman, with something worth while to sell, throughout the interview?

If you will face these questions honestly in your own mind, and do not give yourself the benefit of the doubt in answering any of them, the weak points of your presentation of your case will certainly show up. Then it is up to you to correct these mistakes in your next interview. Every interview, whether successful or unsuccessful, can prove of benefit to you if you will conscientiously give yourself such a self-examination after each experience.

6. Why ask myself "Did I make the most of the time allotted to me during the interview?"

When you start an interview with a prospective employer, you must quickly size up the situation and determine whether the employer appears to be extremely

busy or in the mood to give you a fair amount of time. If he appears to be rushed and anxious to get rid of you, plan to confine your presentation to the briefest time possible. The better you have planned your presentation the more capable you will be of picking out the important points and putting them across in a short time.

If it appears that you are to be hurried, the use of your experience record and qualification sheet may be effective. The busy employer can read this over in a few minutes, get a bird's-eye view of your experience, and then ask you additional questions to satisfy himself completely as to your qualifications.

If you judge that you are to have the opportunity for an unhurried interview, then you can go into the statement of your case in more detail to build up a favorable impression.

It is important to consider how well you have used your allotted time in an interview, because in following up the prospect you may want to make it a point to elaborate upon some of your qualifications which were not sufficiently considered in the first interview.

7. How can I determine whether I made my profit-making qualities sufficiently apparent?

Put yourself in the place of the prospective employer and honestly face the question in his mind, "If I hire this man is he likely to prove the most profitable employee whom I could select for the job in question?"

You must never overlook the fact that when an employer goes into the market to select an employee he is going to invest money in wages. The quality of services which he gets in return for those wages will determine whether the money is well or poorly invested.

You can judge with fair accuracy whether you did a good job in impressing your profit-making qualities upon the prospective employer. If there is any doubt in your mind, the chances are that you also left doubt in the mind of the man you interviewed.

8. How can I be sure to follow up a prospect most effectively?

Study him carefully throughout the interview. Try to judge whether he is the type of person whom you can press closely in your follow-up campaign. Decide whether he is a person who will become impatient if you are too persistent.

There is no general rule that can be laid down as to the exact manner in which all prospects should be followed up. You must be the judge as to the tactics to be applied in each individual case.

Do not be too easily discouraged by the finality with which an employer may close your first interview. The person who makes you feel that there is no hope for your getting a job may be the very one who will finally be impressed by your determination and persistence, provided you persist tactfully.

In a period when jobs are scarce, your chances of

happening in just when there is a vacancy are limited. Your success in getting a job, therefore, will depend largely upon following up as many job prospects as possible. Your success will depend upon keeping a large number of possible employers reminded of your availability.

If you do not take the initiative in this reminding process, you are certain to be forgotten. An application which lies in an employer's file more than two weeks without any follow-up is almost certain to get "cold." You must not assume that simply because your application is on file it will be considered when a vacancy does occur. Your application not only must be on file, but it must be kept "warm" by a systematic follow-up plan.

9. What kind of a follow-up letter should I write after an interview?

That depends upon the interview.

If the interview was complete, unhurried, and satisfactory, a short, courteous letter thanking the interviewer for his attention and for his consideration of your case will be appropriate. In such a situation you might write such a letter as the following:

Mr. Henry Jones, General Manager,
National Hardware Corporation,
Joliet, Illinois.

Dear Mr. Jones:

I would like to express my appreciation for the consideration you gave me in our interview this afternoon.

I know that I would find deep satisfaction in the work of your purchasing department. If the opportunity is afforded me to work as an assistant to your purchasing agent, I will do my very best to make my services a profitable investment for your company.

Respectfully yours,

GEORGE BROWN.

112 Prospect Street,
Telephone: Joliet 4084

If the interview has been a hurried one, or if you have overlooked some point in the interview, you might include in your follow-up letter a brief statement of the idea which you omitted in the interview. Following is an example of a follow-up letter, including a new idea not brought out in the interview:

Mr. Henry Jones, General Manager,
National Hardware Corporation,
Joliet, Illinois.

Dear Mr. Jones:

I would like to express my appreciation for the consideration you gave me in our interview this afternoon.

I think you may be interested in a point not brought out in our discussion. In my work with the International Harvester Company I had charge of the small-tools perpetual inventory system of the tractor plant. This included a complete record of all small tools on hand, the control of all small tools out on tool checks, and the requisitioning of small-tool supplies. These functions were performed under the supervision of the purchasing department and gave me a thorough insight into relationships

between the factory and purchasing department. This experience would, I feel, be a distinct asset in handling the job about which you spoke.

I know that I would find deep satisfaction in the work of your purchasing department. If the opportunity is afforded me to work as an assistant to your purchasing agent, I will do my very best to make my services a profitable investment for your company.

Respectfully yours,

GEORGE BROWN.

112 Prospect Street,
Telephone: Joliet 4084

You will almost invariably think of certain things afterwards which you should have said in the interview. Your follow-up letter furnishes an ideal vehicle for conveying these ideas to the prospective employer. Consider the situation carefully and use your follow-up letter to plug up any loopholes you have left open in the presentation of your case.

10. Why should I write my follow-up letter as promptly as possible?

In the first place it may give you an opportunity to change a possible unfavorable attitude on the part of the prospective employer before he employs some one else. If there is any doubt in his mind as to your qualifications after the interview, you should hasten to remove those doubts as quickly as possible. Furthermore, if you have omitted some important part from your state-

ment of your qualifications, it is essential that the omission be corrected at once.

The receipt of a prompt follow-up letter will help to impress the prospective employer with your business-like habits. He will realize that you are a "live wire." He will be more convinced than ever that you are intensely interested in joining his organization.

There is a further advantage in a prompt follow-up letter in that it arrives while the recollection of the interview is still fresh in the mind of the prospective employer. The more quickly you can place him in complete possession of all the information regarding your qualifications the better your chances for getting the job.

Even though there is no definite job in prospect, a prompt follow-up letter will convey the impression that you really appreciate the consideration shown you, even though you were given no assurance of a job. The follow-up letter is just one more means of imbedding yourself in the prospective employer's consciousness. Repetition is an effective method of registering an idea. Make use of this principle in your follow-up job prospects.

11. Should I use a penny post-card as a follow-up reminder?

Your written follow-up after the interview should be in the form of a letter. A penny post-card does not make a good impression on the prospective employer.

Inside employees may read a post-card and put obstacles in the way of your getting the job. They may have friends whom they would like to help get a job. You might send out a second follow-up letter to each of your better prospects not later than a week after your first follow-up letter. The message in such a letter should be brief, consisting of not more than one or two sentences. You might say something like this:

"I am still available for service with your firm. I would appreciate your consideration when a position for a man of my qualifications—as outlined in my application filed with you on June 15th—is available."

Be sure your name is written legibly and that your address and telephone number are noted in the letter.

After calling back on the prospect for a second personal interview, you may consider it worth while to follow up the second interview after an interval of a week with another brief and appropriate written reminder.

12. How soon should I call back after the first interview?

This is a matter to be determined on the basis of the situation which developed in your first interview. The prospective employer may give you some idea as to when a job may be available. You will want to call back in advance of that date.

The possibility of an opening may be very indefinite at the time of your first interview. In that event, your

second interview might well be timed to take place after ten days or two weeks have elapsed. The time of your calling back may also be determined by the statement you made in your first interview as to when you would like to see the interviewer again.

Do not make the mistake of postponing your second interview too long. The purpose of your follow-up campaign should be to register yourself and your qualifications in the mind of the prospective employer at sufficiently frequent intervals so that he has no opportunity to forget you. Your reminders to him of your availability should be frequent enough to impress him with the idea that you are serious in your intentions.

13. Should I wait for the interviewer to call me back?

As a rule, you should not wait for the prospective employer to take the initiative. Of course, you should be guided by any definite arrangements you may make with him about coming back for another interview. In the absence of any arrangement to the contrary, you should take the initiative in calling back upon him as soon and as frequently as the situation warrants.

Too many applicants accept as final the statement of the prospective employer, "I will let you know when we have an opening for you." He may be perfectly sincere in his intentions to do that very thing. Or that may be his quick and easy way to terminate the interview.

Even though he may feel that you are the kind of

person he would like to employ when a vacancy occurs, many other applicants may appear before him in the meantime, and the memory of you and your qualifications becomes more dim with each passing day. Make up your own mind, therefore, to take the initiative yourself. When you think the opportune time has come to call back, do so without waiting to be sent for. If you wait, some more recent applicant will almost surely have "the inside track."

14. How should I conduct my side of the second interview?

You should be governed by the same principles of good interviewing that you followed in your first interview. Of course, you should profit by the experience of your first interview with a certain prospective employer so that your second interview can be an improvement upon your first. The mistakes of your first interview, if any have been committed, should be corrected in your second interview. If these mistakes have been glaring, this is reason for bringing about a second interview as soon as possible.

In your second interview you have the advantage of having had an opportunity to size up the interviewer and can plan your second interview more intelligently.

15. What possible pitfalls should I avoid in a second interview?

It has been my observation that job-seekers are in-

clined to be a bit careless in second interviews. There is more danger of talking too much, probably due to the fact that they feel more at ease now that the interviewer is not a complete stranger to them.

Be careful not to "let down" in your second interview. Make certain that your statements are consistent with the things you have said when you met the prospective employer the first time. Do not let the fact that you have met him before permit you to become too familiar on your second visit.

Because job-seekers usually act differently in a second interview, it is the practice of many interviewers not to employ a person for a position of any importance until they have interviewed him the second time, and possibly a third time. Be on your guard, therefore, when you come back for your second interview. Make a determined effort to make the second impression better than the first.

16. In calling back on a prospective employer, what principle should I always observe?

Always try to have an added idea to present as a justification for coming back. Just as the introduction of new evidence may be required in the retrial of a case in court, so should you be prepared to bring to bear upon your application some new reasons to convince the prospective employer that your employment would be profitable to him.

17. How may it help my chances for a job if I call back at regular intervals and at a certain time of the day?

I have personally hired scores of men on the basis of their persistence in coming back every day until they got a job. I have seen men applying for factory jobs who came to the employment waiting-room carrying their lunches with them, and "camping" right there day after day until the job came open for them.

These may be extreme cases, and usually a job-seeker should not employ such tactics unless he is in a locality where there are very few factories or business places. Unless the job-seeker happens to pick the most likely place for employment he would waste a great deal of time in this manner which he might otherwise spend to good advantage making frequent calls at many places of business.

There is distinct advantage in calling back at regular intervals and at a certain time of day when seeking certain kinds of jobs. The employer gets to expecting the job-seeker and may hold a job for him.

18. How can I be persistent without becoming a pest?

This is where the job-seeker has need for the greatest of tact. Each individual case will need to be handled according to the circumstances. In all cases, however, there are several principles to follow.

In calling back or making repeated contacts with a job prospect, be exceedingly careful *not to waste his*

time. If he realizes that every time you arrive, half an hour will be wasted, he will soon be refusing to see you. On the other hand, if your contacts with him are brief and considerately timed, his impression is more likely to be that you are a determined person and would probably make the kind of employee who would follow through to a finish anything you started.

Another way to keep from being a pest is to be pleasant and cheerful in your follow-up contacts with the prospective employer. If he hears a tale of woe from you every time he sees you, he will soon tire of that. Just because you happen to discover a person who appears to be sympathetic or willing to hear your hard-luck story, do not "ride the willing horse to death."

Do not give the prospective employer the feeling that you think he is under some obligation to give you a job. Throughout your entire follow-up campaign maintain the attitude that his is just the company that you would take pride in joining and that you would certainly make your services profitable to the company.

19. Why is it essential for me to get the full name of every person whom I interview for a job?

This is necessary in order to make your follow-up more personal. This does not mean that you should try to become too familiar. You will need his full name in addressing any mail to him.

It makes a bad impression if a person calls back and

is not sure of the name of the man whom he saw the last time.

20. Why are "high-pressure" tactics, when following up a prospective employer, likely to do harm to my job-getting chances?

In the first place, high-pressure tactics in selling your services will almost surely wear out your welcome before the desired job is available. Personal services must be sold entirely upon the basis of their merits. Unless you can make your desirable qualifications stand out, you will fail to get the job. Trying to put pressure on the employer will almost certainly antagonize him.

We are all acquainted with the tactics of the high-pressure salesman who practically pushes us, against our will, into the purchase of the product he is selling. We buy from him even while we are saying to ourselves that we really do not want what he has to sell. The attempt to use such tactics in selling your services can only end in failure. You must make your services appear so valuable that the prospective employer will really want to employ you.

21. How may I make use of a friend's help in following up a job prospect whom I have already interviewed?

Here is a place to sound a word of caution. If you have a number of friends go out of their way to get in

touch with an employer whom you have interviewed, he may resent their interference. This is especially true if it becomes self-evident that you are directing a barrage of telephone calls, personal calls, and letters at him from a half-dozen different people.

I have unpleasant recollections of a number of otherwise capable men who spoiled their chances of getting jobs because, after being told that there was no position available at the time, they went out and incited a number of their friends to call up and put in an enthusiastic word for them.

The prospective employer feels that his own judgment is the thing to guide him in selecting an employee. He is not likely to resent the intervention of one of your friends in introducing you to him. After he has seen you and had an opportunity to size you up himself, however, he resents having a lot of other people come along and tell him how good you are.

If you expect to have some of your friends indorse your application for a job, it is better to give their names to the prospective employer with the suggestion that they know your record and can speak from personal observation of your qualifications. The prospective employer knows that these people will undoubtedly say a good word for you and so he may not bother to get in touch with them. Even though he does not, the character of your references, if they are known to him, will help to give your case some prestige.

22. Why should I provide some ready and easy manner by which a prospective employer can communicate with me?

Many a man has lost a job simply because the prospective employer had no convenient way to communicate with him on short notice. Consequently, some other applicant who happened to walk in got the job.

If possible, give the prospective employer a telephone number. If you do not happen to have a phone yourself, it would be well to have an arrangement with some neighbor who will receive a phone call for you. Then keep that person informed as to your whereabouts.

If you change your address, be certain to notify the prospective employer. Use this as a reason for calling back on him, and at the same time take the opportunity to sell him a little further on your qualifications.

23. Briefly, what are the essentials for success in my job follow-up campaign?

Tactful persistence.

Be systematic and thorough in keeping all likely prospective employers cultivated.

Keep your prospects constantly conscious that you have qualifications which will make your services a profitable investment.

CHAPTER IX

WHEN AND HOW CAN I MAKE EFFECTIVE USE OF LETTERS?

1. In my job-seeking campaign, when should I use a letter of application?

As a general rule, a letter of application should not be used if it is possible for you to present yourself and make application in a personal interview.

Prospective employers located in the area accessible to your place of residence should be contacted, if possible, personally.

In exceptional cases where you have had difficulty in getting in to see the right man, a properly written letter will probably secure an interview for you. Another exception to the rule that applications should be made in person occurs in those instances where you desire to make a contact with a distant company.

Letters of application should be used, of course, in answering advertisements where the request is made that replies be made by letter. In fact, there is no other way than by letter to answer a "blind ad."

At best, a letter of application is only your "representative," and it is usually better to go in person than to send a representative when a job is at stake.

2. Does the kind of job I am looking for have anything to do with the practical usefulness of letters?

The usefulness of a letter is chiefly dependent upon the ability of the writer to compose a good letter—a letter that will attract attention, stimulate interest, and carry conviction. Men looking for ordinary jobs in the lower ranks of business and industry are not usually expert letter-writers. Consequently, they should not trust their job chances to a letter, but should present themselves personally.

Men applying for higher positions are expected to be capable of expressing themselves effectively in a letter. Consequently, in seeking such positions, letters become more useful and important. A man seeking a position, the duties of which require effective writing, can probably use no better method of impressing upon a prospective employer his ability to express himself in the written word than by writing an effective letter.

If a man is applying for a job for which the prerequisites are chiefly mechanical skill, trade ability, or technical knowledge, a letter of application may do him a grave injustice. The prospective employer of men on such jobs is more interested in seeing the applicant, in sizing up his physique, and in judging those qualifications which can only be properly judged by seeing and talking with the job-seeker.

In deciding whether to write a letter of application, carefully judge the appropriateness of presenting your qualifications in that manner. Consider the prospective

employer's viewpoint and decide whether he will be able to form the correct impression of you on the basis of any letter you might write.

3. In what way does any letter I may write virtually become my "personal representative"?

The prospective employer judges you by the kind of letter you write. A letter makes a good, bad, or indifferent impression by its appearance, its composition, and its tidiness, just as an individual does when he appears personally. In this respect your letter is your personal representative.

You will want to be represented effectively and favorably. Therefore a letter should be written with the picture in mind of the receiver opening up your letter, reading it, and forming his opinion of you.

4. What should my letter of application contain?

Your letter of application should briefly summarize the contents of your experience record and qualification sheet, which you have already carefully drawn up. Your experience and qualifications are the prime essential of the application letter's content. Brevity is important.

The first paragraph of your letter is important and may "make or break" the effectiveness of the letter. Do not make the mistake in your opening paragraph of trying to say something too "catchy," smart, or spectacular.

It should carry a ring of sincerity. Do not start out by saying, "I am writing to apply for a job." Start right in with some such statement as, "A study of your company, its product, its method of doing business, and its reputation has convinced me that it is the kind of a concern with which I would like to associate myself."

This introductory paragraph should be followed by a second paragraph which states, in a sentence or two, the kind of work you are qualified to do and at which you would prove a profitable investment to the company. Back up this second paragraph with a third paragraph which outlines your education, training, and experience and includes a statement of your age and marital status.

The last paragraph of the letter should suggest a personal interview. An effective way to make this suggestion is to put it in the form of some such question as follows:

"Will it be convenient for you to have me discuss my qualifications with you personally next Thursday afternoon, or at some other time which you may suggest?"

A direct question has the psychological effect of impelling a reply. It calls for some action.

5. What ideas should I be sure to put in the application letter?

Be sure to include in the letter the idea that your em-

ployment will benefit the employer in some special or tangible way. The prospective employer who receives the letter will appreciate the fact that you recognize that an employment contract must benefit both parties. Too many letters of application give the impression that the applicant is thinking only of a job from which he will derive benefit.

You must remember that the employer has a line on more people for routine work than he has jobs. In some way, therefore, your letter must tend to take you out of the class of all of those job-seekers who just want a job. In times of job scarcity most companies have a number of former employees whom they would normally consider first. This only means that, in order to get a hearing of your case, you must prove that your services will be of exceptional value to the employer.

6. What should I be sure to leave out of an application letter?

Leave out discussion of your troubles. Omit any statements which indicate a "grouch" on your part. A letter of application should include nothing of an argumentative nature. Do not complain or reveal a "picked on" attitude. Do not refer to any physical infirmities or illness. As a matter of fact, it is superfluous to make any statement to the effect that you are in good health. The reader will assume that you are healthy if you say nothing about it.

A prospective employer is often more influenced by the things you should have left out of a letter than he is by some of the constructive statements you have included. Therefore, when you have written a letter, go over it carefully to make sure that you have not included any of these things which might have a negative influence upon the reader. Remember, he is receiving this letter from a stranger whom he presumably has never seen.

Your purpose in writing the letter is to interest him sufficiently in your qualifications to be willing to give you the opportunity to present yourself personally for his further examination. Forget yourself, and try to write the letter from the point of view of the prospect. Think of the things which would be most likely to impress *him* favorably.

7. What rules should I follow in writing a letter of application?

In addition to the suggestions already made as to what the contents of the letter should be, there are certain rules as to the physical appearance and form of the letter. Select paper which is appropriate. If possible, your letter should be written on standard eight and one-half by eleven inch business stationery. The better the quality of the paper the better first impression your "representative" will make.

If possible the letter should be neatly typed. This is

particularly true if you do not write a good legible hand. The letter, if typewritten, should be written with a machine that does neat work, with a fresh ribbon, clean type, and letters that are in proper alignment.

If you send a longhand written letter be sure that it is written in ink. Use a pen that writes evenly and clearly. Do not send the letter out with any blots or ink smears on it.

The letter will make a better appearance if it is written on paper without lines. However, if you have difficulty in writing without lines, put a sheet of lined paper underneath and follow the lines that show through the paper. Do not rule lines on the paper on which the letter is written.

Keep an even margin down the left side of the page. Indent paragraphs. Do not write too closely to the top and bottom of the page.

Make certain that your name is written legibly. A surprisingly large number of letters of application are never considered simply because the writer was careless in signing his name and the reader lost interest in trying to decipher it.

Be sure to date the letter and inscribe your address. It is not sufficient merely to put your address on the envelope, because when the envelope is destroyed your address will go with it. If you have a telephone number, make a note of the number on the letter for the convenience of the prospective employer.

8. Why should I avoid the use of extravagant or boastful statements in my application letter?

Such statements make an even more unfavorable impression when put in writing than when spoken in a personal interview. Avoid the use of superlatives in the language of your letter. A straightforward, modest, but convincing type of statement is most effective.

I recently received a letter of application from a young man only a few months out of school who referred to the "vast knowledge" he had gained in those few months. He also stated that he was "exceptionally well qualified to handle any kind of work." He stated that he had "obtained the best education which the country affords," although he had only graduated from high school.

9. Why is it essential to be accurate in giving information about myself?

Check your letter over carefully for any inaccuracies before you mail it. If you make statements which are inaccurate or inconsistent you will not be there to correct the misstatement when the prospective employer reads the letter. Under these circumstances he surely will not consider your application favorably.

In summarizing your experience in the letter, make certain that all the dates fit together. In his desire to make his record of experience impressive, a young man from whom I received a letter of application showed a total length of experience that he necessarily

would have had to be thirty years of age to have obtained. As a matter of fact, he gave his age in the letter as twenty-two years.

10. What is the secret of writing an effective answer to an advertisement?

First, analyze carefully and thoughtfully what the advertiser wants to know. Be sure to give specific information in answer to the questions that are expressed or implied in the advertisement. Tell what you have actually accomplished rather than what you are ambitious to accomplish.

Get right into your story and make the letter as brief as is consistent with necessary completeness. Have in mind besides that when an employer runs an advertisement of a job he is likely to be flooded by letters of application. Under the circumstances he will be scanning through the letters hurriedly to select those which appear most promising. Your hope of catching his attention, therefore, lies in writing a letter that is pointed, business-like, and clear.

11. How should I follow up my letter of application?

One of three things will result from your letter. You will get an invitation to call for an interview, you will receive a letter stating that no jobs are available, or you will hear nothing at all from your letters.

If you receive a letter telling you that no jobs are available, do not take this as meaning that there never

will be any job open in the prospective employer's place of business. Do not take too seriously the statement that "your letter of application will be placed on file and you will be notified if a vacancy occurs." This is a common expression which concludes nine out of ten replies to letters of application. What it really means is that there does not happen to be a job open the day the letter is written. The file which the writer refers to is most often a waste-basket. Perhaps the employer is so flooded with letters of application that he knows there will be any number of applicants for consideration when a vacancy does occur.

Some job-seekers assume that after they have such a letter from twenty or thirty concerns, it is only a matter of time when some employer will call them in for a job. This is a very mistaken assumption. If you get a job in that way, yours will be a most exceptional case. And still, you should not cross that company off your prospect list. Follow up with another letter of application, inclosing a copy of your experience record and qualification sheet, within a week or two. Repeat this at intervals as long as you know the company is operating in a fairly normal way. The very effect of repetition may be eventually to get consideration.

If you get no response whatever from your original letter of application, at the end of a week or ten days write a short follow-up letter which might take some such form as the following:

Mr. Henry Jones, Supt.,
J. & G. Upholstery Corporation,
Paterson, N. J.

Dear Mr. Jones:

On April 12th I wrote you with reference to experience and qualifications which I possess and in which I thought you might be interested.

I have not had the pleasure of hearing from you in response and it has occurred to me that possibly my letter did not reach you. Therefore, I am taking the liberty of sending you a copy of this previous letter, together with a summary of my experience and qualifications.

Respectfully yours,

12. Is it necessary for me to inclose a self-addressed stamped envelope in my application letter?

It is not necessary. In fact, it is sometimes something of a nuisance inasmuch as the stationery of the prospective employer may not fit the envelope you send.

If the prospective employer is at all interested in you, he will write to you regardless. Your application will not receive any less attention if you do not inclose a self-addressed envelope.

13. In writing a letter of application, what practical use can I make of an inclosed self-addressed post-card?

A practical device used by some job-seekers is to inclose a self-addressed post-card on which is written some such form as follows:

"Dear Sir:

You may call at this office for an interview at............ o'clock on..................

....
Company

....
Signed

This device gives the prospective employer a chance to reply while the appeal made in your letter is still fresh in his mind. It also helps to overcome the natural procrastination of the average person who, if he puts off making reply until such time as it is most convenient, may never get around to reply at all.

14. What kind of a letter should I write to a prospective employer to secure an interview, if my attempts to get in to see him personally have been unsuccessful?

Write him a letter in which you start out by saying, "This afternoon I called at your place of business to see you, but I was sorry to be informed that you were busy and, consequently, found it inconvenient to have me call on you at that time."

Then follow this opening paragraph with the same kind of letter you would write as a regular letter of application, closing the letter with the suggested appeal for an opportunity to spend a few minutes with him at his convenience. Or inclose a self-addressed

post-card for his convenience in making an appointment as suggested above.

15. How can I make good use of personally delivered letters?

A personally delivered letter gets more attention than one that comes through the mail, particularly when the person to whom it is addressed is informed that the writer of the letter is waiting outside and would like to see the receiver if it is convenient, or make an appointment to see him for a few minutes later when it is more convenient.

A letter used in this fashion may be written as a regular letter of application, or it may be just a brief letter requesting a few minutes of the prospective employer's time to discuss a matter of mutual interest or to make a subsequent appointment.

The use of a personally delivered letter is sometimes an aid to getting past the information clerk.

16. What about letters of recommendation?

Letters of recommendation which are written in reply to a direct inquiry from a prospective employer to a person whom you have given as a reference, may be very helpful.

The usual "to whom it may concern" letter of recommendation carries practically no weight. In fact, such letters are sometimes a detriment rather than a help. They are only favorable to the interests of the applicant

when they refer to certain definite specific accomplishments, strong points, and special qualifications of the applicant.

The letter containing a few generalities about the good character and ordinary virtues will be recognized by the prospective employer as just one of those form letters of recommendation which are so commonly used to "let down easy" a departing employee.

17. What points should I be careful about in filling out an application form?

Some companies will respond to your letter of application by sending you an application form to fill out. This usually indicates that the company does keep a systematic file of applications. Consequently, you should fill the form out with care.

Application forms should be filled out completely. Even though some of the questions asked may appear superfluous to you, the company furnishing the form has definite reasons for asking the questions. Fill in the form with ink. Write legibly and neatly. Make certain that every bit of information you furnish is accurate.

If the application form carries the usual space labeled "remarks" or "additional information" do not leave it blank, but make use of it in some constructive way. Here is the place to insert some statement to the effect that if employed you will conscientiously endeavor to

make your employment a profitable investment for the company.

18. Should I keep a copy of letters of application which I send out?

It is a good practice to keep copies of your letters of application. This can easily be done by making a carbon copy if your letter is typewritten. Even though you write the letter longhand you can make a carbon copy by using a fairly stiff-pointed pen.

Carbon copies of your letters are useful in your follow-up of job prospects. They can be used also for reference in case you desire to check up what you have already said to the prospective employer before you call for a personal interview.

If you have carbon copies of your letters, you will find them useful in composing future letters. If you have given careful and thoughtful consideration to the writing of a good letter, there is no reason why you should go through all that labor again when you desire to write another letter to meet the same type of circumstances. You can refer to your former letter and simply change it in such details as is necessary to fit the new situation.

19. Why should I submit an important letter of application to several friends before mailing it?

They will be able to judge, in a measure, how the letter impresses a second person. They will detect more

readily than yourself whether you have overstated or understated your qualifications.

You should endeavor to interest some capable friend in passing judgment on your letters. Even though you are a skillful letter-writer, another person's viewpoint may improve your letter. Friendly criticisms of your letters will help you to prevent sending the wrong kind of letters.

Just consider that every letter you send out to a prospective employer may win or lose that job you are after.

CHAPTER X

HOW SHOULD I USE MY SPARE TIME DURING THE JOB-GETTING PERIOD?

1. What about my spare time?

You should permit yourself little spare time until you *get that job.*

Too many unemployed men are inclined to regard all of their time as spare time. You should assume an entirely different attitude. Your job now is the job of getting a job. You should work at it just as systematically as you would at a job on some one's payroll. You are working for yourself, and you should not be afraid of overtime.

Regular business hours should be occupied in making calls on prospective employers. Regard business hours as your employer-contacting and interviewing hours. The time outside of regular business hours we will regard as your spare time. Less of that spare time should be used for recreation, entertainment, and doing nothing that would be the case if you were regularly employed.

A large proportion of your spare time should be devoted to constructive activities that will help you to secure employment.

2. What things can I do to best advantage outside of regular business hours?

If you are conducting a systematic, business-like, job-getting campaign there will be considerable work to be done on your prospect list. Precious business hours should not be used for this purpose any more than absolutely necessary. Several evenings each week can be profitably devoted to enlarging your prospect list, uncovering new leads, making notations on your prospect cards, and planning the next day's calls.

Suggestions have been made as to the uses to which you can put your public library. The library is open in the evening and that is the time for you to go there.

A great deal has been said about the help of friends and acquaintances in getting a job. During business hours they are occupied with their own business affairs. After business hours is the time for you to make and maintain your contacts with them.

Letter-writing will probably require a certain amount of your time. This can be done in your spare time.

3. Why should I make a special point to maintain contacts with all my friends and acquaintances?

Do not drop out of sight just because you are out of a job. At such a time it is more important than ever that you maintain all of your friendships and social contacts. It may require will power on your part to "keep up your front." Your worth-while friends, however, will think just as much of you out of a job as on

a job. In fact, if you drop them when you are unemployed they may even resent having you avoid them. Thinking that you may be sensitive about the situation, they may not take the initiative in renewing and maintaining contact with you.

Your friends and acquaintances are too great an asset for you to neglect them when you need them most. You can combine the helpful maintenance of their friendly contacts with recreation. You need recreation. In fact, it will help you in maintaining your own mental balance and optimism.

4. What effect on the prospective employer has the knowledge that you are using your spare time constructively?

It will cause him to rate your intelligence higher. It will convince him that you would probably make a valuable and industrious employee.

Because this is true, you might even seize opportunities to tactfully let a prospective employer know a little about what you are doing with your spare time. A good time to do this is towards the end of the employment interview.

5. How does the knowledge that an applicant is studying in his spare time impress a prospective employer?

He will probably be still more impressed to know that, in addition to carrying on a systematic, business-

like, job-getting campaign, you are energetic enough to be devoting some of your spare time to the further improvement of your qualifications. Everyone knows that this requires much stronger character and will power than it does to do spare-time studying when one has a job and has some specific goal to work for.

6. What should I do on Saturday?

Most places of business—aside from mercantile establishments—do not work on Saturday. Therefore, Saturday should be counted in as part of your spare time. Mercantile establishments are likely to be busier on Saturdays than other days and, consequently, your opportunities for employment interviews are less favorable than during other days of the week.

This does not mean that Saturday should be a day of idleness for you. You can fill it with many of the spare-time activities which are just as important to your job-getting success as anything you can do.

7. What can I do with odd hours during the business day?

Do not waste them.

It is inevitable that through cancellation of appointments, inability to see the right man, and as a result of other miscellaneous circumstances, you will find yourself with odd hours on your hands which are likely to be wasted if you are not careful. As a part of your

plan for a day's activities you should include a number of things that you will do at such times.

You may call on an acquaintance in the neighborhood where you happen to be stranded with a little time on your hands. You might walk around looking for establishments which you do not have on your prospect list. Perhaps you can call back for a follow-up interview on some other prospect whom you might not ordinarily see until a later date.

Do not get in the habit of killing time during these odd hours. Time-killing easily becomes a habit. It will only postpone the day when you will land your job.

Loss of time during odd hours can be lessened by carefully planning your route so as to cover the greatest number of establishments in a given area. Economize on time by grouping your prospects so that you can cover a number of them in a given area on the same trip.

8. Should I take any kind of a job I can get, even though it is not the right job?

The answer to the question depends somewhat on how near you are "to the end of your rope." If your financial resources are exhausted you cannot afford to turn down any kind of a job which you can possibly do. On the other hand, if you can "hold out" you had better try to get a job that more nearly fits your desires and qualifications, because once you are on a job you will have much less time to seek the right job.

It is true, however, that it is often easier to get the right job when you are not out of a job. It is generally agreed that a man on a job stands a better chance in applying for work than a man who is unemployed. Even though an unemployed man may be very worthy, there is a tendency for the prospective employer to feel that a man who is "good enough to hold a job" may be more capable.

Certainly, a man who is looking for a better job, when he already has one, carries a little more prestige. For this same reason a student who has not yet graduated usually finds it easier to make favorable contacts with employers than he does once he is out of school looking for an immediate job. Veterans taking vocational courses offered through provisions of the "G. I. Bill of Rights" or the Veterans Administration should establish themselves favorably with potential employers. Veterans should also go to the reemployment committee attached to their local Draft Board, which will make the necessary contacts with the Veterans Employment Service of the United States Employment Service.

9. Why should I keep members of my household informed as to my whereabouts and expected time of return home?

Once an employer makes a decision to employ a person for a certain position he is likely to want to fill the position as soon as possible. Consequently, it may

be the qualified person who can report for work soonest who gets the call.

If a prospective employer calls you by telephone for the purpose of offering you a job, it will help to make sure of his holding the job for you if members of your household can inform him definitely as to what time you will return and just when you will get in touch with him.

This may seem to be a minor detail but I have seen scores of jobs go to men other than the first man called simply because some one was needed for work the following morning and the employer did not have time to wait. If another man can be reached whose qualifications are equally good, he may get the job.

10. Why is it so important to multiply the number of my calls, interviews, or letters?

A good salesman knows that the more calls he makes the more business he will do.

The same principle applies to your service-selling job. The more contacts you make, the shorter your period of unemployment will be.

This is just simple arithmetic.

11. Have I a hobby that might be turned into a part-time occupation by which to earn a living until I get the right job?

This is an important question to ask yourself. One of the interesting developments of the past few years

has been the extent to which hobbies of men and women have been turned into money-earning activities. I am sure that if you will think over your own acquaintances, you will call to mind some who have done this very thing.

On the principle that a man out of work should "run out all hits", you should not overlook the possibilities of making money by the proper development of any hobbies of your own at which you have developed high proficiency.

12. What are some of the possible jobs, or activities, that a man might undertake as a business of his own?

I know a carpenter who has developed a thriving little business building dog-houses for dog-owners in a metropolitan suburb. In fact, his business has grown to the point where he has taken as a partner an unemployed salesman who makes the solicitations and arranges for the building of the dog-houses. He himself has had to employ another carpenter to help him in order to fill their orders.

A wood pattern-maker has started a little shop where boys come to take lessons in model sailboat making. The boys come after school and on Saturday. During the other hours he makes model yachts himself for which he has found considerable sale.

A young man who graduated from the commercial course in a high school has established a typing and

stenographic service, and has his time fully scheduled. He sells his stenographic service to small establishments who do not have enough of that kind of work to require a full-time typist or stenographer and yet who want to have their correspondence handled in good form. He has a portable typewriter which he carries with him, and goes from one establishment to another, having definite hours during certain days each week at the various places of business he serves.

Here are some of the articles which unemployed men are making and selling:

Children's furniture
Bookcases
Doll-houses
Bird-houses
Lamp shades
Airplane models
Book ends
Bookstands
Folding screens
Concrete bird-baths
Aquariums
Benches and other forms of garden and lawn furniture
Stenciled house numbers

Here are some typical services rendered:

Boxing instruction for boys
Renting parking space

Driving instructions
Cleaning houses by contract
Furniture painting and refinishing
Exterminating household pests
Cleaning cars by contract
Dictaphone service
Multigraph service
Part-time bookkeeping
Cleaning typewriters
Repairing and refitting fountain pens
Advertising counsel
Operating a clipping bureau
Conducting community auctions
Renewing window shades
Window-washing

These lists may suggest to you the possibility of building up some small business of your own as a spare-time occupation without the investment of much capital.

13. How can an unemployed man's spirits be kept up while out of a job?

Remember that there are always jobs being filled somewhere.

You are probably a man above the average or you would not have read this far in this book. There *is* a job for you if you conscientiously follow the suggestions that have been made.

Avoid dismal, depressing people. It is not sympathy

that you want. It is normal relationships with normal people who see something besides the hole in the doughnut.

"Misery loves company," and the natural tendency is for unemployed men to "hang out" together. It is natural for them to do this because they are facing the same problems and deeply appreciate one another's viewpoints. Do not make this mistake yourself. Associate as much as possible with employed people. Not only are they more likely to be able to help you get a job, but they will be a tonic to your morale.

14. Why is it so important for me to keep busy during my temporary unemployment?

Keeping busy prevents you from indulging in too much self-pity. Conducting an active, vigorous, busy, job-getting campaign is the very best way to maintain your own spirit and morale.

This is not only important because of its effect upon your own happiness, but because it has such a definite effect upon your personality and upon your ability to go out and sell your services. The more you allow your unemployment to depress you, the less capable you are of making a good impression upon a prospective employer.

15. Do modern methods make fewer jobs?

In spite of contentions to the contrary, modern methods make more jobs.

The introduction of machines, labor-saving devices, and methods, does create a certain amount of temporary unemployment. It does cause the elimination of certain jobs and thereby requires men to find new ways to make a living. We must not confuse these vocational transitions, however, with permanent increased unemployment.

In manufacturing industries where the introduction of labor-saving methods has been most extensive there are more persons per thousand of our population employed as of the 1940 U. S. Census than there were in the 1890 Census, the period which marked the greatest development of modern methods.

Labor-saving methods bring prices within the buying power of larger numbers of people and thus create more jobs than they eliminate.

What does this mean to you?

It simply means this—there are job opportunities for you, opportunities which have been created by modern methods.

Upon your own stamina, determination, and ability to adjust yourself to modern conditions depends your personal success.

No one will bring a job to you. You must go out aggressively and sell your services yourself.

16. How shall I conduct myself when I get the job?

Don't try to sell yourself further to your employer by talk. Listen, learn, and live up to the qualities,

ability, and profit-making points, on the basis of which you sold your services.

Your employer wants to satisfy himself that your selection is a further evidence of his ability to judge men. He is just as keen to have you succeed as you are.

It's up to you to make good.

Chapter XI

FOR VETERANS ONLY

In seeking a job, the veteran has several important factors to keep in mind.

If You Want Your Former Job

Call on your former employer as soon as you return. If you are unable to call, write him that you wish to make application for your former position. In this way, you are complying with the Selective Service Law which states that you must apply for your former position within 40 days after your discharge.

Under this law, your former employer must give you back your old position, or a position of like seniority, status and pay, if you meet certain requirements that are stated in the law.

To find out what these requirements are, and to secure assistance in getting your job back, you should report to your local Draft Board. A special re-employment committee is attached to the Board, which will either get in contact with the Veterans Employment Division of the United States Employment Service or directly with your employer.

If You Do Not Want Your Former Job

You should make an inventory of yourself, to see what type of work you are best fitted for. In many cases the intensified streamlined training you have received in the armed forces has given you a more complete and workable practical scientific education than the average college graduate possessed ten years ago. You may have been taught to produce and master the efficient use of equipment which represents the highest peak of development in aeronautics, electronics, chemistry, hydraulics, electro-mechanics, medicine or physics.

Moreover, your experience in the armed forces has brought out your initiative, personal ingenuity and other characteristics of leadership. You have learned, among other things, to think, to be responsible for people, to give orders and to take orders, to supervise men and often to instruct men.

Possibly you have had some courses in the United States Armed Forces Institute, specifically training you for some job in industry or in the business world.

You will have to try to find, as nearly as possible, civilian counterparts of the jobs that you had in the Army or Navy. To assist you in this respect, the Navy has published a manual entitled, *Special Aids for Placing Navy Personnel in Civilian Jobs* (Division of Occupational Analysis and Manning Tables, May, 1943). This lists 88 Navy classifications and shows under each the related civilian occupations, additional training needed, physical activities, and working conditions.

A page of this manual is reproduced here for your information.

Similarly, the Army has also published a manual entitled, *Special Aids for Placing Military Personnel in Civilian Jobs—Enlisted Army Personnel* (Division of Occupational Analysis and Manning Tables, March, 1944). This publication contains information concerning civilian occupations related to the Military Occupational Specialities, additional training requirements, and lists the physical demands pertinent to the civilian occupations. The information facilitates the maximum utilization in civilian occupations of a person's occupational experience secured while in the Army.

Or, you may feel that with some further training, you would be ready for the kind of work you want.

Under the "G.I. Bill of Rights" of 1944, you are eligible for:

1. One year, or the equivalent thereof in continuous part-time study, of education or training (a) at any school or institution of your own choice; (b) in any subject or subjects desired for which you are fitted.
2. Not to exceed three additional years of education and training, dependent upon (a) length of service; (b) satisfactory progress in studies or training; (c) the condition that you were not over 25 years of age at the time of entrance into service, or if over such age, that your education or training was impeded, delayed, interrupted or interferred with by reason of entrance into service.

3. Payment of all tuition and other fees, the cost of books, supplies, equipment and other necessary expenses not to exceed a maximum of $500 per school year.

FIRE-CONTROL MAN, CHIEF AND FIRST CLASS

Qualifications:

Same as for FIRE-CONTROL MAN, SECOND CLASS, and in addition—

Instruments.—Have a detailed knowledge of all fire control instruments aboard ship, and ability to analyse malfunctioning and make repairs, including calibration of range finders. Be familiar with construction and use of gyroscopes, rotating prism guns, director sights, mechanical differential gears, component solvers, sector multipliers, integrators, heart-cam-follow up gears, magnetic clutches, servo motors, and surface or antiaircraft director or combination instrument.

Fire control.—Be able to take over control of plotting room, secondary or A. A. battery group, spotter, range keeper, or graphic plotter stations

Related civilian occupations *		Additional training required	Physical activities	Working conditions
4-75.130 5-00.911 5-00.912 5-00.933 5-83.411 5-83.413 5-83.447 5-83.452 5-83.461 5-83.465 5-83.471 5-83.971 5-83.972 5-83.973	INSTRUMENT MAKER II ELECTRICAL INSTRUMENT REPAIRMAN INSTRUMENT MAKER I ELECTRICAL ADJUSTER. RADIO REPAIRMAN I. TROUBLE SHOOTER VI. RADIO MECHANIC II ELECTRIC-METER TESTER. GAS-METER REPAIRMAN METER REPAIRMAN. WATER-METER REPAIRMAN. INSTRUMENT REPAIRMAN. INSTRUMENT MAN IV INSTRUMENT INSPECTOR.	Brief training on the job to learn the details peculiar to the particular types of electrical instruments and apparatus such as recording, regulating, and control instruments and meters and radios. May also require training to learn to use special testing devices and lathes.	Great: Fingering. Moderate: Standing, lifting, handling, seeing. Little: Sitting, bending, reaching, pushing, turning.	Moderate: Inside, oily, noisy, burns, electric shock (5-00.911, 5-00.912, 5-00.933, 5-83.411, 5-83.412, 5-83.447, 5-83.452).
5-70.170 5-70.550 5-79.650 5-83.011 5-83.031 5-83.041 5-83.871 7-00.928 7-83.011 7-83.012 7-83.421	SIGNAL - SERVICE REPAIRMAN. [illegible] [illegible] [illegible] ELECTRIC - REFRIGERATOR SERVICEMAN ELECTRICAL APPLIANCE SERVICEMAN NEON-SIGN SERVICEMAN. REPAIRER VI WASHING-MACHINE SERVICEMAN ELECTRIC - RANGE SERVICEMAN ELECTRIC TRY-OUT MAN.	Brief training on the job to become familiar with the specialized electrical appliances and devices involved, such as railroad signals, street car controllers, refrigerators, ranges, washing machines, and neon signs.	Moderate: Reaching, handling, seeing. Little: Bending, turning, lifting.	Moderate: Inside, outside. Little: Dirty.
5-08.030 5-08.060 5-08.065 5-08.066 7-08.020 7-08.032	DOTTER INSPECTOR. PRISM MEASURER. INSTRUMENT MAKER III. LENS EXAMINER. LENS INSPECTOR II.	Additional training in the techniques of testing and measuring lenses, including the use of such instruments as protractors, steel scales, centering machines, magnifying glasses, caliper, card, and curvature gages, and lensometer.	Great: Fingering, seeing. Moderate: Sitting, touching. Little: Bending, handling.	Great: Inside.
0-64.10 0-64.20 0-64.30 0-64.40	SURVEYOR SURVEYOR, ASSISTANT I INSTRUMENT MAN III GEODETIC COMPUTER.	Additional technical training in elementary civil engineering and the specialized techniques of measuring and computing distances by the use of surveying instruments, such as alidade, engineer's level, and transit.	Moderate: Walking, standing, fingering, talking, seeing, hearing. Little: Bending, lifting, carrying, depth perception.	Moderate: Outside.
0-48.11 0-48.16 0-48.18 0-48.31	DRAFTSMAN, ELECTRICAL DRAFTSMAN, MARINE DRAFTSMAN, MECHANICAL. TRACER IV	Additional technical training in the preparation of wiring diagrams, structural and mechanical drawings, and drafting sketches, and in the use of drafting tools.	Great: Seeing, fingering. Little: Handling, sitting, bending.	Great: Inside.

* For additional related jobs see Job Family for AIRCRAFT INSTRUMENT MECHANICS [illegible]

4. Subsistence allowance while pursuing education or training in the amount of $50 per month if without dependents, or $75 per month with a dependent or dependents.
5. Part-time attendance in a course of education or training at a reduced subsistence allowance or without allowance, but with payment of tuition or other expenses.
6. The right to have released to you books and equipment furnished if you satisfactorily complete your course of education or training.
7. Educational training institutions include business or other establishments providing apprentice or other training on the job, including those under the supervision of an approved college or university or any state department of education, or any state apprenticeship agency, or State Board of Vocational Education, or any State Apprenticeship Council or the Federal Apprentice Training Service.
8. Veterans who receive compensation for productive labor performed as a part of their training may receive such lesser sums of $50 without dependency and $75 with dependency as may be determined by the administrator.

Never before has such an opportunity been offered so many men really to find their proper place in life.

BIBLIOGRAPHY

Books

Book of Opportunities, by Rutherford H. Platt.
G. P. Putnam's Sons, New York, 1942 (Revised).

Career Guide, by E. E. Brooke and Mary Roos.
Harper & Brothers, New York, 1943.

Careers for Men: A Practical Guide to Opportunity in Business, by Edward L. Bernays.
Garden City Publishing Company, New York, 1939.

Everyday Occupations, by M. A. Davey.
D. C. Heath & Co., New York, 1941.

Fields of Work for Women, by Miriam S. Leuch.
D. Appleton-Century, New York, 1938.

Finding Yourself in Your Work, by Harry W. Hepner.
D. Appleton-Century, New York, 1937.

Full Speed to Success, by R. T. Gebler.
J. B. Lippincott Company, Philadelphia, Pa., 1940.

Handbook of Careers, by H. Burstein.
Thesis Publishing Co., New York, 1941.

How to Write Job-Getting Letters, by Richard H. Morris.
Harper & Brothers, New York, 1938.

How You Can get a Better Job, by Willard K. Lasher and Edward A. Richards, Ph. D.
American Technical Society, Chicago, Ill., 1941.

I Find My Vocation, by Harry Dexter Kitson.
McGraw-Hill Book Company, New York, 1931.

If Women Must Work, by Loire Brophy.
D. Appleton-Century Company, New York, 1936.

Occupational Index, 1943. Showing 375 annotated references on 74 military and 234 civilian occupations.
New York University, 80 Washington Square East, N. Y., 1944.

Pick Your Job and Land It! by S. W. and M. G. Edlund. Prentice-Hall, Inc., New York, 1939.

Planning Your Future, by G. E. Myers, C. M. Little and S. A. Robinson. McGraw-Hill Book Company, New York, 1940.

Preparation for Seeking Employment, by Howard Lee Davis. John Wiley & Sons, New York, 1937.

Return of Opportunity, by W. R. Kuhns. Harper & Brothers, New York, 1944.

Seven Keys to Getting and Holding a Job, by George J. Lyons and Harmon C. Martin. Gregg Publishing Company, New York, 1942.

Six Ways to Get a Job, by Paul W. Boynton. Harper & Brothers, New York, 1940.

The Strategy of Job Finding, by G. J. Lyons and H. C. Martin. Prentice-Hall, Inc., New York, 1940.

The Technical Man Sells His Services, by Edward Hurst. McGraw-Hill Book Company, New York, 1933.

Vocations for Boys, by Harry Dexter Kitson and M. R. Lingenfelter. Harcourt Brace & Co., New York, 1942.

You and Your Future Job, by W. G. Campbell and J. H. Bedford. Society for Occupational Research, Glendale, Cal., 1944.

Your Career in Business, by Walter Hoving. Duell, Sloan and Pierce, New York, 1940.

Your Postwar Job, by B. Williams. Bernard and Ellis, New York, 1944.

Pamphlets and Magazine Articles

Army and Navy as Educator. *Time,* November 16, 1942.

Books About Jobs: 8000 References to 600 Job Classifications, by Willard E. Parker. American Library Association, Chicago, Illinois.

Occupational Index, published quarterly by U. S. Department of Labor.

Bibliography of current publications which contain occupational information helpful to an individual in choosing a field of work.

Back to Civilian Life—Program sponsored by Bureau of Naval Personnel. Education for Victory, May 20, 1944.

Job Placement of Returning Veterans. *Monthly Labor Review*, Department of Labor, Washington, D. C. April, 1944.

Occupational Monographs: How to Get the Job, by I. M. Dreese, 1941; American Job Trends, by H. D. Anderson, 1941: Your Personality and Your Job, by P. W. Chapman, 1941 and others; Science Research Associates, Chicago, Illinois.

Occupations, the *Vocational Guidance Magazine*, published by the National Vocational Guidance Association, 525 West 120th Street, New York 27, N. Y.

Pick Your Career for Tomorrow, *Science Digest*, July, 1944.

Postwar Youth Employment, by P. T. David, American Council of Education, 744 Jackson Place, N. W., Washington, D. C.

Re-employment Program of Selective Service System. *Monthly Labor Review*, Department of Labor, Washington, D. C. December, 1943.

Vocational Trends, published monthly by Science Research Associates, Chicago, Ill.

Your New Post War Job, by A. Parry, *Science Digest*, October, 1943.

APPENDIX A

STEPS EVERY JOB-SEEKER SHOULD TAKE

In order to make practical application of the suggestions set forth in the chapters of this book, a series of work-sheets are presented in this appendix. By filling out these work-sheets the job-seeker will be personalizing the book to his own situation.

If the job-seeker will do this paper work carefully and thoroughly he will have accomplished these things:

1. He will have developed a campaign plan for the selling of his services upon which he can immediately start work.
2. He will have determined what kind of work he is best qualified to do.
3. He will have written out in good form an "experience record and qualification sheet" which properly describes him and his ability.
4. He will have in hand a complete prospect list of employers, arranged on "prospect cards" just as a salesman arranges his prospect list.
5. He will have made adequate preparation for the proper conduct of an employment interview with a prospective employer.
6. He will have composed a number of typical letters for the various uses to which letters should be put in a job-seeking campaign.

HOW TO PROCEED

Let us think of the ten chapters of this book as the TEN STEPS that every job-seeker should take in his campaign to get a job. The work-sheets which follow will be designated as "Step I,"

"Step II," "Step IIa," and so forth. Any work-sheet designated as "Step II" will be related to the text material of Chapter II, and should be filled out after studying Chapter II. Likewise, each of the work-sheets will have a "step number" corresponding to a "Chapter number," and should be filled out in connection with the studying of the chapter to which it is related.

In devising these work-sheets the purpose is to fulfill the needs of persons actually out of work and looking for a job, of persons on a job who are seeking a better job, and of students who will soon have completed school and are preparing to seek a job.

Some of the work-sheets calling for listing of job experiences may not have specific application to students who have not yet held jobs. Students should study these work-sheets, however, since they will suggest factors which are important in considering and comparing jobs.

The job-seeker should first read the ten chapters of this book. Then he should go back and review each chapter and, in conjunction with the review, thoughtfully fill out the work-sheets corresponding to the respective chapters.

When the chapters of this book are used as the text for a Job-Seeker's Coaching Course, as outlined in Appendix B, the work-sheets become the "paper-work" of the course.

Step 1

PRELIMINARY ANALYSIS

Date ____________

1. Name

____

2. Address

____

3. Who was your last employer?

____

Address

____

4. What kind of work?

____

5. When did you leave that job?

____

6. Why did you leave?

____

7. If a veteran, are you seeking a different kind of employment from what you had before the war?

____

8. Make a complete list below of all companies, or persons, to whom you have applied. (Note: Check those you still consider good prospects.)

(1)________________	(11)________________
(2)________________	(12)________________
(3)________________	(13)________________
(4)________________	(14)________________
(5)________________	(15)________________
(6)________________	(16)________________
(7)________________	(17)________________
(8)________________	(18)________________
(9)________________	(19)________________
(10)________________	(20)________________

(List additional names on separate sheet)

9. What kind of work have you been seeking?

____

10. Explain why you have not obtained a job.

____

____

____

____

____

____

11. How many hours per day, on the average, have you been spending in active job-seeking?

STEP II

BACKGROUND ANALYSIS

1. How far did you go in school?

2. Why did you leave school?

3. What subjects interested you most in school?

4. What subjects interested you least?

5. In what subjects did you make the best record?

6. In what outside activities did you engage while in school?

7. Why did you choose those activities?

8. How did you spend your vacations?

9. What part time jobs did you do while in school?

Step II (a)

JOB-EXPERIENCE ANALYSIS

1. Name, or description, of job

____

(Place a number after name of job indicating whether it was your 1st, 2nd, 3rd or 4th, etc., job.)

2. Date started job. ____________ Date left job. ____________

3. If you had had an absolutely free choice, would you have chosen that job? ______________
(Yes) or (No)

4. Why did you pick that job?

____

____

5. What features of the job did you like?

____

____

6. Why did you like those particular features?

____

____

7. What features did you dislike?

____

____

8. Why did you dislike those particular features?

____

____

9. Did you perform the duties of the job well __________, with fair success __________, or poorly __________? (Please check)

10. What part of the job did you do best?

____

____

11. Were *you* satisfied with the way you handled the job?

____

____

12. If you could have done better, why didn't you?

____

____

13. Were your services satisfactory to your employer?

____

____

14. For what qualities which you exhibited did you receive praise?

____

____

15. For what qualities were you criticized?

____

____

16. Why did you leave the job?

____

____

17. Would you have liked to continue on the job?

____

18. In what respect, if any, did you have difficulty with the job?

____

____

19. If you failed on the job, explain why you failed.

____

____

20. Would that employer be willing to reemploy you?

____

Note: This foregoing job-experience analysis should be carefully made with reference to each job you have held, from the first job up to your last job. If you have held more than one job, make up additional questionnaire forms similar to this one and fill out for each job.

STEP II (B)

EXPERIENCE RECORD AND QUALIFICATION SHEET

Name ______________________________

Address ______________________________
Street

City ______________ State ______________

Telephone Number ______________

Age ________ Married ________ Number of Children ________

Your Birthdate ______________ Birthplace ______________
Yr. Mo. Day

Father's Birthplace ______________ Mother's Birthplace ______________

Weight ______ lbs. Height ______ ft. ______ in.

Education:

____

____

____

____

Experience Record:

(1st)
(Job) ____

Entered Employ   Left Employ   Length of Service

____

Name of Company   and description

____

of job   special experience

____

____

____

and reason for leaving.

. . . . .

(2nd)
(Job) ____

Entered Employ   Left Employ   Length of Service

____

Name of Company   and description

____

of job   special experience

____

____

____

and reason for leaving.

. . . . .

(3rd)
(Job)

Entered Employ   Left Employ   Length of Service

Name of Company   and description

---

of job   special experience

---

and reason for leaving.

. . . . .

(4th)
(Job)

Entered Employ   Left Employ   Length of Service

Name of Company   and description

---

of job   special experience

---

and reason for leaving.

. . . . .

(5th)
(Job)

Entered Employ   Left Employ   Length of Service

Name of Company   and description

---

of job   special experience

---

and reason for leaving.

(6th)
(Service Record if a veteran)

Entered Service   Left Service   Length of Service

Branch of Service (Army, Navy, Air Corps)   Rank

Foreign duty (list countries)   Length of time overseas

Training courses   Specialized experience
(Include United States Armed Forces Institute courses)

Job Qualifications:

____

____

____

____

First Preference

____

2nd

____

3rd

____

4th

Note: In filling out these "Job Record and Qualifications Sheets," be guided by samples shown on pages 18-23.

STEP III

INSTRUCTION SHEET

BUILDING YOUR JOB PROSPECT LIST

Materials and Supplies Required:

1. A classified telephone directory of the territory in which your job campaign is to be conducted.
2. A city directory, if one of recent publication is available.
3. List of private and public employment agencies.
4. A pack of ruled 3 x 5 inch cards.

How to Proceed:

1. Refer to page 37, where is presented a suggested form of arrangement for your job prospect cards.
2. Using a separate card for each job prospect, list all companies personally known to you where work is performed of the kind you are best qualified to do. Then, consult directories to secure names and addresses of all other possible prospects.
3. Next, fill in name of proper executive to be interviewed in each case. Secure these names by personal investigation, inquiry of acquaintances, employees of company in question, local Chamber of Commerce, telephone calls to company switchboard operator, etc. *Important,* know right person to see before calling on company.
4. Fill in jobs to apply for in each case.
5. Sort your prospect cards and classify them as suggested on page 39.
6. Make notations on cards as to special information, details,

tips, and pointers not to be overlooked when time comes to contact and interview the prospect.

(Note: Filling in of names of people who can help you in each case will be done in connection with Step IV.)

Adding to the Prospect List:

1. Read pages 41-48 for suggestions as to increasing names on your prospect list.

STEP IV

DECIDING WHO CAN HELP YOU GET A JOB

Influential Acquaintances:

List below the people of influence and wide contacts with whom you are acquainted, and who would probably cooperate with you in contacting or introducing you to employers on your list.

Name	Address	Profession or Business

APPENDIX A

Employed Acquaintances:

List below every employed friend or acquaintance whose help you think you can enlist in connection with any employer on your prospect list.

Name	Address	Company Employed by

STEP IV (*Continued*)

Name	Address	Company Employed by

Your Prospect Cards:

Check your prospect cards, one by one, against the foregoing lists, noting on individual prospect cards the name of the person from the above list who can best help you in contacting the prospective employer in question.

Step v

PREPARATION FOR THE EMPLOYMENT INTERVIEW

1. What is the company at which you intend to make your next application for a job?

____

2. What kind of work will you apply for?

____

3. What is the weakest point in your qualifications for that particular job?

____

4. Describe how you intend to conduct your side of the employment interview so as to minimize that weakness in your qualifications?

____

____

____

5. On what factors will the man who interviews you for that job be most likely to judge your fitness for the job?

(1)____________________ (4)____________________

(2)____________________ (5)____________________

(3)____________________ (6)____________________

6. Write below the statement with which you expect to open that particular interview.

____

____

____

____

7. What facts about the man who will interview you should you know before you enter the interview?

____

____

____

8. How will you prepare to make your best possible personal appearance?

____

____

STEP VI

THE EMPLOYMENT INTERVIEW

1. What is the very first thing you should do upon entering the prospective employer's presence?

____

____

2. Do you think it will help you to make a better first impression if you offer to shake hands with the prospective employer?

____

Why?

____

____

3. What do you intend to do with your hands during the interview?

____

____

4. What things do you intend to avoid saying or doing during the interview?

(1)____

(2)____

(3)____

(4)____

5. What are some of the pleasant features of jobs you have held in the past to which you might advantageously refer in an interview?

(1)____

(2)____

(3)____

(4)____

6. What things do you intend to say about previous employers in discussing your experience?

____

____

7. What is a good question to ask a prospective employer, at the end of the interview, if he has not given you a job?

____

____

8. How will you take your departure at the end of the interview?

____

____

STEP VII

OVERCOMING COMMON DIFFICULTIES IN THE INTERVIEW

1. Just what do you plan to say to the doorman, watchman, or subordinate whom you must get past in order to see the proper executive to interview?

____

____

____

2. How will you occupy your time while waiting to be interviewed?

____

____

3. What must you guard against in the event that the interviewer turns the interview to general topics not pertaining to the job in question?

____

____

4. How will you answer the question, "Why don't you go back to the place you worked before and get a job?"

____

____

5. How will you answer the question, "How much pay do you expect?"

____

____

6. What attitude should you take if, at some point in the interview, the prospective employer questions the truth or accuracy of a statement of yours?

____

____

7. If there is a known job open, for which you feel you are qualified, how will you press for a favorable decision immediately?

____

____

STEP VIII

FOLLOWING UP JOB PROSPECTS

1. How can you pave the way, at the end of an interview, to follow up a job prospect?

____

____

2. In what ways can you follow up a prospective employer after the first interview?

(1)____

(2)____

(3)____

3. What use should be made of your prospect cards in connection with following up job prospects?

____

____

____

4. How soon after a first interview should the first follow-up letter be written?

____

5. On a separate sheet, write a follow-up letter of the type you would write a week after a personal interview.

____

6. Should you wait for the prospective employer to call you back?

____

Give reason for your answer.

____

____

7. How can you avoid causing the prospective employer annoyance if you call him back repeatedly?

____

____

____

8. If you have no telephone, where can a prospective employer call you by phone? ________________Telephone No. ________

9. How can you make use of the help of some friend or acquaintance in connection with your follow-up campaign?

____

____

____

STEP IX

MAKING EFFECTIVE USE OF LETTERS

1. Under what circumstances should you make use of a letter of application in your job-seeking campaign?

____

____

____

2. What points should your letter of application contain?

____

____

____

3. What are the advantages of making your application letter as brief as you properly can?

____

____

____

4. Give at least five rules which you should follow in writing a letter of application.

(1)______________________________

(2)______________________________

(3)______________________________

(4)____

(5)____

5. What should you be sure to leave out of your application letter?

____

____

____

6. Choose some employer on your prospect list. On a separate sheet write him a letter applying for the kind of work you are best qualified to do.
7. Assuming that you sent him the letter, and after a week you had had no response, write him another letter. Write letter on separate sheet.
8. On a separate sheet, write the kind of letter you would send to a prospective employer whom you had tried in vain to contact in a personal interview.

STEP X

MAKING THE BEST USE OF YOUR TIME

1. During your unemployment, how many hours per day on the average have you been spending actively contacting prospective employers?

____

____

2. In your spare time, do you associate more with employed people than with unemployed people?

____

3. How many evenings per week do you spend in preparing, in one way or another, for increasing and improving your contacts with prospective employers during business hours?

____

4. How do you spend your Saturdays?

____

____

5. Have you a hobby? _______ If so, what is it? _______________
How can your hobby be used as a means of earning money during spare time?

____

____

6. Have you investigated your public library to see how many of the books listed in the bibliography on page 181 are available there for your study?

____

In what ways do you find the library helpful to you?

____

____

____

7. What do you do to revive your spirits when you become discouraged because you are not satisfactorily employed?

____

____

____

____

Appendix B

HOW TO CONDUCT A JOB-SEEKER'S COACHING COURSE

Rarely does a job-seeker think of himself as a salesman—a salesman of personal services. Seldom does a person seeking employment approach the prospective employer with a clear-cut description of the ability he has to sell and a conclusive presentation of reasons why the purchase of those abilities would prove a good investment for the employer.

In reality, the job-seeker's problem is a problem in salesmanship. To provide practical training of job-seekers in meeting this problem of salesmanship, the material contained in this book has been widely used as the text for a job-seeker's coaching course. The purpose of such a course is to train a person to sell the abilities he possesses, whatever those abilities may be. The same principles of salesmanship apply whether the job-seeker has much or little experience to sell. The object is to implement the job-seeker with sales technique as applied to selling his own services. Properly designed and conducted, it can be individualized to meet personal needs and can be made equally applicable to the needs of persons of much experience, persons who have held high executive positions, persons who have performed only manual jobs, persons with little or much education, and persons coming out of school seeking their first job.

Accordingly, job-seeker's coaching courses have been successfully conducted by such organizations as the Y. M. C. A., Chambers of Commerce, clergymen desiring to assist unemployed members of the parish, educational foundations, business colleges, vocational departments of high schools, and senior placement bureaus of colleges and universities.

The Job Counselor

Let us call the person who conducts the job-seeker's coaching course, the job counselor.

To conduct a job-seeker's coaching course effectively requires that the job counselor be, first of all, seriously and sincerely interested in being helpful to others. It is not essential that he be a vocational guidance expert, a trained psychologist, or a person of many years of practical experience in the business and industrial world. To do his part well, the job counselor should be primarily motivated by an intense desire to perform a worthwhile human service.

Of course, the more knowledge the job counselor has of the business and industrial occupations of the community, the more helpful he will be to the job-seeker enrolled in the course. He needs to have the qualities of enthusiasm and optimism. He should be able to inspire others with confidence and faith in themselves.

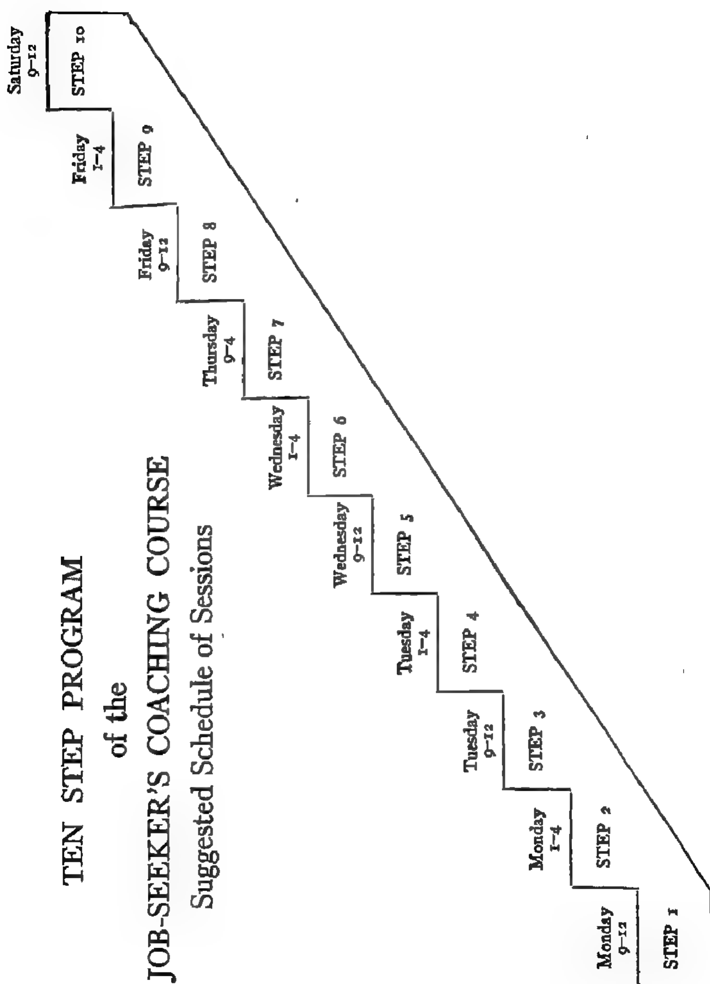
The function of the job counselor is to conduct the group sessions of the course, assign each member his paper-work, check the written work of each individual, see that each job-seeker carries through with care and thoroughness, consult with individual job-seekers, help to collect and make available facts and information which members of the group need, and follow up the efforts of the individuals as they go out to seek jobs at the completion of the coaching course.

Length and Scope of Course

Based upon the ten chapters of this book, the job-seeker's coaching course may be organized into *ten steps*.

If the course is being given to unemployed persons, it is obvious that the course should be concentrated in as short a period of time as possible. Accordingly, the course may be presented in ten sessions, taking one step to each session. In this manner the course may be presented in one intensive week as illustrated in the accompanying diagram.

APPENDIX B


TEN STEP PROGRAM
of the
JOB-SEEKER'S COACHING COURSE
Suggested Schedule of Sessions
Monday 9–12
STEP 1
Monday 1–4
STEP 2
Tuesday 9–12
STEP 3
Tuesday 1–4
STEP 4
Wednesday 9–12
STEP 5
Wednesday 1–4
STEP 6
Thursday 9–4
STEP 7
Friday 9–12
STEP 8
Friday 1–4
STEP 9
Saturday 9–12
STEP 10

Another plan of presentation would be to conduct a course in ten successive evening sessions. This form of presentation is particularly desirable for persons who are already employed but are taking the course in order to prepare to sell their services on better jobs.

Where the course is presented in schools, it is desirable, as a rule, to spread the course over a substantially longer period to conform with school schedules. Inasmuch as the course consists of ten essential steps, these steps may be distributed and scheduled in any practical manner to fit the requirements of individual situations.

The paper-work, or written work, to be done in the course consists of filling out a series of personalized questionnaire forms and work assignments. These will be found in Appendix A with designated *step numbers* to correspond with the chapters of the book with which the written work is to be done.

Conducting Sessions of Course

The job counselor should work out an instruction plan for each session of the course. The opening session might follow some such outline as follows:

1. Opening statement of purpose of the course.
2. Explanation of how sessions will be conducted.
3. Discussion period in which the text material of Chapter I will be covered. Counselor might submit the questions stated in Chapter I and call for discussion and answers from members of group.
4. Have each member turn to *step one* entitled "Preliminary Analysis" in Appendix A and instruct each member to fill out carefully and accurately the *step one* blank.
5. Collect books from the group and, without divulging names, read to the group the contents of the *step one* "Preliminary Analysis" sheet, making appropriate comments as to whether the information presented by the member indicates that the

person in question has been doing an intelligent or a poor job in seeking employment.

6. Conduct general discussion based upon the work done in filling out the "Preliminary Analysis."
7. Assign Chapter II on "What Work Am I Best Qualified To Do?" for the study of the members in preparation for the second session.

In a similar manner the job counselor should conduct sessions having to do with each chapter of the book, using as the written work of each session the questionnaire forms or instruction sheets in Appendix A which apply to the chapter under consideration.

In conducting sessions dealing with Step VI on "How Should I Carry Out My Side of the Employment Interview," and Step VII on "How Can I Overcome Common Difficulties in the Interview," the job counselor should make arrangements to have the members participate in actual practice interviews. It is suggested that the classroom be arranged with a desk in the front at which an interviewer may be seated. One at a time, members of the group may be admitted from outside the room, just as if they were coming into a business office. In the presence of a class, the individual member would then conduct a practice interview with the interviewer. After the interview the class should discuss the manner in which the interview was handled. The job counselor should offer suggestions, and the person acting as interviewer should also give his comments and suggestions to the person interviewed.

To make these practice interview sessions most effective, it is recommended that the job counselor arrange to have some local business man, personnel manager, employment manager, or industrial executive volunteer to serve as an interviewer so as to give members of the group a sense of reality in the conduct of the interview.

These practice interview sessions can be made the most important part of the course because they give the member of the group an opportunity to actually put into words what he has to say in

selling his services. It also gives him a chance to hear constructive criticisms of the manner in which he attempts to sell his services. At subsequent practice interviews he should be given an opportunity to correct these defects and to improve upon his presentation.

If the job counselor will follow closely the written work outlined in Appendix A, he will be able to make effective plans for each of the sessions in the *ten step* program of the course.

INDEX